THE BOOK WAS DRENCHED

महाभारत-कथा

[२]

[तमिल ग्रंथ 'व्यासर विरुन्दु' का अनुवाद]

रचयिता

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुवादक

श्री पू. सोमसुन्दरम्

१९४९

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९४९

मूल्य
तीन रुपये

मुद्रक,
दिल्ली प्रेस,
नई दिल्ली

प्राक्कथन

(खासतौर से हिन्दी संस्करण के लिए लिखा गया)

मैं समझता हूं कि अपने जीवन में मुझसे जो सबसे बड़ी सेवा बन सकी है, वह है महाभारत को तमिल-भाषियों के लिए कथाओं के रूप में लिख देना। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि 'सस्ता साहित्य मंडल' ने 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' के एक दक्षिण भारतीय द्वारा किये हुए हिन्दी रूपान्तर को बढ़िया मानकर उत्तर भारत के पाठकों के समक्ष उपस्थित करने के लिए स्वीकार कर लिया है।

मेरा विश्वास है कि महाभारत की ये संक्षिप्त कथाएं पाठकों को पहले की अपेक्षा अच्छा आदमी, अच्छा चिंतक और अच्छा हिन्दू बनावेंगी। यह दूसरा खंड है और इसमें मेरी पुस्तक पूर्ण हो जाती है। प्रथम खंड तो पहले ही प्रकाशित हो चुका है।

नई दिल्ली

मार्च, १९४९

विषय-सूची

(दूसरा खंड)

महाभारत-कथा

[२]

: ५० :

मंत्रणा

तेरहवां बरस पूरा होने पर पांडव विराट की राजधानी छोड़ कर उपप्लव्य नामक नगर में जाकर रहने लगे, जो विराटराज ही के अधीन था। अज्ञातवास की अवधि पूरी हो चुकी थी। इसलिए पांचों भाई प्रकट रूप में रहने लगे और अपने भाई-बंधुओं एवं मित्रों को बुलाने को दूत भेजे।

अपने भाई बलराम, अर्जुन की पत्नी सुभद्रा, पुत्र अभिमन्यु और यदुवंश के कितने ही वीरों को साथ लेकर श्रीकृष्ण उपप्लव्य आ पहुंचे। उनके आगमन की खबर पाकर विराटराज और पांडवों ने शंख बजाकर उनका स्वागत किया।

इन्द्रसेन आदि राजा अपने-अपने रथों पर चढ़कर उपप्लव्य आ पहुंचे। काशीराज और वीर शैव्य भी अपनी दो अक्षौहिणी सेना के साथ आकर युधिष्ठिर के नगर में पहुंच गये।

पांचालराज द्रुपद तीन अक्षौहिणी सेना लाये। उनके साथ शिखंडी, द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न और द्रौपदी के बेटे आ पहुंचे। और भी कितने ही राजा अपनी-अपनी सेनाओं को साथ लेकर पांडवों की सहायता के लिए आ गये।

सबसे पहले शास्त्रोक्त विधि से अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह किया गया। इसके बाद विराटराज के सभाभवन में सभी आगंतुक राजा लोग मंत्रणा करने इकट्ठे हुए।

विराटराज के पास श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर बैठे । द्रुपद के पास बलराम और सात्यकी । और भी कितने ही प्रतापी राजा सभा में विराजमान थे। सब के अपने-अपने आसन पर बैठ जाने पर सभा में शांति छा गई। सबकी निगाह श्रीकृष्ण पर थी। कुछ देर बाद श्रीकृष्ण उठे और बोले——

"सम्मान्य बंधुओ, मित्रो ! आप जानते ही हैं कि कैसे युधिष्ठिर को कुचक्र में फंसा कर उनका राज्य छीन लिया गया, कैसे पांडु-पुत्रों को प्रण निभाने के लिए तेरह बरस तक दारुण दुःख भोगना पड़ा और कैसे इन दुःसह कठिनाइयों को झेलकर पांडवों ने अपनी प्रतिज्ञा सफलता के साथ पूरी की । हम सब यहां इसलिए इकट्ठे हुए हैं कि कुछ ऐसा उपाय सोचें, जो युधिष्ठिर और राजा दुर्योधन के लिए लाभ-प्रद हो, न्यायोचित हो और जिससे पांडवों एवं कौरवों का सुयश बढ़े। युधिष्ठिर कोई भी ऐसी सलाह नहीं मानेंगे जिससे धर्म की हानि हो और जो न्यायोचित न हो । यद्यपि धृतराष्ट्र के लड़कों ने उन्हें धोखा दिया और तरह-तरह की यातनाएं उन्हें पहुंचाईं, फिर भी युधिष्ठिर तो उनका भला ही चाहते हैं। आपको कौरवों के अन्यायों और युधिष्ठिर की न्याय-प्रियता, दोनों पर ध्यान देना है। दोनों के भिन्न-भिन्न गुणों पर खूब सोच-विचार कर जो उचित लगे वही सलाह आप को देना है। अभी तक इस बात का पता नहीं लग सका कि इस बारे में दुर्योधन का क्या इरादा है। मुझे तो सब मिलाकर संधि करना ही उचित प्रतीत होता है। जो राज्य युधिष्ठिर से छीना गया है वह उनको वापस मिल जाय तो पांडव शांत हो जायंगे और दोनों में संधि हो सकती है। मेरी राय में इस बारे में दुर्योधन के साथ उचित रीति से बात-चीत करके उसे समझाने के लिए एक ऐसे व्यक्ति को दूत बना कर भेजना होगा जो सर्वथा योग्य हो और शीलवान भी।"

यह कह कर श्रीकृष्ण ने बलराम की ओर देखा।

तब बलराम उठे और बोले——"कृष्ण ने जो सलाह दी वह मुझे न्यायोचित लगती है और राजनीति के अनुकूल भी। आप लोगों ने कृष्ण की राय

सुनी। कृष्ण ने जो उपाय बताया उससे युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों की ही भलाई हो सकती है। इसके लिए मैं कृष्ण को साधुवाद दिये बिना नहीं रह सकता। आप लोग जानते ही है कि कुंती के पुत्रों को आधा राज्य मिला था। उन्होंने उसे जुए में खो दिया और अब फिर उसे प्राप्त करना चाहते हैं। यदि शांतिपूर्ण ढंग से——बिना युद्ध किये ही——वे अपना राज्य प्राप्त कर सकें तो उससे न केवल पांडवों की बल्कि दुर्योधन एवं सारी प्रजा की भलाई ही होगी। सब सुख-चैन से रह सकेंगे, इसमें कोई संदेह ही नहीं। इसके लिए युधिष्ठिर की ओर से दुर्योधन के पास एक ऐसा दूत भेजा जाना चाहिए जो दोनों के बीच संधि कराने की योग्यता और सामर्थ्य रखता हो। युधिष्ठिर की प्रार्थना दुर्योधन को सुनाकर उनका उत्तर युधिष्ठिर को बताने से पहले उसे भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण एवं शकुनि आदि सभी संभ्रांत व्यक्तियों से सलाह-मशविरा करना होगा। उसे बड़ी नम्रता के साथ युधिष्ठिर की बात सब को सुनानी होगी। चाहे जैसी उत्तेजना का अवसर आवे, पर वह क्रोध में न आए। जरा झुकने ही से काम बनेगा, तनने से नहीं। युधिष्ठिर ने स्वेच्छा से जुआ खेला और राज्य गंवाया। बहुत से मित्रों ने उन्हें मना किया था, पर युधिष्ठिर ने किसी की न सुनी। अपनी जिद्द पर अड़े रहे और सबकी सुनी-अनसुनी कर के जुआ खेलने गये। यह भी युधिष्ठिर से छिपा नहीं था कि शकुनि जुए का मंजा हुआ खिलाड़ी है और वे इस खेल में उसके आगे ठहर नहीं सकते थे। शकुनि की निपुणता और अपने नौसिखुएपन को भली भांति जानते हुए भी युधिष्ठिर ने बुलावा मान लिया और खेल मे हार गये। इसलिए अब युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों के आगे नम्रता के साथ जरा झुक कर ही राज्य वापस दिलाने की प्रार्थना करनी होगी। इसके लिए मेरी राय में ऐसा व्यक्ति दूत बन कर जाय जो शांति-प्रिय एवं मृदुभाषी हो, युद्ध-प्रिय न हो। उसका उद्देश्य किसी-न-किसी प्रकार समझौता कराना ही हो। हे राजा-गण ! दुर्योधन को मीठी बातों से समझाने का प्रयत्न कीजिए। शांति-पूर्ण ढंग से जो संपत्ति मिल जाए वही सुख-प्रद होगी। युद्ध चाहे

जिस उद्देश्य के लिए किया जाय उसमें अन्याय होता ही है । युद्ध के फलस्वरूप न्याय की स्थापना होना असंभव है।"

बलराम के कहने का सार यह था कि युधिष्ठिर ने जान-बूझकर, अपनी इच्छा से जुआ खेल कर राज्य गंवाया था। यह बात ठीक है कि शर्त के अनुसार बारह बरस का बनवास और एक बरस का अज्ञातवास पूरा करके उन्होंने प्रण निभा लिया। इससे वे गुलामी से मुक्त होकर स्वतंत्र रह सकते हैं अवश्य; परंतु खोये हुए राज्य को वापस मांगने का उन्हें अधिकार नहीं हो सकता। प्रतिज्ञा करते समय युधिष्ठिर या और किसी ने ऐसी कोई शर्त नहीं की थी कि युधिष्ठिर को राज्य भी वापस दे दिया जायगा। हां, हाथ जोड़ कर याचना करने पर भले ही कुछ प्राप्त हो जाय; किंतु अपना स्वत्व जता कर मांगने का अधिकार युधिष्ठिर को नहीं रहा। जुए के खेल में संपत्ति को दाव पर रखना और हार जाना नासमझी ही है; लेकिन खेल में जान-बूझकर जो गंवाया गया है उस पर फिर से गंवाने वाले का अधिकार नहीं हो सकता।

इसके अलावा एक ही वंश के लोगों का आपस में लड़-मरना भी बलराम को अच्छा न लगा। उनकी राय यह थी कि युद्ध अनर्थ की ही जड़ होता है। उससे कभी भलाई नहीं हो सकती।



लेकिन बलराम की ही तरह सब नहीं सोचते थे। उनकी इन बातों से यदुकुल का वीर और पांडवों का हितैषी सात्यकी आगबबूला हो उठा। उससे न रहा गया। उठकर कहने लगा—

"बलरामजी की बातें मुझे जरा भी न्यायोचित नहीं जंचीं। अपनी बात सिद्ध करने के लिए लोग वाक्-चातुरी से काम लेते हैं। हर किसी बात का सुंदरता से समर्थन किया जा सकता है और अन्याय को आसानी से न्याय सिद्ध किया जा सकता है। लेकिन जो स्पष्ट अन्याय है वह कदापि न्याय नहीं हो सकता, न अधर्म ही धर्म हो सकता है। बलरामजी की बातों का मैं जोरों से विरोध करता हूं। आप सब सज्जन जानते हैं कि श्रीकृष्ण और

बलरामजी भाई-भाई हैं। फिर भी इन दोनों के विचारों में बहुत भारी अंतर है। इसमें अचरज की कोई बात नहीं। एक ही कोख से शूर भी जन्म लेता है और कायर भी। एक ही पेड़ की शाखाओं में से कोई तो फलों से लदी होती है और कोई बिल्कुल निकम्मी होती है। अतः भाई-भाई होते हुए भी श्रीकृष्ण ने न्याय की और बलराम ने अन्याय की बात कही हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है! मेरी राय में जो कोई भी युधिष्ठिर को दोषी बतायेगा वह दुर्योधन से डरने वाला ही होगा। मेरी इन कड़ी बातों के लिए आप सज्जनगण मुझे क्षमा करेंगे। बात यह है कि युधिष्ठिर तो पांसे का खेल जानते भी नहीं थे और न इनकी खेलने की इच्छा ही थी। पर इनको आग्रह करके जुआ खेलने पर विवश किया गया और कपट से खेल कर हराया गया था। फिर भी यह इनकी सज्जनता ही थी जो प्रण निभा कर खेल की शर्तें पूरी कर दीं। और अब इनको यह सलाह दी जा रही है कि यह दुर्योधन के आगे झुक कर भीख मांगें! युधिष्ठिर भिखमंगे नहीं हैं। उन्हें किसी के आगे झुकने की आवश्यकता ही क्या है? शर्त के अनुसार पांडव बारह बरस का बनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा कर के लौट आये हैं। दुर्योधन और उसके साथी जो यह चिल्ल-पुकार मचा रहे हैं कि बारह महीने पूरे होने से पहले ही पांडवों को उन्होंने पहिचान लिया है, सरासर झूठ है और बिल्कुल अन्याय है। मैं इस अन्याय को नहीं सहूंगा और उसका बदला लेकर ही रहूंगा। युद्ध में इन अधमों की ऐसी खबर लूंगा कि या तो वे युधिष्ठिर के पांव पड़कर क्षमा-याचना करेंगे या मेरे हाथों मारे जाकर मृत्यु के मुंह पड़ेंगे। धर्मयुद्ध का फल अनीति कैसे हो सकता है? हथियार लेकर लड़ने वाले शत्रु को मारना भी कहीं पाप होता है? कभी नहीं। शत्रुओं के आगे हाथ पसार कर भीख मांगने से अधिक निंदनीय काम और कोई हो नहीं सकता। अधःपतन के सिवाय उसका और कोई नतीजा नहीं होता। अगर दुर्योधन लड़ना ही चाहता है तो हम भी तैयार हो जायं। देरी करना ठीक नहीं। जो कुछ करना है उसे जल्दी ही कर लेना ठीक होगा। मेरी राय में दुर्योधन बगैर युद्ध के मानेगा ही नहीं।

इसलिए विलंब करना हमारे लिए बिल्कुल नासमझी की बात होगी।"

सात्यकी की इन दृढ़तापूर्ण और जोरदार बातों से राजा द्रुपद बड़े खुश हुए। वे उठे और बोले--

"सात्यकी ने जो कहा वह बिल्कुल सही है। मैं उनका जोरों से समर्थन करता हूं। मेरा भी यही खयाल है कि दुर्योधन मीठी-मीठी बातों से माननेवाला नहीं है। हमें युद्ध की तैयारियां तो रखनी ही चाहिएं। अपने सभी मित्रों को दूतों के द्वारा यह संदेश भेजना होगा कि बिना विलंब किये सेना इकट्ठी करना शुरू कर दें। शल्य, धृष्टकेतु, जयत्सेन, केकय आदि राजाओं के पास अभी से दूत भेज देने चाहिएं। इससे मेरा मतलब यह नहीं कि सुलह का प्रयत्न ही न किया जाय; बल्कि मेरी राय में तो राजा धृतराष्ट्र के पास अभी से किसी सुयोग्य व्यक्ति को दूत बनाकर भेजना बहुत ही जरूरी है। मेरी सभा के विद्वान् पुरोहित बड़े नीतिज्ञ ब्राह्मण हैं। आप चाहें तो उन्हें हस्तिनापुर भेजा जा सकता है। दुर्योधन से क्या कुछ कहना होगा, भीष्म, धृतराष्ट्र, द्रोण आदि व्यक्तियों को कैसे समझाना होगा, यह सब बातें उन ब्राह्मण को बता कर उन्हें हस्तिनापुर भेजा जा सकता है। मेरी यही सलाह है।"

राजा द्रुपद के कह चुकने के बाद श्रीकृष्ण उठे और बोले--

"सज्जनो! पांचालराज ने जो सलाह दी है वह बिल्कुल ठीक है। वह राजनीति के भी अनुकूल है और उस पर अमल करना चाहिए। बलरामजी और मुझ पर कौरवों का जितना हक है उतना ही पांडवों का भी है। हम यहां किसी का पक्षपात करने नहीं; बल्कि उत्तरा के विवाह में शामिल होने के लिए आये हैं। हम अब अपने स्थान पर वापस चले जायेंगे। (द्रुपद की ओर देख कर) द्रुपदराज! आप सभी राजाओं में श्रेष्ठ हैं, बुद्धि एवं आयु में भी बड़े हैं। हमारे लिए तो आप आचार्य के सामान हैं। धृतराष्ट्र भी आपकी बड़ी इज्जत करते हैं। द्रोण एवं कृपाचार्य तो आपके लड़कपन के साथी हैं। इसलिए उचित यही होगा कि जो कुछ दूत को समझाना-बुझाना हो वह आप ही समझा दें और उन्हें हस्तिनापुर भेज दें। यदि इसके

बाद भी दुर्योधन न्यायोचित रूप से संधि के लिए तैयार न हो तो सब लोग सब तरह से तैयार हो जायं और हमें भी कहला भेजें।"

यह निश्चय हो जाने के बाद श्रीकृष्ण अपने साथियों सहित द्वारका लौट गए। विराट, द्रुपद, युधिष्ठिर आदि युद्ध की तैयारियां करने में लग गए। चारों ओर दूत भेजे गए। सब मित्र राजाओं को सेना इकट्ठी करने का संदेशा भेज दिया गया। पांडवों के पक्ष के राजा लोग अपनी-अपनी सेना सज्जित करने लगे।

इधर ये तैयारियां होने लगीं उधर दुर्योधन आदि भी बेकार नहीं बैठे रहे। वे भी युद्ध की तैयारियों मे जी-जान से लग गए। उन्होंने अपने मित्रों के यहां दूतों द्वारा संदेशे भेजे कि सेनाएं इकट्ठी की जाएं। इस तरह सारा भारतवर्ष युद्ध के कोलाहल से गूंजने लगा। राजा लोग इधर से उधर और उधर से इधर दौरे करते। सैनिकों के दल-के-दल जगह-जगह आते-जाते रहते। उनकी धूम से पृथ्वी कांप जाती थी। उन दिनों भी युद्ध की तैयारियां आजकल की-सी ही हुआ करती थीं।

द्रुपदराज ने अपने पुरोहित को बुलाकर कहा—"विद्वानों में श्रेष्ठ! आप पांडवों की ओर से दूत बन कर दुर्योधन के पास जायं। आप पांडवों के गुणों से भली-भांति परिचित हैं। इसी प्रकार दुर्योधन के गुण भी आप से छिपे नहीं हैं। आप जानते ही हैं कि धृतराष्ट्र की सम्मति ही से पांडवों को धोखा दिया गया। विदुर ने न्याय की बात कही तो जरूर, लेकिन धृतराष्ट्र ने उनकी सुनी नहीं। राजा धृतराष्ट्र पर दुर्योधन का असर ज्यादा है। आप धृतराष्ट्र को धर्म और नीति की बातें समझाएं। विदुर तो हमारे ही पक्ष में रहेंगे। इस कारण संभव है, भीष्म, द्रोण, कृप आदि मंत्रियों और योद्धाओं (सेनानायकों) में मतभेद हो जाने पर उनमें एकता होना बहुत कठिन हो जाय। एकता अगर हुई भी तो इसमे काफी समय लग जायगा। इस अर्से में पांडव युद्ध की काफी तैयारी कर लेंगे। उधर जबतक आप हस्तिना-पुर में संधि-चर्चा करते रहेंगे तब तक उन लोगों की तैयारियां धीमी पड़

जाएंगी। संधि की बातें करने का एक यह भी फायदा होगा। यदि शांति स्थापित हो गई तो भी हमारे लिए वह अच्छा ही होगा। मुझे ऐसी आशा नहीं है कि दुर्योधन समझौता करने पर राजी होगा। फिर भी समझौते की बात करने के लिए हमारे राजदूत का हस्तिनापुर जाना हमारे लिए ही लाभप्रद होगा।"

शांति की वास्तविक इच्छा रखते हुए समझौते का प्रयत्न करना; पर साथ ही युद्ध की भी तैयारियां करते रहना; उधर शत्रु के पक्ष के लोगों में शांति की बातचीत के ही द्वारा फूट डालने की कोशिश करना आदि आजकल के तौर-तरीके उन दिनों भी प्रचलित थे।

: ५१ :

पार्थ-सारथी

शांति-चर्चा के लिए हस्तिनापुर को दूत भेज देने के बाद पांडव और उनके मित्र राजागण जोरों से युद्ध की तैयारी में जुट गये। श्रीकृष्ण के पास स्वयं अर्जुन पहुंचा।

इधर दुर्योधन को भी इस बात की खबर मिल गई कि उत्तरा के विवाह से निवृत्त होकर श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये हैं। सो तेज घोड़ोंवाले रथ पर सवार होकर वह द्वारका को रवाना हो गया। संयोग की बात कि जिस दिन अर्जुन द्वारका पहुंचा ठीक उसी दिन दुर्योधन भी वहां पहुंचा। कृष्ण के भवन में भी दोनों एक साथ ही प्रविष्ट हुए। श्रीकृष्ण उस समय आराम कर रहे थे। अर्जुन और दुर्योधन दोनों ही उनके निकट के संबंधी थे, इसलिए दोनों ही बेखटके शयनागार में चले गये। दुर्योधन आगे था, अर्जुन जरा पीछे। कमरे में प्रवेश करके दुर्योधन श्रीकृष्ण के सिरहाने एक ऊंचे आसन पर जा बैठा। अर्जुन पीछे था, वह श्रीकृष्ण के पैताने ही हाथ जोड़े खड़ा रहा।

श्रीकृष्ण की नींद खुली तो सामने अर्जुन को खड़े देखा। उठ कर उसका स्वागत किया और कुशल पूछी। बाद में घूमकर आसन पर बैठे दुर्योधन को देखा तो उसका भी स्वागत किया और कुशल-समाचार पूछे। उसके बाद दोनों से आने का कारण पूछा।

दुर्योधन जल्दी से पहले बोला—"श्रीकृष्ण, ऐसा मालूम होता है कि हमारे और पांडवों के बीच जल्दी युद्ध छिड़ेगा। यदि ऐसा हुआ तो मैं आपसे प्रार्थना करने आया हूं कि आप मेरी सहायता करें। इसमें शक नहीं कि पांडवों और कौरवों दोनों पर आपका एक-जैसा प्रेम है। यह भी ठीक है कि हम दोनों का आपसे संबंध है; पर मैं आपकी सेवा में पहले पहुंचा हूं। महाजनों ने यह नियम बना दिया है कि जो पहले आये उसका काम पहले हो। आप महाजनों में श्रेष्ठ हैं। आप सबके पथ-प्रदर्शक हैं। अतः बड़ों की चलाई हुई प्रथा पर चलें और पहले मेरी सहायता करें।"

यह सुन श्रीकृष्ण बोले—"राजन् ! यह हो सकता है कि आप पहले आये हों। पर मेरी निगाह तो कुंती-पुत्र अर्जुन पर ही पहले पड़ी। आप पहले पहुंचे जरूर, लेकिन मैंने तो अर्जुन को ही पहले देखा। मेरी निगाह में तो दोनों ही बराबर हैं। इसलिए कर्त्तव्य-भाव से मैं दोनों की ही समानरूप से सहायता करूंगा। पूर्वजों की चलाई हुई प्रथा यह है कि जो आयु में छोटा हो उसीको पहले पुरस्कार देना चाहिए। अर्जुन आपसे आयु में छोटा है, इसलिए पहले उससे ही पूछता हूं कि वह क्या चाहता है।"

अर्जुन की तरफ मुड़ कर श्रीकृष्ण बोले—"पार्थ ! सुनो ! मेरे वंश के लोग नारायण कहलाते हैं। रण-कौशल में वे मुझसे कम नहीं हैं। वे बड़े साहसी और वीर भी हैं। उनकी एक भारी सेना इकट्ठी की जा सकती है। युद्ध के मैदान में तो उनके नजदीक कोई जा नहीं सकता। मेरी यह सेना एक तरफ होगी। दूसरी तरफ अकेला मैं रहूंगा। मेरी प्रतिज्ञा यह भी है कि युद्ध में मैं न हथियार उठाऊंगा, न लडूंगा। तुम भली भांति सोच लो, तब निर्णय करो। इन दो में से जो पसंद हो वह ले लो। बताओ, क्या चाहते हो तुम ? मुझ अकेले, निःशस्त्र को या मेरे वंश वालों की वीर

सेना को ?"

बिना किसी हिचकिचाहट के अर्जुन बोला--"भगवन्, आप शस्त्र उठावें या न उठावें, आप चाहे लड़ें या न लड़ें, मैं तो आपको ही चाहता हूं।"

दुर्योधन के आनंद की सीमा न रही। वह सोचने लगा कि अर्जुन ने खूब धोखा खाया और श्रीकृष्ण की वह लाखों वीरों वाली भारी-भरकम सेना सहज में ही उसके हाथ आ गई। यह सोचता हर्ष से फूला न समाता दुर्योधन बलरामजी के यहां पहुंचा और उनको सारा हाल कह सुनाया। भीमसेन के समान योद्धा बलरामजी ने दुर्योधन की बातें ध्यान से सुनीं और बोले--"दुर्योधन! मालूम होता है कि उत्तरा के विवाह के अवसर पर मैंने जो कुछ कहा था उसकी खबर तुम्हें मिल गई। कृष्ण से भी मैंने कई बार तुम्हारी बात छेड़ी और उसको समझाता रहा कि कौरव और पांडव दोनों ही हमारे बराबर के संबंधी हैं। किन्तु कृष्ण मेरी सुने तब न? तो मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं युद्ध में तटस्थ रहूंगा; क्योंकि जिधर कृष्ण न हो, उस तरफ मेरा रहना ठीक नहीं। अर्जुन की सहायता मैं करूंगा नहीं। इस कारण मैं अब तुम्हारी भी सहायता करने योग्य नहीं रहा। मेरा तटस्थ रहना ही ठीक होगा।

"दुर्योधन, तुम्हें किसी बात की कमी है? तुम उस वंश के हो जिसे राजा लोग पूजते हैं। निराश कदापि मत हो और जा कर क्षत्रियोचित ढंग से युद्ध करो।"

हस्तिनापुर को लौटते हुए दुर्योधन का दिल बल्लियों उछल रहा था। वह सोच रहा था कि अर्जुन बड़ा बुद्धू बना। द्वारका की इतनी बड़ी सेना अब मेरी हो गई। और बलरामजी का स्नेह तो मुझ पर है ही। श्रीकृष्ण भी निःशस्त्र और सेना-विहीन हो गए। यही सोचते-विचारते दुर्योधन खुशी-खुशी अपनी राजधानी में वापस जा पहुंचा।

"सखा अर्जुन! एक बात बताओ। तुमने सेना-बल के बजाय मुझ

निःशस्त्र को क्यों पसंद किया ?" कृष्ण ने पूछा।

अर्जुन बोला—"भगवन्! बात यह है कि मैं भी वही यश प्राप्त करना चाहता हूं जो आपको मिला है। आपमें वह शक्ति है कि जिससे आप अकेले ही इन तमाम राजाओं से लड़कर इन्हें कुचल सकते हैं। मुझमे भी इतनी ताकत है कि अकेले ही इन सबको हरा दूं। चिरकाल से मेरी यह इच्छा थी कि आपको सारथी बना कर मै अपने शौर्य से विजय प्राप्त करलूं। मेरी वही इच्छा आज आपने पूरी कर दी।"

अर्जुन की बात सुन कर कृष्ण मुसकराये और बोले—"अच्छा, यह बात है! मुझसे ही होड़ करने लगे! यह तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल ही है।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बड़े प्रेम से विदा किया।

इस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने और पार्थ-सारथी की पदवी प्राप्त की।

: ५२ :

सगे मामा विपक्ष में

मद्र-देश के राजा शल्य नकुल-सहदेव की मां माद्री के भाई थे। जब उन्हे यह खबर मिली कि पांडव उपप्लव्य के नगर में युद्ध की तैयारियां कर रहे हैं तो उन्होंने एक भारी सेना इकट्ठी की और उसे लेकर पांडवों की सहायता के लिए उपप्लव्य की ओर रवाना हो गए।

राजा शल्य की सेना बहुत बड़ी थी। उपप्लव्य की ओर जाते हुए रास्ते मे जहां कहीं भी शल्य विश्राम करने के लिए डेरा डालते तो उनकी सेना का पड़ाव कोई डेढ़ योजन* तक लंबा फैल जाता था।

जब दुर्योधन ने सुना कि राजा शल्य विशाल सेना लेकर पांडवों की

* एक योजन करीब नौ मील का होता है।

सहायता के लिए जा रहे हैं तो उसने किसी प्रकार इस सेना को अपनी ओर कर लेने का तय कर लिया। अपने कुशल कर्मचारियों को उसने आज्ञा दी कि रास्ते में जहां कहीं भी राजा शल्य और उनकी सेना डेरा डाले उसे हर तरह की सुविधा पहुंचाई जाये। इसके अनुसार रास्ते में जहां-तहां विशाल मंडप बनवाये गये। उन्हें खूब सजाया गया। जहां भी शल्य की सेना ठहरती वहां मद्रराज और उनकी सेना का शानदार सत्कार किया जाता। मद्रराज तथा उनकी सेना के लिए तरह-तरह की खाने-पीने की चीजें एकत्र की गईं। साथ ही उनके जी बहलाने का प्रबंध भी किया गया था। सारे रास्ते सत्कार का इस प्रकार का सुंदर प्रबंध देख कर शल्य बड़े प्रसन्न हुए। वह बड़ी भारी सेना लेकर जगह-जगह ठहरते और विश्राम करते हुए उपप्लव्य की ओर बढ़ते चले। मद्रराज की सेना इतनी विशाल थी कि उसके इधर-उधर चलने से धरती डोलती थी। रास्ते भर शल्य यही सोचते रहे कि सत्कार के यह सब आयोजन मेरे भानजे युधिष्ठिर के किये हुए हैं। इससे युधिष्ठिर के प्रति उनके मन में बड़ा स्नेह हो गया। एक रोज शल्य ने सेना का स्वागत-सत्कार तथा उनकी देख-रेख करने वाले कर्मचारियों से कहा कि हमारी सेना की और हमारी इतनी अच्छी तरह खातिरदारी करने वाले लोगों को मैं उचित पुरस्कार देना चाहता हूं। कुंती-पुत्र युधिष्ठिर को मेरी तरफ़ से कहना कि वह इसके लिए बुरा न मानें और अपनी सम्मति दे दें।

कर्मचारियों ने जाकर दुर्योधन को इस बात की ख़बर दी। वह तो इसी ताक में शल्य की सेना के साथ-साथ गुप्त-रूप से चल ही रहा था। खबर पाकर बड़ा खुश हुआ और तुरंत मद्रराज के पास जाकर प्रणाम किया और स्वागत-सत्कार का हाल सुनाया।

शल्य आश्चर्य-चकित रह गये। हमारे स्वागत-सत्कार का यह प्रबंध दुर्योधन ने करवाया है, यह जान कर वे बड़े असमंजस में पड़े। यह जानते हुए भी कि हम उसके विपक्ष में हैं दुर्योधन में इतनी उदारता का होना सचमुच बड़ी बात है!

प्रसन्न होकर बोले--"राजन्! तुम्हारा यह ऋण मैं कैसे चुकाऊं?"

दुर्योधन ने कहा--"अपनी सेना-समेत आप मेरी सहायता करें और युद्ध शुरू होने पर मेरे पक्ष में रह कर पांडवों के विरुद्ध लड़ें। मैं आपसे यही प्रत्युपकार चाहता हूं।"

सुन कर मद्रराज सन्न रह गये।

शल्य को असमंजस में पड़े देखकर दुर्योधन बोला--"आपके लिए जैसे पांडव वैसे ही हम। हम दोनों का आपसे बराबर का नाता है। सो आप अपनी सेना लेकर मेरी तरफ से ही क्यों नहीं लड़ते?"

दुर्योधन के उपकार से शल्य कुछ दबे-से महसूस कर रहे थे। उन्होंने विवश होकर कहा--"अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।"

शल्यराज पर दुर्योधन के आदर-सत्कार का कुछ ऐसा असर हुआ कि उन्होंने पुत्रों के समान प्यार करने योग्य अपने भानजों--पांडवों--को छोड़ दिया और दुर्योधन के पक्ष में रहकर युद्ध करने का वचन दे दिया।

मद्रराज ने दुर्योधन को वचन तो दे दिया; पर युधिष्ठिर से बिना मिले लौट जाना उन्हें उचित नहीं लगा। वह दुर्योधन से बोले--"राजन्, एक बात है। मैं तुम्हें वचन तो दे ही चुका हूं, पर जाने से पहले युधिष्ठिर से भी मिल लेना जरूरी समझता हूं। अतः अभी तो मुझे विदा दो।"

"जरूर मिलिये, पर वहां से शीघ्र ही लौट आइये। ऐसा न हो कि वहां भानजों को देख कर मुझे जो वचन दे चुके है, वह भूल जायं!" दुर्योधन ने कहा।

"नहीं भाई, जो कह चुका वह व्यर्थ नहीं होगा। तुम निश्चिंत होकर अपने नगर लौट जाओ।" यह कहकर मद्रराज उपप्लव्य की ओर रवाना हुए।

उपप्लव्य में राजा शल्य का खूब स्वागत किया गया। मामा को आया देख कर नकुल और सहदेव के आनंद की तो सीमा न रही। पांडवों ने अपने सब कष्टों का हाल मामा को कह सुनाया। जब भावी युद्ध की चर्चा छिड़ी तो शल्य ने युधिष्ठिर को बताया कि किस प्रकार दुर्योधन ने धोखा

देकर उनको अपने पक्ष में कर लिया है।

युधिष्ठिर ने सोचा कि अपने निकट के रिश्तेदार समझ कर इनकी ओर से हम लापरवाह रहे और इनकी कोई खबर नहीं ली, इसीका यह परिणाम है। पर उन्होंने अपना दुःख प्रकट नहीं किया। बोले—"मामा-जी! दुर्योधन के स्वागत-सत्कार से प्रसन्न होकर आपने जो वचन दिया उसे तो पूरा ही करना उचित होगा; पर मैं एक बात आपसे अवश्य पूछना चाहता हूं। आप युद्ध-कुशलता में वासुदेव के समान हैं। मौका आने पर निश्चय ही महाबली कर्ण आपको अपना सारथी बना कर अर्जुन का वध करने का प्रयत्न करेगा। मैं यह जानना चाहता हूं कि उस समय आप अर्जुन की मृत्यु का कारण बनेंगे या अर्जुन की रक्षा का प्रयत्न करेंगे? मैं यह पूछ कर आपको असमंजस में नहीं डालना चाहता था; पर फिर भी पूछने को मन हो गया।"

मद्रराज ने कहा—"बेटा युधिष्ठिर, मैं धोखे में आकर दुर्योधन को वचन दे बैठा। इसलिए युद्ध तो मुझे उसकी ओर से करना होगा। पर एक बात बताये देता हूं। वह यह कि यदि कर्ण मुझे सारथी बनायेगा तो मेरे कारण उसका तेज नष्ट हो जायगा और अर्जुन के प्राणों की रक्षा हो जाएगी। किसी प्रकार का भय न करो। जुए के खेल में फंस कर द्रौपदी और तुम लोगों को जो कष्ट झेलने पड़े उनका अब अंत आगया समझो। तुम्हारा अब कल्याण ही है। विधि की गति को कोई टाल नहीं सकता। इस समय की मेरी भूल को क्षमा कर देना।"

: ५३ :

देवराज की भूल

एक बार देवराज इंद्र, अपनी राज-सत्ता के गर्व में आकर मदांध हो गए। उन्हें देवोचित मर्यादा का भी ध्यान न रहा। कहीं से सुन लिया कि सिंहासन पर बैठे हुए राजा के लिए यह आवश्यक नहीं कि किसी का आदर

करने के लिए आसन से उठा जाए। इसीको देवराज इंद्र ने शास्त्र मान लिया। एक बार आचार्य बृहस्पति सभा में पधारे। पर देवराज अपनी उक्त धारणा के फलस्वरूप न तो आसन से उठे, न अर्घ्य-पाद्य-आसन आदि ही देकर देवगुरु का समुचित सत्कार किया। देवगुरु बृहस्पति, जो सभी विद्याओं के पारंगत थे और जिनकी न केवल देवता, बल्कि असुर भी पूजा किया करते थे, देवराज की यह अशिष्टता देख कर बड़े खिन्न हुए। फिर भी यह सोच कर कि ऐश्वर्य के मद के कारण ही यह भूल इंद्र से हुई है, वे चुपचाप इंद्रसभा छोड़ कर अपने घर चले गए। देवगुरु के बिना इंद्र की सभा श्री-विहीन हो गई।

अब इंद्र को अपनी भूल मालूम हुई। उनका कलेजा धड़कने लगा। उन्हें भय हुआ कि कहीं कोई अनर्थ न हो जाय। उन्होंने आचार्य के पैरों पड़ कर क्षमा मांगने का निश्चय किया।

लेकिन आचार्य का तो कहीं पता ही नहीं था। उन्होंने अदृश्य-रूप ले लिया और इंद्र के बहुत खोजने पर भी उनका कहीं पता न चला। इससे देवराज बड़े उदास हो गये और अनर्थ की भावी आशंका मानों उन्हें खाने लगी।

इधर बृहस्पति के चले जाने के बाद ही देवराज की शक्ति घटने लग गई। ज्यों-ज्यों इंद्र-देवताओं की शक्ति घटती गई त्यों-त्यों असुरों की शक्ति बढ़ती गई। और समय पा कर असुरों ने देवताओं पर धावा बोल दिया। देवताओं की असुरों के हाथों बुरी गत हुई। यह देख कर ब्रह्मा दुःखी हुए। उनके हृदय को चोट लगी।

बोले—"देवताओ! इंद्र की नासमझी के कारण तुम लोग आचार्य बृहस्पति को गंवा बैठे। त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप बड़े तपस्वी हैं। अब तुम उनके पास जाओ और उनसे आचार्य बनने की प्रार्थना करो। तब तुम्हारा काम ठीक से होगा और उसमें कोई कमी न रहेगी।"

यह सुन देवता बड़े खुश हुए और ब्रह्मदेव के कहे अनुसार त्वष्टा के यहां गए। त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप यद्यपि उमर में छोटे थे, फिर भी महान्

तपस्वी थे। देवताओं ने जाकर उनसे निवेदन किया---"आप अल्पवय के होने पर भी सभी वेदों के पारंगत हैं। कृपा करके आप हमारे पुरोहित-आचार्य बन जायं।" विश्वरूप ने देवताओं की बात मान ली।

तपस्वी और विशुद्ध आचरण वाले विश्वरूप से शिक्षा पाकर देवताओं की शक्ति बढ़ी और वे असुरों के त्रास से बच गये।

विश्वरूप थे तो त्वष्टा के पुत्र; परंतु उनकी माता असुर-कुल की थीं---देव-कुल की नहीं। इस कारण इंद्र के मन में विश्वरूप के प्रति शंका पैदा हो गई। वे सोचने लगे कि जब इनकी माता असुर-कुल की है तो कहीं ये असुरों के तरफदार न हों। देवराज की यह शंका दिन-पर-दिन बढ़ती ही गई और वे यहां तक सोचने लगे कि उनके कारण मुझ पर और कोई विपद् न आ जाय। इस विचार से देवराज ने तपस्वी विश्वरूप को धोखा देकर उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए अप्सराएं भेजना शुरू किया। इंद्र की आज्ञा पाकर अप्सराएं विश्वरूप के सामने जाकर नाचने-गाने लगीं और कामवासना को भड़काने वाले हाव-भाव दिखा कर उन को मोह-जाल में फंसाने की चेष्टा करने लगीं; किंतु विश्वरूप इन बातों से जरा भी प्रभावित न हुए। अपने ब्रह्मचर्य पर अटल रहे।

जब देवराज ने ऐसी चालों से काम न बनते देखा तो घोर पाप करने पर उतारू हो गए। उन्होंने तपस्वी विश्वरूप को वज्रप्रहार करके मार डाला; पर इससे उनको ब्रह्म-हत्या का महान् पातक लगा। यह पाप-पंक किसी प्रकार धोये न धुला। तब इंद्र ने अपने पाप का प्रायश्चित किया और अपना पाप सारे संसार को बांट दिया। कहा जाता है कि इंद्र के इसी पाप के कारण धरती के कुछ हिस्से खारे हो गए हैं और स्त्रियों को कुछ ऐसे शारीरिक कष्ट सहने पड़े हैं, जो पुरुषों को नहीं होते। जल के फेन और बुलबुले इसी पाप के परिणाम कहे जाते हैं।



जब त्वष्टा को मालूम हुआ कि इंद्र ने उनके पुत्र की हत्या कर दी तो उन्हें इंद्र पर असीम क्रोध हुआ। उन्होंने इंद्र से बदला लेने की ठानी।

और इसी कामना से होमाग्नि में मंत्र पढ़ कर आहुति दी। इस होमाग्नि से वृत्रासुर नाम का एक दैत्य निकला, जो आगे चल कर इंद्र का शत्रु बना। आग से उत्पन्न होते हुए वृत्रासुर को पुकार कर त्वष्टा ने कहा--"हे इंद्र-रिपु! तुम आगे बढ़ो और मेरी कामना है कि तुम्हारे हाथों पातकी इंद्र का वध हो।"

त्वष्टा के आदेशानुसार वृत्रासुर इंद्र को मारने निकल पड़ा। वृत्रासुर और इंद्र में भारी युद्ध हुआ। वृत्रासुर का पलड़ा भारी हो रहा था। ऋषि-मुनियों को भय हुआ कि कहीं इंद्र की पराजय न हो जाय। उन्होंने भगवान् विष्णु की शरण ली। उनको अभय देकर भगवान् बोले--"डरो मत। इंद्र के वज्र में मैं प्रवेश करूंगा जिससे अंत में देवराज ही की जीत होगी।"

ऋषि-मुनि तथा देवता भगवान् विष्णु से अभय प्राप्त कर के वृत्रासुर के पास गये और बोले--"वृत्र! तुम इंद्र से मित्रता कर लो। तुम दोनों समान बलशाली हो। तुम दोनों के इस युद्ध के कारण संसार को बहुत पीड़ा पहुंच रही है। लोग बड़े तंग आ गये हैं।"

"निर्दोष तपस्वियो! आप क्षमा कीजिए। इंद्र मे और मुझमें एकता कैसे हो सकती है? समान तेजवालों में कभी मित्रता होते आपने देखी है?" वृत्र ने नम्रता से कहा।

"तुम इस बात में संदेह न करो! सज्जनों की मित्रता सदा स्थिर ही हुआ करती है--चंचल नहीं।" ऋषियों ने वृत्र को समझाया।

वृत्र ने मान लिया। वह बोला--"आप लोगों की इच्छा पूर्ण हो। मैं युद्ध बंद किये देता हूं; किंतु एक बात है। इंद्र का मुझे कोई भरोसा नहीं है। धोखा देकर कहीं वह मुझ पर घात न कर बैठें! अतः आप मुझे यह वर-दान दें कि इंद्र द्वारा मैं पत्थर, काठ, या धातु के बने किन्हीं शुष्क या गीले हथियारों से या बाण से न मारा जाऊं। न मैं दिन में, न रात में ही मारा जाऊं। इतना आप करेंगे तो कृपा होगी।"

ऋषियों ने 'तथास्तु' कह कर वरदान दिया और विदा हुए। वृत्रासुर का भय ठीक ही निकला। इंद्र की मित्रता झूठी और दिखावटी साबित हुई।

मित्रता करना तो दूर, देवराज तो वृत्र को मारने की ही ताक में थे। एक दिन संध्या के समय समुद्र के किनारे इंद्र की वृत्र के साथ भेंट हो गई। देवराज ने सोचा कि असुर को मारने का यही ठीक समय है। न तो अब दिन है, न रात। इस सुअवसर से लाभ उठा लूं। यह सोच कर इंद्र ने वृत्रासुर पर आक्रमण किया। दोनों में काफी देर तक युद्ध होता रहा, पर हार-जीत का निर्णय न हो सका। अंत में वृत्र ने कहा—"अरे अधम! अपने उस वज्र का मुझ पर प्रहार क्यों नहीं करता, जिसका वार कभी खाली नहीं जाता? सुना है, तेरे उस शस्त्र में स्वयं हरि ने प्रवेश किया है। उसी का वार कर न, जिससे मैं सद्‌गति को तो पहुंच जाऊं।" यह कह कर वृत्र ने हरि का ध्यान किया और उनकी स्तुति करने लगा।

हरि का ध्यान करते हुए वृत्र पर देवराज ने अपने वज्र से प्रहार किया और उसका दाहिना हाथ काट दिया। किन्तु वृत्रासुर इससे विचलित न हुआ। अधिक उत्साह के साथ बाएं हाथ में एक मूसल लेकर उसने इंद्र पर आघात किया। तब इंद्र ने उसका बायां हाथ भी काट डाला। दोनों हाथों के कट जाने पर वृत्र ने मुंह खोलकर इन्द्र को एकदम निगल लिया। यह देख देवता लोग चौंक पड़े और शोर मचाने लगे।

परंतु इंद्र मरे नहीं। वृत्र का पेट चीर कर निकल आये। उन्होंने मंत्र पढ़ कर समुद्र के फेन में ही वज्र का आह्वान किया और वही फेन वृत्रासुर पर चला दिया। ठीक उसी समय भगवान् हरि ने उस फेन में प्रवेश किया और वृत्रासुर मृत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सारा संसार जो इस लगातार होने वाले युद्ध से पीड़ित था, वृत्रासुर के मारे जाने से बड़ा खुश हुआ। पर इंद्र के मन में शांति नहीं थी। एक तो ब्रह्म-हत्या का पाप उन पर पहले से ही था, दूसरे प्रतिज्ञा-भंग करके वृत्र को जो मारा, उससे वे तेज-विहीन हो गये। अपमान एवं पाप का बोझ उनके लिए असह्य हो उठा। वे बहुत लज्जा अनुभव करने लगे और किसी को मुंह दिखाने योग्य न रहे। इस कारण अदृश्य होकर छिपे-छिपे रहने लगे।

राजा के बिना प्रजा नहीं रह सकती। राजा से मतलब किसी एक व्यक्ति-विशेष से ही नहीं होता, बल्कि किसी भी राजवंश या राज-काज करने वाली संस्था से भी हो सकता है। देवराज के अदृश्य हो जाने से देवता और ऋषि-मुनि बहुत उदास हो गये।

मर्त्यलोक के राजा नहुष बड़े प्रतापी, रण-कुशल और शीलवान थे। देवताओं और ऋषियों ने उन्हीं नहुष के पास जाकर प्रार्थना की कि इस समय आप ही इंद्र का पद स्वीकार करें और हमारे अधीश बन जायं।

नहुष स्वभाव के बड़े नम्र थे। ऋषियों और देवताओं की प्रार्थना सुनकर बोले––"मुझमें इतनी सामर्थ्य कहां कि मैं आप लोगों की रक्षा कर सकूं! मेरी और इंद्र की तुलना ही क्या!"

पर देवताओं ने आग्रह करके कहा––"हमारी तपस्या का सारा फल आपको प्राप्त हो जायगा। इसके साथ ही जिस पर भी आपकी दृष्टि पड़ेगी, उसीका तेज आपको मिल जायगा। इससे आप बड़े शक्ति-संपन्न हो जायेंगे। आप स्वर्ग में पधारिये और देवराज के पद को सुशोभित कीजिये।"

इस पर राजा नहुष ने ऋषियों और देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर ली।



तात्पर्य यह कि क्रांति कोई नई बात नहीं है। इस पौराणिक आख्यान में यह बताया गया है कि देवलोक में भी क्रांति हुई और देवताओं ने इंद्र को सिंहासनच्युत कर के नहुष को देवराज बना लिया। आगे यह भी पढ़ने योग्य है कि नहुष का अंत में पतन कैसे हुआ।

: ५४ :

नहुष की कथा

ब्रह्म-हत्या के दोष से पीड़ित हो कर पद-च्युत होने के बाद इंद्र कहीं जा कर छिप रहे और देवराज के पद पर महाराज नहुष सुशोभित हुए।

शुरू-शुरू में देवताओं में नहुष का बड़ा मान था। मर्त्यलोक में राजा रहते समय उन्होंने जो यश और पुण्य कमाया था उससे उनकी बुद्धि स्थिर रहा करती थी और वे पाप कर्मों से बचे रहे। उसके बाद उनके बुरे दिन प्रारंभ हो गये। उनकी नम्रता और सच्चरित्रता जाती रही। इंद्र के पद को प्राप्त करने से वे मदांध हो गये।

स्वर्गलोक में सुख-भोग ही तो प्रधान होता है। अतः देवेंद्र नहुष भोग-विलास में लगे रहे। उनके मन में काम-वासना का निवास हो गया। बुद्धि ठिकाने न रही।

एक दिन दुष्ट-बुद्धि नहुष ने सभासदों को आज्ञा देकर कहा—"क्या कारण है कि देवराज की रानी शची मेरे पास अभी तक नहीं आई? इंद्र तो अब मैं हूं न! शची को शीघ्र ही मेरे भवन में भेजना चाहिये।"

इंद्र-पत्नी ने जब यह बात सुनी तो उन्हें असीम दुःख और क्रोध हुआ। तत्काल ही वह देवगुरु बृहस्पति के पास गई और विलाप करने लगीं—"आचार्य देव, इस पापी से मेरी रक्षा करें।"

गुरु बृहस्पति ने इंद्राणी को अभय देकर कहा—"पुत्री! भय न करो। शीघ्र ही इंद्र वापस आयंगे। उन्हें तुम फिर से प्राप्त करोगी। चिंता न करो।"

नहुष को जब यह बात मालूम हुई कि इंद्राणी मेरी इच्छा पूरी करने को राजी नहीं हैं और जाकर देवगुरु की शरण ली है तो उसके क्रोध का ठिकाना न रहा।

नहुष को क्रोध के मारे आपे से बाहर होते देख देवता बहुत डरे। वे बोले—"देवराज, आप क्रोध न करें। आप नाराज हो जायंगे तो सारे विश्व को पीड़ा पहुंचेगी। आखिर शचीदेवी पराई स्त्री हैं। उन्हें पाने की आप अभिलाषा न करें। आप धर्म की रक्षा करें।"

पर वासनांध नहुष ने देवों की बात पर ध्यान नहीं दिया। देवता बोल ही रहे थे कि नहुष बात काट कर बोला—"अच्छा! आपको अब धर्म की बातें सूझने लगी हैं! उन दिनों जब इंद्र ने गौतम-पत्नी अहल्या का सतीत्व नष्ट किया था तब आपका धर्म कहां गया था? उस समय आपने इंद्र को कुमार्ग से क्यों नहीं रोका? तपस्या करते समय आचार्य विश्वरूप की जब इंद्र ने हत्या की थी तब आप लोग क्या करते थे? वृत्र को जब इंद्र ने धोखे से मारा था तब आप लोगों ने उसे क्यों क्षमा कर दिया था? मैं कहता हूं कि शचीदेवी के लिए यही श्रेयस्कर होगा कि अब वह मेरे पास आजाय। और आप लोगों की भी भलाई इसी में है कि उसको किसी प्रकार समझा कर मेरे हवाले कर दें।"

नहुष के क्रोध से देवता डर गये। उन्हें भय हुआ कि वे कहीं कोई अनर्थ न करदें। उन्होंने आपस में सलाह कर के तय किया कि इंद्र-पत्नी को समझा-बुझाकर किसी तरह नहुष के इच्छानुकल बनादें। यह विचार कर सभी देवता इकट्ठे होकर इंद्राणी के पास पहुंचे। उन्होंने इंद्र-पत्नी को नहुष की कीर्ति और तेज आदि के बारे में समझा कर आग्रह-पूर्वक अनुरोध किया कि वे देवराज की इच्छा पूरी करने में आनाकानी न करें। सती शचीदेवी यह सुन कर भय व क्रोध से कांप उठीं। वह बृहस्पति के पास दौड़ी गईं, और हाहा-कार कर के बोलीं—"मुझसे यह हो नहीं सकता। हे ब्राह्मणोत्तम! मैं इस समय आप ही की शरण में हूँ। इस बिपद् से मेरी रक्षा करें।"

बृहस्पति ने शचीदेवी को धीरज देते हुए कहा, "शरणागत दीन को शत्रु के हाथों सौंपने वाले—दगा करने वाले—का निश्चय ही नाश हो जायगा। उसके बोये हुए बीज भी उग नहीं सकेंगे, सड़कर मिट जायंगे। निश्चय रखो कि मैं तुम्हारा साथ नहीं छोडूंगा। डरो नहीं। नहुष का सर्वनाश निकट ही है। समय के फेर से जो संकट पहुंचता है वह समय के बीत जाने से ही दूर भी होता है।"

बृहस्पति ने संकट से बचने का जो मार्ग गूढ़ वाक्यों में शची को बताया तो प्रखर-बुद्धि इंद्राणी ने उसे तुरत समझ लिया। उन्हें धीरज बंधा और वह बेधड़क नहुष के पास चली गईं।

इंद्र-पद के घमंड और काम-वासना के कारण नहुष की बुद्धि ठिकाने नहीं थी। इंद्राणी को देखते ही वह हर्ष से फूला न समाया। उसने सोचा कि इंद्राणी अब मेरी इच्छा पूरी करने के लिए ही आई है। वह मेरी ही बन गई है। प्रेम भरे शब्दों में वह शचीदेवी से बोला—

"हे सुंदरी! आज तो तीनों लोकों का मैं ही स्वामी हूं, न्याय करने वाला हूं। इसलिए पाप का भय तुम्हें नहीं होना चाहिए। तुम मेरी पत्नी बन जाओ।"

दुष्ट नहुष की बातें सुनकर सती इंद्राणी कांप उठी। फिर भी उसने अपने आपको संभाल लिया और बोली— "देवराज! धीरज धरिये! आखिर मुझे आप की ही तो होना है। पर फिर भी इस बात का पता और लगा लेना चाहिए कि इंद्र अभी जीवित हैं या नहीं। और अगर जीवित हैं तो कहां हैं? इधर-उधर उनकी जांच-पड़ताल कर लेनी चाहिए। इसके बाद अगर वे न मिलें तो फिर मैं निःशंक होकर आपके पास चली आऊंगी। तब मुझे कोई पाप नहीं लग सकता। आशा है, मेरी इस प्रार्थना को मानने में आपको कोई आपत्ति न होगी।"

यह सुनकर नहुष बहुत खुश हुआ। बोला—

"तुम्हारा कहना ठीक है। इंद्र की खोज कर लेना उचित होगा। उसका पता लगा कर जरूर वापस आजाना। देखो, मुझे जो वचन दे

चुकी हो उसे न तोड़ना ।"

इस प्रकार नहुष को राजी करके शचीदेवी बृहस्पति के घर लौट आईं ।



उधर देवताओं ने भगवान् विष्णु के पास जाकर विनती की-- "जगन्नाथ ! आप ही के तेज से वृत्रासुर का संहार हुआ था; किंतु ब्रह्म-हत्या का जो पाप इंद्र को लगा है उससे पीड़ित होकर लोकनिंदा के डर से वे कहीं छिपे हैं । आप ही कोई ऐसा रास्ता बतावें कि जिससे इंद्र पाप से विमुक्त हो सकें और दुष्ट नहुष से इंद्र-पत्नी की रक्षा हो ।"

भगवान् विष्णु बोले-- "इन्द्र को चाहिए कि वह मेरी आराधना करे। मेरी भक्ति करने से उसके हृदय का कलंक धुल जायगा और कामांध नहुष का भी नाश होगा ।"



उधर इंद्राणी ने सती-देवी की पूजा करके उनके अनुग्रह से इंद्र के निवास-स्थान का पता लगा लिया और वहां जा पहुंचीं । इंद्र ने अपना परमाणु जितना छोटा रूप बना लिया था और मान-सरोवर के एक कमल की नाल के रेशे से चिपके हुए तपस्या व भगवान् की प्रार्थना करते हुए प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब मेरे पाप धुलकर मेरे भाग्य जागेंगे। पति की यह दशा देखकर सती शचीदेवी से न रहा गया । वह शोक-विह्वल हो कर रो पड़ीं । रोते-रोते इंद्र को अपनी कष्ट-कथा भी कह सुनाई ।

इंद्र ने शची को ढाढ़स देते हुए कहा-- "प्रिये ! धीरज रखो। नहुष घोर पाप करने पर उतारू हो गया है । नहुष के अधःपतन का समय अब दूर नहीं है । तुम एक काम करो । उसके पास अकेली ही चली जाओ और यह दिखाओ कि उसकी इच्छा पूरी करने को तुम राजी हो । लेकिन नहुष से यह कहना कि वह पालकी में बैठ कर तुम्हारे महल में आवे और सातों ऋषि (सप्तर्षि) उसकी पालकी उठा कर चलें। इससे नहुष का सर्वनाश हो जायगा ।"

पति की बात मानकर शचीदेवी सीधी नहुष के पास गई। शची को देख कर नहुष बड़ा खुश हुआ। सोचा कि इंद्राणी बात की पक्की है। बोला— "हे मंगलकारिणी शची, मैं तुमसे बहुत खुश हूं। तुम्हारी जो भी अभिलाषा हो मै उसे पूरा करने को तैयार हूं। तुमने अपने वचन का पालन किया और समय पाकर आगईं इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं।"

"आपकी प्रसन्नता को मै अपना अहोभाग्य समझती हूं। आप तो सारे जगत् के अधीश हैं—आप ही मेरे भावी पति है। इस कारण मैं आपकी इच्छा पूरी करूं उससे पहले आप मेरी एक इच्छा पूरी करने की कृपा करें। आप मेरे यहां ऐसे भव्य वाहन पर सवार होकर पधारें जो भगवान् विष्णु, रुद्र या और किसी देव या असुर को भी दुर्लभ हो। मेरी इच्छा है कि उस यान को सप्तर्षि उठा कर चलें। तब मै बढ़ कर आपका स्वागत करूंगी और आपकी हो जाऊंगी।"

"सुंदरी! बलिहारी है तुम्हारी कल्पना की! जिस वाहन की तुम्हारी इच्छा है वही मुझे भी बहुत पसंद है। फिर मुझे यह भी वर प्राप्त है कि जिसे देखूं उसीका तेज मुझ में आजाय। तो यह भी बहुत सूझ की बात है कि सातों ऋषि मेरी पालकी वहन करें। जाओ! तुम्हारी इच्छा जरूर ही पूरी होगी।" नहुष कामोन्मत्त होता हुआ बोला।

शची के अपने भवन में चले जाने के बाद नहुष ने सातों ऋषियों को बुला भेजा और आज्ञा दी कि उसकी पालकी उठा कर उसे शचीदेवी के महल पर ले चलें। ऋषियों ने लाचार होकर आज्ञा मान ली। ऋषियों का यह घोर अपमान देख कर तीनों लोक अज्ञात भय से कांप उठे।

नहुष की पालकी को उठाते हुए ऋषि ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते जाते थे त्यों-त्यों नहुष के पाप का बोझ भी बढ़ता जाता था। नहुष के मन में तो शची की सुंदर मूर्त्ति अंकित थी और उसके मिलने की कल्पना से ही वह उतावला हो उठा। जितनी जल्दी हो सके उस सुंदरी को प्राप्त करने की उसकी

उत्कंठा बलवती होती गई। वह बार-बार ऋषियों को डांट कर कहने लगा कि जल्दी चलो, और जल्दी चलो। अगस्त्य मुनि को, जो पालकी उठाने वालों में से थे, उसने लात मार कर डांटते हुए कहा--"सर्प! सर्प!!"*

आज कल 'रिक्शा' चलाने वालों को रिक्शा पर बैठे लोग 'चलो! जरा जल्दी चलो!!' कह कर तेजी से चलने को कहते हैं। कुछ उसी प्रकार का दृश्य उस समय भी रहा होगा।

महर्षि अगस्त्य को नहुष ने जब लात मार कर डांटा तो उसके पाप का घड़ा लबालब भर चुका था। इस व्यवहार से अगस्त्य मुनि बड़े क्रुद्ध हुए और बोले--

"अधम! अभी स्वर्ग से तेरा पतन हो। तू ने ऋषियों को 'सर्प! सर्प!' कहकर पुकारा है, इसलिए तू सर्प (अजगर) का ही जन्म लेकर मर्त्यलोक में ही पड़ा रह।"

अगस्त्य का इस प्रकार शाप देना था कि नहुष पालकी से नीचे औंधे मुंह गिर पड़ा और अजगर का शरीर लेकर पृथ्वी में बहुत काल तक जीता और शाप से छुटकारा पाने की राह देखता रहा।



इंद्र फिर से देवराज के पद पर सुशोभित हुआ और शची देवी का मन शांत हो गया।



उपप्लव्य में महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदी को यह कथा सुनाकर मद्रराज शल्य ने उनको दिलासा दिया और कहा--

"जीत उन्हीं की होती है जो धीरज से काम लेते हैं। ऐश्वर्य के घमंड में मदांध होने वालों का नाश भी निश्चय ही हुआ करता है। युधिष्ठिर! तुमने अपने भाइयों एवं द्रौपदी के साथ ठीक उसी प्रकार असंख्य कष्ट उठाए जैसे इंद्र और शची ने उठाए थे। शीघ्र ही तुम इन सभी कष्टों

---

*"सर्प! सर्प!!" का अर्थ होता है--"चलो! चलो!!"

से छूट जाओगे और राज्यसुख भी भोगोगे। कर्ण और दुर्योधन की बुद्धि फिर गई है। अपनी दुष्टता के फलस्वरूप निश्चय ही उनका सर्वनाश होकर रहेगा, जैसे नहुष का हुआ।

: ५५ :

राजदूत संजय

उपप्लव्य-नगर में रहते हुए पांडवों ने अपने मित्र-राजाओं को दूतों द्वारा संदेश भेज कर कोई सात अक्षौहिणी सेना एकत्र की। उधर कौरवों ने भी अपने मित्रों द्वारा काफ़ी बड़ी सेना इकट्ठी कर ली, जो ग्यारह अक्षौहिणी थी।

आजकल के सेना-विभाग में जैसे विभिन्न दलों को मिला कर एक डिवीजन बनता है, वैसे ही उन दिनों कई विभाग मिलाकर एक अक्षौहिणी बनती थी। उन दिनों की फौजी रीति यह थी कि एक रथ, एक हाथी, तीन घोड़े और पांच पैदल सिपाहियों के हिसाब से सेना इकट्ठी की जाए। एक अक्षौहिणी में २१,८७० रथ होते थे और हाथी, घोड़े, पैदल आदि की संख्या उसी हिसाब से होती थी। साथ ही हर तरह के युद्ध के सामान और हथियार भी इकट्ठे हुआ करते थे। आजकल आर्मर्ड कार (बख्तर-बंद गाड़ियां) जो काम देती हैं वही काम उन दिनों रथों से लिया जाता था। आजकल की लड़ाइयों में 'टैंकों' का जो स्थान है, वही उन दिनों हाथियों को प्राप्त था।

पांचाल नरेश के पुरोहित, जो युधिष्ठिर की ओर से राजदूत बन कर हस्तिनापुर गए थे, नियत समय पर धृतराष्ट्र की राज-सभा में पहुंचे। यथाविधि कुशल-समाचार पूछने के बाद पांडवों की ओर से संधि का प्रस्ताव करते हुए वे बोले—

"अनादि-काल से जो धर्म-तत्त्व प्रचलित रहा है, वह आपको विदित

ही है। राजकुल का यह धर्म रहा है कि पिता की सम्पत्ति पर पुत्रों का अधिकार होता है। जिस प्रकार राजा धृतराष्ट्र महाराज विचित्रवीर्य के पुत्र हैं, उसी प्रकार महाराज पांडु भी थे। तो उनकी पैतृक सम्पत्ति पर भी दोनों का समान अधिकार होना चाहिए। लेकिन यह कहां का न्याय है कि धृतराष्ट्र के पुत्र संपूर्ण राज्य के स्वामी होजायं और पांडु-पुत्र राज्य से वंचित रहें? कुरुवंश के वीर पांडवों को जो कुछ कष्ट उठाना पड़ा, उस सबको वे भूल गए हैं और अब शांति की इच्छा रखते हुए संधि की प्रार्थना करते हैं। उनका विचार है कि युद्ध से संसार का नाश ही होगा और इसी कारण वे युद्ध से घृणा भी करते हैं--वे लड़ना नहीं चाहते। इसलिए न्याय एवं पहले के समझौते के अनुसार यही उचित होगा कि आप उनका हिस्सा उन्हें दे देने की कृपा करें। इसमें विलंब न कीजिए।"

यह सुन विवेकशील और महारथी भीष्म बोले--

"ईश्वर की कृपा से पांडव कुशल से हैं। कितने ही राजा उनकी सहायता करने को तैयार हैं। इतने शक्ति-सम्पन्न होने पर भी वे युद्ध की चाह नहीं रखते--संधि ही चाहते हैं। इसलिए यही न्यायोचित है कि उन्हें उनका राज्य वापस दे दिया जाय।"

भीष्म की वह बातें कर्ण को अप्रिय लगीं। वह बड़े क्रोध के साथ भीष्म की बात काटकर बोल उठा--"ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आपकी बातों मे कोई नयी दलील तो है नहीं। आप तो वही पुरानी राम-कहानी सुना रहे हैं। इससे क्या लाभ होना है? युधिष्ठिर अपने राज्य को जुए के दाव में रख कर हार चुके। अब उसे वापस मांगने का उन्हें अधिकार ही क्या रहा? लेकिन शायद युधिष्ठिर इस धौंस से राज्य वापस कर देने की मांग कर रहे हों कि मत्स्यराज एवं पांचाल राज की सेनाएं उनकी तरफ हैं; परंतु यह युधिष्ठिर की भारी भूल है। यह बात आप साफ समझलें कि धमकी देकर दुर्योधन से कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता और फिर तेरहवां बरस पूरा होने से पहले ही उन्होंने प्रतिज्ञा-भंग करके अपने को प्रकट कर दिया है। इसलिए शर्त के अनुसार उनको फिर बारह

बरस के लिए वनवास भोगना पड़ेगा ।"

कर्ण के इस प्रकार बीच में उनकी बात काटकर बोलने से भीष्म को बड़ा क्रोध आया। वे बोले—"राधा के पुत्र! तुम बेकार की बातें कर रहे हो। यदि हम युधिष्ठिर के दूत के कहे अनुसार संधि न करेंगे तो निश्चय ही युद्ध छिड़ जायगा और उसमें दुर्योधन आदि सबको पराजित होकर मृत्यु के मुंह में जाना पड़ेगा ।"

भीष्म की बातों से सभा में खलबली मचते देखकर धृतराष्ट्र बोले—"पांडवों की ही नहीं, बल्कि सारे संसार की भलाई को ध्यान में रख कर मैंने यह निश्चय किया है कि अपनी तरफ से संजय को दूत बनाकर पांडवों के पास भेजा जाय। हे द्विजश्रेष्ठ, आप जाकर युधिष्ठिर को इस बात की सूचना देने की कृपा करें ।"

फिर धृतराष्ट्र ने संजय को बुलाकर कहा— "संजय! तुम पांडु-पुत्रों के पास जाओ और मेरी तरफ से उनकी कुशल पूछो। फिर वहां श्रीकृष्ण, सात्यकी, विराट आदि राजाओं से भी कहना कि मैंने सप्रेम उन सबकी कुशल पूछी है। वहां जितने राजा उपस्थित हैं उन सबको शांति से समझा कर कहना कि धृतराष्ट्र ने उन सबको सविनय नमस्कार कहा है। ऐसी बातें न करना जो किसी को बुरी लगें या कोई नाराज हो जाए। इस तरह तुम वहां जाकर मेरी ओर से युद्ध न होने की, शांति की, चेष्टा करो ।"

संजय उपप्लव्य को रवाना हो गये। वहां पहुंच कर युधिष्ठिर की सभा में सबको विधिवत् प्रणाम करके बोले—

"धर्मराज! मेरे अहोभाग्य कि मुझे फिर आपके दर्शन हुए। राजा लोगों से घिरे हुए आप ऐसे ही प्रतीत हो रहे हैं जैसे देवराज इंद्र। यह देख कर मेरा मन बड़ा प्रसन्न हो रहा है, मुझे असीम आनंद का अनुभव हो रहा है। महाराज धृतराष्ट्र ने आपकी कुशल पूछी है और कहा है कि वे युद्ध की बात ही नहीं करना चाहते। वे तो आपकी मित्रता ही चाहते हैं और शांति की इच्छा रखते हैं ।"

संजय की ये बातें सुन कर राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और बोले–"यदि यही बात है तो धृतराष्ट्र के पुत्रों की रक्षा हो गई। हम सब भी दारुण दुःख से बच गए। मैं भी संधि ही चाहता हूं। युद्ध का विचार करते ही मेरा मन घृणा से भर जाता है। यदि हमें अपना राज्य वापस मिल जाय तो हम अपने सारे कष्ट भूल जायेंगे।"

संजय ने कहा––"युधिष्ठिर ! धृतराष्ट्र के पुत्र निरे मूर्ख हैं। वे न पिता की बात पर ध्यान देते हैं, न भीष्म की ही कुछ सुनते हैं। वे तो अपनी ही मूर्खता की धुन में मस्त रहते हैं। फिर भी आपको उत्तेजित न होना चाहिए। आप सदा से ही न्याय एवं धर्म पर स्थिर रहे हैं। आप युद्ध की चाह न करें। युद्ध करके जो संपत्ति प्राप्त की जाती है, उससे कभी सुख की आशा नहीं की जा सकती। बंधु-बांधवों का वध करके जो राज्य प्राप्त किया जाय उससे किसी की कुछ भी भलाई नहीं हो सकती। अतः राजन्, आप युद्ध का विचार तक न करें। समुद्र तक फैले हुए विशाल राज्य को प्राप्त कर लेने के बाद भी यह किसी के बस की बात नहीं है कि वह बुढ़ापे और मृत्यु पर विजय पाले। यद्यपि दुर्योधन और उसके साथी मूर्खता करने पर ही तुले हुए हैं, तथापि आप तो अपना धर्म एवं अपनी क्षमाशीलता कदापि न छोड़ें। चाहे दुर्योधन आपको आपका राज्य वापस देने से इन्कार भी क्यों न करदे तो भी आपको चाहिए कि आप न्याय के मार्ग से विमुख न हों।"

संजय की ये बातें सुन कर युधिष्ठिर बोले––"संजय ! संभव है तुम्हारी बातें सच हों और इसमें तो संदेह ही क्या है कि धर्म ही सबसे बड़ी चीज़ है। लेकिन हम अपनी ओर से तो अधर्म पर उतारू हो नहीं रहे हैं। श्रीकृष्ण धर्म का मर्म जानते हैं। वे दोनों पक्ष के लोगों के हित-चिंतक हैं। वे जो सलाह देंगे वैसा ही मैं करूंगा।"

श्रीकृष्ण बोले–– "जहां एक तरफ मैं पांडवों की भलाई चाहता हूं वहां यह भी चाहता हूं कि धृतराष्ट्र के पुत्र भी सुख-पूर्वक रहें। यह बड़ी जटिल समस्या है, जिसका हल करने के लिए मैं स्वयं हस्तिनापुर जाना उचित समझता हूं। मेरी यही इच्छा है कि पांडवों के हित को किसी तरह की

चोट पहुंचाये बिना कौरवों से संधि करली जा सकती हो तो करली जाय। यदि मैं इस में कृतकार्य हो जाऊं तो कौरवों के भी प्राण बच जायेंगे और मुझे भी पवित्र कार्य करने का यश प्राप्त होगा। यदि शांति स्थापित हो गई तो फिर पांचों पांडव, महाराज धृतराष्ट्र की सेवा-टहल तक करने को प्रस्तुत होंगे। शांति ही की वे इच्छा रखते हैं; परंतु साथ ही वे युद्ध के लिए भी तैयार हैं। अब यह महाराज धृतराष्ट्र का ही काम है कि दोनों बातों में से जिसे चाहें, पसंद करलें।"

श्रीकृष्ण के बाद युधिष्ठिर फिर बोले— "संजय! कौरवों की राज-सभा में जा कर महाराज धृतराष्ट्र को मेरी तरफ से प्रार्थनापूर्वक यह संदेशा सुनाना—'महाराज! यह आप ही की उदारता का फल था कि हमें प्रारंभ में ही राज्याभिषेक का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन दिनों आप ही ने तो मुझे राजा बनाया था। अब आप ही हमें राज्य-संपत्ति से वंचित करके अनाथों की भांति दूसरों के मोहताज न बनादें। दोनों पक्ष वालों के लिए, क्या इस विशाल संसार में सुख-पूर्वक जीवन बिताने के लिए, पर्याप्त स्थान नहीं है जो हम एक दूसरे के साथ शत्रुता करें।' इस प्रकार धृतराष्ट्र को आप मेरी यह प्रार्थना सुना देना।

"पितामह भीष्म को भी मेरा प्रणाम कहें और मेरी तरफ से उनसे यह अनुरोध करें कि वे ऐसा कोई उपाय करें जिससे उनके सभी पौत्र प्रेम-पूर्वक जीवन बिता सकें। यही संदेश चाचा विदुर को भी सुनाइयेगा। विदुर ही हमारे हित का उपाय बता सकेंगे और दुर्योधन को समझा कर मेरा यह संदेश सुनादें कि 'प्रिय भाई, राजकुमार हो कर यदि हमें मृगछाला पहन कर वनवास करना पड़ा तो वह तुम्हारे ही कारण। तुम्हींने हमारी पत्नी का राज-सभा में घोर अपमान किया, जिस से माता कुंती रो पड़ी थीं। हमने यह सब सह लिया, तुम हमें हमारा न्यायोचित अधिकार दे दो। अभी भी समय है। पराई संपत्ति की चाह न करना। कम-से-कम हमें पांच गांव तो दे देना। हम पांचों भाई इसी से संतोष कर लेंगे और संधि करने को तैयार होंगे। हे भाई, हम सभी हिल-मिलकर रहें और संतोष के साथ

दिन बितायें, ऐसी मेरी इच्छा है।' संजय ! दुर्योधन को मेरा यही संदेश सुना देना। मैं तो शांति के लिए भी तैयार हूं और युद्ध के लिए भी।"

युधिष्ठिर के ये संदेश लेकर संजय, पांडवों तथा श्रीकृष्ण से बिदा हो कर, हस्तिनापुर को रवाना हो गये।

: ५६ :

सुई की नोक जितनी भूमि भी नहीं

संजय को पांडवों के पास भेजने के बाद महाराज धृतराष्ट्र चिंता के मारे बड़े व्याकुल रहे। रात भर उन्हें नींद नहीं आई। उन्होंने विदुर को बुला भेजा और उनके आने पर उनके साथ ही बातें करते हुए सारी रात बिताई।

विदुर ने धृतराष्ट्र को समझाकर कहा—"राजन् ! पांडवों को राज्य वापस दे देना ही उचित होगा। दोनों पक्ष के लोगों की भलाई इसी में है। आपको चाहिए कि पांडवों के साथ आप वही व्यवहार करें जो अपने पुत्रों से करते रहे हैं। न्याय न केवल धर्म के बल्कि युक्ति के भी अनुकूल होता है।" विदुर इस प्रकार कई तरह से धृतराष्ट्र को उपदेश देते रहे।

दूसरे दिन सवेरे संजय पांडवों के पास से हस्तिनापुर लौट आये। राज-सभा में आकर उन्होंने युधिष्ठिर की सभा में जो चर्चा हुई थी उसका सारा हाल कह सुनाया। फिर बोले—

"खास कर दुर्योधन को चाहिए कि अर्जुन की बातें ध्यान से सुनें। अर्जुन ने कहा है कि इसमें कोई संदेह ही नहीं है कि श्रीकृष्ण और मैं दोनों मिल कर दुर्योधन और उनके साथियों का नाश करके ही रहेंगे। मेरा गांडीव धनुष युद्ध के लिए लालायित हो रहा है। धनुष की डोरी आप ही आप टंकार कर उठती है। तरकश से बाण ऊपर झांक कर पूछ रहे हैं—'कब ? कब ?' मूर्ख दुर्योधन का विनाशकाल निकट पहुंच चुका है। यही

कारण है कि वह हमें युद्ध के लिए छेड़ रहा है। उसे पता नहीं है कि जो अर्जुन सारे देवताओं को पराजित करने की सामर्थ्य रखता है वह दुर्योधन की क्या गत न बनायेगा, यही धनंजय का कहना था।"

संजय के इस प्रकार कहने पर भीष्म ने दुर्योधन को दुबारा समझा कर कहा--"दुर्योधन ! अर्जुन और श्रीकृष्ण को नर-नारायण का अवतार समझना। जब वे दोनों इकट्ठे होकर तुम्हारे विरुद्ध लड़ने लगेंगे तब तुम्हें इस बात की सचाई मालूम हो जायगी।"

दुर्योधन को समझाने के बाद भीष्म धृतराष्ट्र से बोले--"राजन् ! सूत-पुत्र कर्ण बार-बार यही दम भर रहा है कि मैं पांडवों को खतम कर डालूंगा। किंतु मै कहता हूं कि पांडवों की शक्ति का सोलहवां हिस्सा तक भी उसमें नहीं है। तुम्हारा पुत्र उसीका कहा माना करता है और अपने नाश का आप ही आयोजन कर रहा है। विराट नगर पर आक्रमण करते समय जब अर्जुन ने हमारा दर्प चूर किया था, कर्ण वहीं तो था ! वह वहां कुछ कर भी सका ? गंधर्व जब दुर्योधन को कैद करके ले गये तब यह ढपोलशंख कर्ण कहां छिप गया था ? गंधर्वों को अर्जुन ही ने तो भगाया था और दुर्योधन को उनसे मुक्त किया था।"

धृतराष्ट्र ने बड़े संतप्त हो कर दुर्योधन को समझाया-- "बेटा, भीष्म जो कहते हैं वही करने योग्य है। युद्ध न होने दो। संधि ही करना उचित है। यह सब मैं अनुभव करता हूं; परंतु क्या करूं ? मै कितनी ही बार क्यों न समझाऊं, फिर भी ये मूर्ख अपने ही रास्ते जा रहे हैं। जिन में विवेक और अनुभव है, वे सब एक स्वर से कहते है कि संधि ही कर लेनी चाहिए। मेरी भी यही राय है कि पांडवों से संधि करलें। पर पता नहीं, क्यों तुम इन सब पर ध्यान नहीं देते ?"

दुर्योधन, जो ये सब बातें सुन रहा था, उठा और अपने पिता का साहस बंधाता हुआ बोला-- "पिताजी, आप तो ऐसे भय-विह्वल हो रहे हैं, मानो हम सब कमजोर से भी कमजोर हैं। जितना सेना-बल चाहिए था, उतना हमने इकट्ठा कर लिया। अब इसमें कोई संदेह नहीं रहा कि

हम विजय अवश्य प्राप्त करेंगे। आप भी कैसे भोले लोग हैं जो यह भी नहीं समझते हैं कि स्वयं युधिष्ठिर हमारा सैन्य-बल देखकर घबरा उठे हैं और इसी कारण से आधे राज्य की बात छोड़कर अब केवल पांच गांवों की ही याचना कर रहे हैं। क्या इस पांच गांवों वाली मांग से यह नहीं सिद्ध होता कि हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना देखकर युधिष्ठिर के मन में भय हो गया है? आप मुझे यह बताइये कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना का पांडव अपनी सात अक्षौहिणी सेना से कैसे मुकाबला कर सकेंगे? इतने पर भी आपको हमारी विजय के बारे में संदेह हो रहा है! महान् आश्चर्य है!"

धृतराष्ट्र ने फिर समझाते हुए कहा—"बेटा, जब पांच गांव देने से ही युद्ध टलता है तो युद्ध से बाज आओ। इसमें तुमको क्या आपत्ति है? तुम्हारे पास तो फिर भी पूरा-का-पूरा ही राज्य रह जाता है। अब हठ न करो।"

लेकिन इस उपदेश से दुर्योधन चिढ़ गया और तेज होकर बोला—"मैं तो सुई की नोक बराबर भूमि भी पांडवों को नहीं देना चाहता। आपकी जो इच्छा हो, करें। अब इसका फैसला तो युद्ध-भूमि में ही होगा।" यह कहता-कहता दुर्योधन उठ खड़ा हुआ और बाहर चला आया। सभा में खलबली मच गई और गड़बड़ी में सभा भंग हो गई।



इधर संजय के उपप्लव्य से रवाना हो जाने के बाद युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से बोले—"वासुदेव! संजय धृतराष्ट्र के मानो दूसरे प्राण हैं। उनकी बातों से मुझे धृतराष्ट्र के मन की बात स्पष्ट रूप से मालूम हो गई। धृतराष्ट्र हमें कुछ दिये बिना ही संधि कर लेना चाहते हैं। पहले संजय ने मीठी बातें कीं तो मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। किंतु बाद में उन्होंने जो कुछ कहा, उससे मेरी प्रसन्नता चली गई। उनका वह कहना मुझे घोर अन्याय प्रतीत हुआ। धृतराष्ट्र ने हमसे सचाई नहीं बरती। परीक्षा का समय अब आ ही गया मालूम होता है। इस संकट भरी घड़ी में आपको छोड़कर और कोई हमारी रक्षा नहीं कर सकता। मैंने तो कहला भेजा है कि मैं तो केवल पांच ही गांवों से संतोष मान लूंगा। किंतु ऐसा लगता है कि वे दुष्ट इतना

भी देने को तैयार न होंगे। आप ही बताइये कि यह अन्याय सहा भी जाय तो कैसे ? इस बारे में आप ही हमें सलाह दे सकते हैं। धर्म, नीति एवं युक्ति के जानकार आपके सिवाय हमारे लिए और कोई नहीं है।"

• युधिष्ठिर की ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा— "युधिष्ठिर ! दोनों पक्ष के लोगों की भलाई के हित मैंने एक बार स्वयं हस्तिनापुर जाने का इरादा कर लिया है। धृतराष्ट्र की सभा में जाऊंगा और तुम लोगों के स्वत्वों को बिना युद्ध के बचाने की चेष्टा करूंगा। यदि मैं सफल हुआ तो इससे सारे संसार का ही कल्याण होगा।"

युधिष्ठिर ने कहा— "श्रीकृष्ण ! मुझे लगता है कि आप वहां न जायं। इस अवसर पर शत्रुओं के बीच आपका जाना ठीक नहीं मालूम देता। और वहां जाने से कुछ हो सकता है, ऐसा भी मुझे नहीं लगता। दुर्योधन ऐसा व्यक्ति नहीं जो अपना हठ छोड़ दे। फिर उसका कोई ठिकाना नहीं कि वह कब क्या कर बैठे ? इस कारण आपको ऐसी जगह भेजने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है। मुझे भय है कि कहीं वह आप पर ही कुछ न कर बैठे।"

श्रीकृष्ण बोले— "धर्मपुत्र ! मैं दुर्योधन से भली भांति परिचित हूं। फिर भी हमें प्रयत्न तो करना ही चाहिए, जिससे मुझे या तुम लोगों को संसार के लोग कोई दोष न दे सकें। किसीको यह कहने की गुंजाइश ही मैं नहीं रखना चाहता कि मैंने शांति स्थापित करने का जो प्रयास करना चाहिए था वह नहीं किया। मैं शांति की ही बातचीत करने के लिए दूत बनकर जा रहा हूं। मेरा वे बिगाड़ ही क्या सकते हैं ? और अगर उन्होंने कुछ छेड़छाड़ की तो मैं उन्हें वहीं खत्म कर दूंगा। भले ही मेरे शांतिदूत बनकर जाने से शांति स्थापित न हो सके, पर फिर भी कम-से-कम इतना तो होगा कि कोई हमें इस बात का दोषी नहीं ठहरा सकेगा कि हमने संधि के लिए कोई कसर छोड़ी। इसलिए मेरा तो जाना ही ठीक होगा। तुम इसमें आपत्ति न करो।"

इस पर युधिष्ठिर बोले— "श्रीकृष्ण ! आप तो सर्वज्ञ हैं। हमारे

गुणों व अवगुणों का पूर्ण ज्ञान आपको है और उनके गुणों व अवगुणों का भी। किसी बात को समझाने या किसी बात का समर्थन करने में आपसे चतुर कौन हो सकता है ? अतः हम अपनी स्थिति आपको और क्या बतायें ?"

यह सुन श्रीकृष्ण बोले-- "अजातशत्रु ! मैं तुम्हारे मन की बात जानता हूं। तुम्हारा मन सदा धर्म पर ही स्थित रहता है, धर्म का ही विचार करता रहता है। किंतु दुर्योधनादि के हृदयों में द्वेष ही भरा रहता है। जो-कुछ कहना होगा मैं सब वहां अवश्य उनसे कहूंगा और हर उचित ढंग से उन्हें समझाने का प्रयत्न करूंगा। मैं भलीभांति जानता हूं कि शांति-पूर्ण ढंग से बिना युद्ध के जो भी प्राप्त हो, बहुत थोड़ा होने पर भी तुम उसीको अधिक समझोगे। इस बात को ध्यान में रखते हुए मैं उनसे समझौते की बातचीत करूंगा। जो उत्पात हो रहे हैं उनसे तो युद्ध होने की ही सूचना मिलती है। फिर भी कर्त्तव्य की प्रेरणा है कि हम शांति की यह अंतिम चेष्टा करें।"

इतना कहकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के लिए बिदा हुए।

: ५७ :

शांतिदूत श्रीकृष्ण

शांति की बातचीत करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण हस्तिनापुर को गये। उनके साथ सात्यकी भी गये।

प्रस्थान करने से पहले श्रीकृष्ण काफी देर तक पांडवों से चर्चा करते रहे। पांचों भाइयों ने शांति को ही पसंद किया यहांतक कि वीर भीमसेन ने भी यही कहा कि युद्ध से सारे वंश का नाश हो जायगा। हम सबों के लिए संधि कर लेना ही श्रेयस्कर होगा।

इससे यही सिद्ध होता है कि पराक्रमी और वीर लोग शांतिप्रिय ही

हुआ करते हैं। शांतिप्रियता कायरता नहीं हुआ करती ।

लेकिन द्रौपदी की राय कुछ और ही थी। दुर्योधन और उनके भाइयों के हाथों हुए अपमान को वह भूल न सकी । अपने बिखरे बालों को हाथ में लिये शोक-विह्वल-सी होकर वह श्रीकृष्ण के सामने खड़ी हो गई और बोली---

"मधुसूदन ! मेरे इन बिखरे केशों को तो जरा देखो । फिर जो कुछ उचित हो करना । अर्जुन और भीम भले ही युद्ध न करें । मेरे पिता तो बूढ़े ही हैं। फिर भी वे मेरे पांचों छोटे-छोटे पुत्रों को साथ लेकर युद्ध के मैदान में जा डटेंगे । पिताजी भी युद्ध करने न आयें तो न सही । सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु तो है । उसको अगुआ बनाकर मेरे पांचों बेटे कौरवों से लड़ेंगे । हृदय मे प्रतिहिंसा की जो आग धुआं दे रही है, उसे युधिष्ठिर की खातिर तेरह साल तक मैंने दबाये रक्खा--- भड़कने न दिया । लेकिन अब मुझसे सहा नहीं जायगा ।" यह कहते-कहते द्रौपदी की आंखें डबडबा आईं । उसका गला रुंध गया ।

पांचालराज-पुत्री द्रौपदी को इस प्रकार दुःखी होकर बोलते देखा तो श्रीकृष्ण कह उठे---"रोओ मत, बहन कृष्णा ! रोने का कोई कारण नहीं है। शांति-स्थापन की जो शर्तें मैं रक्खूंगा, उन्हें धृतराष्ट्र के बेटे नहीं मानेंगे और फलतः युद्ध होकर ही रहेगा। युद्ध-क्षेत्र में पड़ी कौरवों की लाशें कुत्तों और सियारों का आहार बनेंगी । यह निश्चित बात है । अब थोड़े ही दिन और रह गये हैं और तुम देखोगी कि तुम्हारे अपमान का बदला लिया जायगा और तुम्हारी ही विजय होगी । तुम दुःखी न होओ ।"

इस प्रकार द्रौपदी को सांत्वना देकर श्रीकृष्ण बिदा हुए। रास्ते में कुशस्थल नामक स्थान में एक रात ठहरे और वहां विश्राम किया ।

हस्तिनापुर में जब यह खबर पहुंची कि श्रीकृष्ण पांडवों की ओर से दूत बनकर संधि-चर्चा के लिए आ रहे हैं तो सारे नगर में बड़ी उत्कंठा की लहर दौड़ गई । धृतराष्ट्र ने आज्ञा दी कि नगर को खूब सजाया जाय । पुरवासियों ने द्वारकाधीश के स्वागत की धूमधाम से तैयारियां कीं ।

दुःशासन का भवन दुर्योधन के भवन से अधिक ऊंचा और सुंदर था, इसलिए धृतराष्ट्र ने आज्ञा दी कि उसी भवन में सपरिवार श्रीकृष्ण को ठहराने का प्रबंध किया जाय। नगर के बाहर जिस रास्ते से श्रीकृष्ण का रथ आ रहा था, स्थान-स्थान पर उनके विश्राम आदि के लिए सत्कार-मंडप बनाये गये थे।

इसी बीच विदुर से भी धृतराष्ट्र ने सलाह की। कहा––"विदुर ! वासुदेव के लिए हाथी, घोड़े, रथ आदि उपहार-भेंट करने का प्रबंध करो। और भी कई तरह के उपहार उन्हें भेंट किये जायं––ऐसी मेरी कामना है।"

विदुर ने कहा––"राजन् ! आपका विचार ठीक नहीं। गोविंद ऐसे व्यक्ति नहीं, जो इन प्रलोभनों से वश में आजायं। वे हमारे यहां जिस उद्देश्य से आ रहे हैं उसे सफल बनाने से ही उन्हें संतुष्ट किया जा सकता है। श्रीकृष्ण शांति-दूत बनकर आरहे हैं। आपस में संधि करा देने से ही उनको प्रसन्न किया जा सकेगा, पार्थिव उपहारों से नहीं।"

श्रीकृष्ण हस्तिनापुर पहुंच गये। नगर का हर मार्ग, गली और कूचा खूब सजाया गया था। सड़कों पर लोगों की बड़ी भीड़ थी। सब श्रीकृष्ण को देखने की इच्छा से इकट्ठे हुए थे। इस कारण कृष्ण को रथ की गति धीमी करनी पड़ी। रथ धीरे-धीरे धृतराष्ट्र के भवन के पास जा पहुंचा।

पहले श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के भवन मे गये। वहां उनका राजोचित सत्कार किया गया। फिर धृतराष्ट्र आदि से बिदा लेकर वे विदुर के भवन में गये। माता कुंती वहीं श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा में बैठी थीं। श्रीकृष्ण को देखते ही उन्हें अपने पुत्रों का स्मरण हो आया। उनसे न रहा गया, जी भर आया। आंखों से आंसू उमड़ पड़े।

श्रीकृष्ण ने उन्हें मीठे वचनों से सांत्वना दी और उनसे बिदा लेकर दुर्योधन के भवन में गए। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण का बढ़िया स्वागत किया और उचित आदर-सत्कार करके भोजन का न्यौता दिया। श्रीकृष्ण ने कहा–– "राजन् ! मैं अब राजदूत बनकर आया हूं। राजदूतों का यह नियम होता है कि जबतक उनका कार्य सफल न होजाय तबतक भोजन न करें। जिस

उद्देश्य को लेकर मैं यहां आया हुआ हूं वह पूरा होजाय तब मुझे भोजन का न्यौता देना उचित होगा ।" यह कहकर वे विदुर के यहां लौट गये और वहां भोजन करके विश्राम किया ।



इसके बाद श्रीकृष्ण और विदुर में आगे के कार्यों के बारे में सलाह हुई । विदुर ने कहा—"भीष्म, द्रोण आदि महारथी दुर्योधन की सहायता करने पर विवश हैं, इसलिए दुर्योधन मदांध हो गया है । वह सोचता है कि कौरवों को कोई हरा नहीं सकेगा । ऐसे मूर्ख के साथ शांति की बातें करना निष्फल ही साबित होगा । जो लोग दुष्ट हैं और निकृष्ट से निकृष्ट काम करते नहीं सकुचाते, उनकी सभा में आपका जाना भी उचित नहीं ।"

दुर्योधनादि के गुणों से जो भी परिचित थे, उनका भी यही कहना था कि कोई-न-कोई कुचक्र रचकर श्रीकृष्ण के प्राणों तक को हानि पहुंचाने की वे लोग चेष्टा करेंगे ।

विदुर की बातें ध्यान से सुनने के बाद श्रीकृष्ण बोले—

"आपने जो कुछ कहा, बिलकुल ठीक कहा । मुझे भी यह आशा नहीं है कि शांति स्थापित करना संभव होगा । फिर भी लोग हमें दोष न दे सकें, इसी उद्देश्य से संधि का प्रस्ताव लेकर मैं आया हूं । मेरे प्राणों की चिंता आप न करें ।"

दूसरे दिन सवेरे, दुर्योधन और शकुनि ने आकर श्रीकृष्ण से कहा—"महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।" इस पर विदुर को साथ लेकर श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के भवन में गये ।

वासुदेव के सभा में प्रविष्ट होते ही सभी सभासद उठ खड़े हुए । श्रीकृष्ण ने बड़ों को विधिवत् नमस्कार किया और आसन पर बैठे । राजदूत एवं संभ्रांत अतिथि का-सा उनका सत्कार किया गया । इसके बाद श्रीकृष्ण उठे और पांडवों की मांग सभा के सामने रक्खी और फिर धृतराष्ट्र की ओर देखकर बोले—

"राजन् ! प्रजा का नाश करने वाला रास्ता न पकड़िये । जो आपका

हित है, उसे आप अहित समझे बैठे हैं और बुराई को भलाई समझते हैं। पिता के नाते यह आपका कर्त्तव्य है कि पुत्रों पर काबू रखें और उनको सही रास्ते पर लायं। पांडव शांति-प्रिय हैं; परंतु साथ ही यह भी समझ लीजिए कि वे युद्ध के लिए भी तैयार हैं। पांडव आपको पिता-रूप मानते हैं और आपकी अधीनता में सुखपूर्वक रहना चाहते हैं। आप भी उनको अपना पुत्र समझें और ऐसा उपाय करें जिससे आपके भाग जाग जायं।"

यह सुन धृतराष्ट्र ने कहा-- "सभासदो! मुझे दोषी न समझा जाय। मैं भी वही चाहता हूं जो श्रीकृष्ण को प्रिय है। किंतु करूं क्या? मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि पुत्रों से अपनी आज्ञा मनवाऊं। मैं निर्दोष हूं, लेकिन विवश भी। श्रीकृष्ण! तुम्हीं मेरे पुत्र दुर्योधन को समझाओ न।"

इस पर श्रीकृष्ण बोले-- "दुर्योधन! महान् लोगों के वंशज होकर तुम्हारे लिए यही उचित था कि धर्म के पथ पर चलते; परंतु अभी तुम जो विचार कर रहे हो, वह तो नीच कुल का-सा ही है। लोगों को भय है कि कहीं तुम्हारे कारण इस यशस्वी कुल का नाश न होजाय। मैं इतना ही करना चाहता हूं कि पांडवों का आधा राज्य लौटा दो और उनके साथ संधि करलो। यदि यह बात हो गई तो स्वयं पांडव तुम्हें युवराज और धृतराष्ट्र को महाराज के रूप में सहर्ष स्वीकार कर लेंगे।"

भीष्म और द्रोण ने भी दुर्योधन को बहुत समझाया। फिर भी दुर्योधन ने अपना हठ नहीं छोड़ा। श्रीकृष्ण का प्रस्ताव स्वीकार करने पर वह राजी न हुआ।

"दुर्योधन की करतूत से गांधारी एवं धृतराष्ट्र को जो पीड़ा पहुंच रही है, उसीसे मुझे दुःख होता है।" विदुर ने कहा।

धृतराष्ट्र ने दुबारा पुत्र से आग्रह करके कहा कि श्रीकृष्ण का प्रस्ताव मानले, नहीं तो कुल का सर्वनाश हो जायगा।

भीष्म और द्रोण ने भी बार-बार दुर्योधन को समझाया और सही रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया। कहा--"संधि कर लेने में ही तुम्हारी भलाई है। युद्ध का विचार छोड़ दो।"

जब सबने इस प्रकार बार-बार आग्रह किया तो दुर्योधन उठकर अपने पक्ष का समर्थन करने लगा। बोला—"मधुसूदन, आप पांडवों के हितैषी हैं। यही कारण है कि हर तरह से आप मेरी निंदा करने और मुझे दोष देने लगे हैं। सभी सभासद मेरे ही सिर पर दोष मढ़ रहे हैं; किंतु इसमें मेरा कसूर ही क्या है? मुझे तो अपना कोई दोष नहीं दीखता। चौपड़ का खेल युधिष्ठिर ने अपनी खुशी से खेला और राज्य गंवा बैठे। अब आप ही बतावें कि इसमें मेरा क्या दोष हो सकता है? मुझ पर नाहक क्यों सारा दोष मढ़ा जा रहा है? खेल में वे हारे और शर्त के अनुसार बन में गये। मैंने कौनसा ऐसा अपराध किया कि जिसके लिए अब वे युद्ध छेड़कर हम सबको नष्ट कर देना चाहते हैं? सेना-बल से और धमकी से मानने वाले हम नहीं हैं। जब मैं निरा बालक था आप ही लोगों ने पांडवों को राज्य का आधा हिस्सा दिलाया था। उसपर उनका कोई अधिकार न था। वंश की देखभाल करने वाले वृद्ध लोगों ने यह जो किया वह न जाने भय के कारण किया, अथवा नासमझी के कारण, मैं नहीं जानता। पर उस समय तो मैंने उनकी बात मानली थी। उसके बाद पांडव फिर उसे खुद ही गंवा बैठे। तो फिर अब मैं उसे वापस देने को राजी कैसे हो सकता हूं? मैं तो सुई की नोक भर जमीन भी उन्हें बिना युद्ध के देने को तैयार नहीं हूं।"

दुर्योधन ने अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने की जो चेष्टा की उससे श्रीकृष्ण को हंसी आगई। वे बोले—"नासमझ दुर्योधन! शकुनि के साथ कुमंत्रणा करके तुम्हींने तो चौसर का कुचक्र रचा था! द्रौपदी को भरी सभा के सामने घसीट लाकर अपमानित करना तुम्हारा ही तो काम था। इतना सब कुछ करने पर अब यह सिद्ध करने का तुम प्रयत्न कर रहे हो कि तुमने कोई अपराध नहीं किया!"

यह कहकर श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को उन सब अत्याचारों का विस्तृत रूप से स्मरण दिलाया जो उसने पांडवों पर किये थे।

भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख वृद्धों ने भी श्रीकृष्ण के इस वक्तव्य का समर्थन किया।

यह देखकर दुःशासन क्रुद्ध हो उठा और दुर्योधन से बोला-- "भाई, मालूम होता है, ये लोग अभी आपको कैद करके पांडवों के हवाले कर देंगे। चलिए, यहांसे निकल चले। हमें यहां अधिक देर नहीं रहना चाहिए।"

इस पर दुर्योधन उठा और भाइयों के साथ सभा से बाहर चला गया।

श्रीकृष्ण ने सभासदों से कहा-- "महाजनो! सारे वंश की रक्षा के लिए कभी-कभी एक व्यक्ति का बलिदान देना ही पड़ता है। शिशुपाल और कंस के मारे जाने पर यादव एवं वृष्णिकुल के लोग सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने पाये हैं। आप तो जानते ही हैं कि सारे देश की भलाई के हित एक गांव को त्याग देना पड़ जाता है। इसी रीति के अनुसार आप लोग भी अपने वंश की रक्षा के हित दुर्योधन का त्याग करदें।"

इसी बीच धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा कि तुम गांधारी को जरा सभा में ले आओ। उसकी सूझ बहुत स्पष्ट है और वह दूर की सोचा करती है। हो सकता है, उसकी बातें दुर्योधन को स्वीकार हो जायं।" यह सुन विदुर ने राजसेवकों को आज्ञा देकर देवी गांधारी को बुला लाने को भेजा।

गांधारी सभा में आई और धृतराष्ट्र से कहकर दुर्योधन को सभा मे फिर बुलाया गया।

दुर्योधन सभा में लौट आया। क्रोध के कारण उसकी आंखे लाल हो रही थीं। गांधारी ने भी उसे कई तरह से समझाया, परंतु दुर्योधन ये बाते मानने वाला कब था? अपनी मां को भी उसने नाहीं कर दिया और दुबारा सभा से निकलकर चला गया।

बाहर जाकर दुर्योधन ने साथियों के साथ मिलकर एक षड्यंत्र रचा और राजदूत श्रीकृष्ण को पकड़ने का प्रयत्न किया। श्रीकृष्ण ने तो पहले ही से इन सब बातो की कल्पना करली थी। दुर्योधन की व्यर्थ चेष्टा देखकर वे हंस पड़े और अपना विश्व रूप धारण कर लिया। व्यासजी कहते हैं कि उस समय जन्म के अंधे धृतराष्ट्र को भी दिव्यचक्षु प्राप्त होगए और उन्होंने भी भगवान कृष्ण के विश्वरूप के दर्शन किये।

यह देखकर धृतराष्ट्र विस्मय में आगये और प्रार्थना की—"हे कमल-नयन! अहोभाग्य मेरा कि आपके विश्वरूप के दर्शन प्राप्त हुए। अब इन नेत्रों से और किसीको देखना नहीं चाहता। मेरी दृष्टि फिर से नष्ट हो जाय।"

यह प्रार्थना करते ही धृतराष्ट्र की दृष्टि चली गई। वे फिर से अंधे होगये। वे श्रीकृष्ण से बोले— "जनार्दन, हमारी सारी चेष्टायें व्यर्थ ही गईं। दुर्योधन सही रास्ते पर आता दिखाई नहीं देता।"

यह सुन श्रीकृष्ण उठे। सात्यकी और विदुर उनके दोनों ओर होगए। श्रीकृष्ण ने तब सब सभासदों से विधिवत आज्ञा ली और सभा से चलकर सीधे देवी कुंती के पास पहुंचे। उनको सभा का सारा हाल कह सुनाया।

कुंती बोली—"जाकर मेरे पांचों पुत्रों को मेरे शुभाशीर्वाद कहना। जिस उद्देश्य के लिए क्षत्रिय-मातायें पुत्र जन्मती है उस उद्देश्य की पूर्ति का समय आ पहुंचा है। अब तुम्हीं मेरे पुत्रों की रक्षा करना।"

क्षत्रिय-स्त्री पुत्रों को जन्मती है तो युद्ध में उनकी बलि चढ़ाने ही के लिए।

पुरुषोत्तम कृष्ण अपने रथ पर आरूढ़ होकर उपप्लव्य की ओर तेजी से रवाना हो गये।

अब युद्ध अनिवार्य ही हो गया था।

: ५८ :

वात्सल्य एवं कर्त्तव्य

श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर से लौटते ही शांति-स्थापना की जो थोड़ी-बहुत आशा रही थी, वह भी लोप हो गई। कुंती देवी को जब पता चला कि कुलनाशी युद्ध छिड़ेगा ही तो वह बड़ी व्याकुल हो उठीं।

एक ओर तो यह भय था कि संभव है वंश का सर्वनाश न हो जाय, दूसरी ओर क्षत्रियोचित संस्कृति की प्रेरणा थी कि समर-भूमि में खेत रहना ही पुत्रों के लिए श्रेयस्कर होगा। वह पुत्रों से कैसे कहतीं कि अपमान की कड़वी घूंट पीकर रह जायं जिससे युद्ध न होने पावे ? यदि कहती भी हैं, तो क्षत्रवीर पांडव उनकी मानते भी क्यों ? वे तो लड़ेंगे ही। तो फिर ? नतीजा यही न होगा कि सारे वंश का आमूल उच्छेदन हो जाय ! जब वंश का ही नाश हो जाय तो फिर उससे किसीको क्या फायदा पहुंच सकता है ? तबाही के परिणाम-स्वरूप कहीं सुख प्राप्त होता है ? हा दैव ! यह भी कैसी दुविधा है ! कैसे इससे बच पाऊं ?

माता कुंती के मन में इसी प्रकार भय एवं वीरता में घोर खींचतान-सी हो रही थी। मन मे एक हूक-सी उठती--

"भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे अजेय महारथियों को मेरे पुत्र कैसे परास्त कर पायंगे ? इन तीनों महावीरों का विचार करते ही मन सिहर उठता है। औरों की तो कोई बात ही नहीं। कौरवों की सेना में ये तीनों ही ऐसे हैं जो मेरे पुत्रों के प्राणहारी बन सकते हैं। उनमें से आचार्य द्रोण शायद मेरे पुत्रों का वध न करें। शिष्यों पर अपने प्यार के कारण, या शिष्यों से लड़ना उचित न समझ कर, वे मेरे पुत्रों को जीवित छोड़ दें तो आश्चर्य नहीं। पितामह भीष्म की भी यही बात हो सकती है। अपने पोतों के प्राणों के प्यासे वे नहीं होंगे। रहा कर्ण ! उसीका मुझे डर है। दुर्योधन की मनचाही करने की खातिर मेरे पुत्रों को मारने की कर्ण ने ठान रक्खी है। पांडवों के नाम से ही उसे घृणा है। वीर भी तो वह बड़ा है। जब भी उसका विचार मन में उठता है, एक भयंकर-सी आग मन में धधक उठती है। मेरा जेठा लड़का अपने ही भाइयों के प्राणों का प्यासा बने, यह मेरी ही करतूत का तो फल है ! क्यों न इसी समय उसके पास जाऊं और उसके जन्म का सच्चा हाल उसे बता दूं। अपने जन्म का हाल मालूम होने पर शायद उसके विचारों में परिवर्तन हो जाय और वह पांडवों को मारने का विचार छोड़ दे।"

चिंता के कारण आकुल हो रही कुंती अपने पुत्रों की सुरक्षा का विचार करती हुई गंगा के किनारे वहां जा पहुंची जहां कर्ण रोज संध्या वंदन किया करता था ।

वहां कर्ण संध्या करता दिखाई दिया । पूर्व को मुंह किये, हाथ जोड़े, ध्यानमग्न होकर कर्ण खड़ा था । कुंती उसीकी पीठ से लगकर उसका उत्तरीय अपने सिर पर रखे खड़ी हो गई । सूर्य के मध्याह्न होनेतक कर्ण इसी प्रकार खड़ा-खड़ा जप करता रहा । सूर्य के ताप की उसे परवाह न थी ।

मध्याह्न के बाद कर्ण का जप पूरा हुआ । उसने मुड़कर देखा, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कोई राजकुल की स्त्री धूप से बचने के लिए उसके उत्तरीय को अपने सर पर रख कर खड़ी है । वह समझ न पाया कि बात क्या है । वह विस्मय में पड़ गया । और जब उसने ग़ौर से देखा तो उसे यह जानकर असीम आश्चर्य हुआ कि महाराज पांडु की पत्नी और पांडवों की माता देवी कुंती ही उसका उत्तरीय सर पर लिये खड़ी है ।

"राधा और सारथी अधिरथ का पुत्र कर्ण आपको नमस्कार करता है । आज्ञा कीजिए, क्या सेवा मैं आपकी करूं ?" कर्ण ने शिष्टतापूर्वक अभिवादन करके पूछा ।

"कर्ण ! यह न समझो कि तुम केवल सूत-पुत्र ही हो । न तो राधा तुम्हारी मां है, न अधिरथ तुम्हारा पिता । तुमको जानना चाहिए कि राजकुमारी पृथा की कोख में सूर्य के अंश से तुम उत्पन्न हुए हो । तुम्हारा कल्याण हो ।" कुंती ने गद्-गद् स्वर में कहा । थोड़ी देर सुस्ताने के बाद फिर बोली—

"कर्ण ! ये कवच-कुंडल तुम्हारे जन्म के हैं । तुम देव-कुमार हो । फिर भी अपने ही भाइयों को न पहचान पाये और दुर्योधन के पक्ष में होकर मेरे पुत्रों से शत्रुता कर रहे हो ! धृतराष्ट्र के बेटों के आश्रित रहना तुम्हारे लिए अपमान की बात है । तुम अर्जुन के साथ मिल जाओ; वीरता से लड़ो

और राज्य प्राप्त करो । दोनों भाई मिल जाओ और शत्रु का दर्प चूर करो। सारा संसार तुम्हारे आगे सिर झुकावेगा। बलराम और श्रीकृष्ण की जोड़ी की भांति तुम भी दोनों प्रतापी वीर होगे। पांच छोटे भाई तुम्हारे अधीन रहेंगे और तुम उनसे घिरकर ऐसे प्रकाशमान होओगे जैसे देवताओं से घिरे हुए इंद्र। जहां कर्त्तव्य धुंधला-सा दिखाई पड़े, या जब मनुष्य असमंजस में पड़ जाय तब शास्त्रोचित ढंग से माता-पिता को संतुष्ट करना ही धर्म माना गया है ।"

कर्ण अभी-अभी सूर्य नमस्कार पूरा कर चुका था कि इतने में माता कुंती का यह अनुरोध सुनकर उसके मन में विचार आया कि क्या सूर्य भगवान् भी माता की बात का अनुमोदन कर रहे हैं ? परंतु फिर भी यह सोच कर कि सूर्य देव शायद मेरी परीक्षा ही ले रहे हों, अपने दिल पर पत्थर-सा रख कर वह बोला--

"मां ! तुम्हारी ये बातें धर्म के विरुद्ध हैं। यदि तुम्हारी खातिर मैं अधर्म करने पर उतारू हो जाऊं और क्षत्रियोचित कर्त्तव्य पर कुठाराघात कर दूं, तो उससे बड़ी हानि मुझे मेरा कौन-सा दूसरा दुश्मन पहुंचा सकेगा? बचपन में तुमने मुझे पानी में फेंक दिया और अब, जब वर्ण-संकरों का समय बीत गया, मुझे क्षत्रिय कह कर पुकारने लगी हो! माता की हैसियत से मेरे प्रति तुम्हारा जो कर्त्तव्य था उसे तुमने समय पर तो पूरा किया नहीं। और अब अपने पुत्रों की भलाई के खयाल से मुझे यह सब सुना रही हो। यदि इस समय मैं दुर्योधन का साथ छोड़कर पांडवों की तरफ चला गया तो क्षत्रिय लोग ही मुझे कायर कहेंगे। जिनका नमक आजतक खाया, जिन्होंने मुझे धन-संपत्ति और गौरव प्रदान किया उन धृतराष्ट्र-पुत्रों का साथ ऐसे संकट-भरे क्षण में छोड़ देने की सलाह तुम दे रही हो ! कैसे मैं उनकी मित्रता का बंधन तोड़ दूं, जब कि मुझीको वे युद्ध के सागर को पार कराने वाली नैया-समान समझते हैं। मैंने ही तो उन्हें युद्ध के लिए उभाड़ा है। अब, जबकि युद्ध आगया है, तो उनको मंझधार में कैसे छोड़ जाऊं? सहायता देने का तो दम भरूं, किंतु सहायता का समय आने पर उनसे दगा

कर दूं ? यह तुम्हारी कैसी सलाह है ? मैंने दुर्योधन का नमक खाया है। अब उसका ऋण चुकाना होगा। चाहे प्राणों की आहुति ही क्यों न देनी पड़े। यह ऋण तो चुकाना ही होगा। वरना भोजन पदार्थ की चोरी करने वाले नीच की अपेक्षा भी मैं अधिक नीच समझा जाऊंगा। आज मेरा कर्त्तव्य यही है कि मैं तुम्हारे पुत्रों के विरुद्ध सारी शक्ति लगा कर लड़ूं। मैं तुमसे असत्य बोलूं ही क्यों ? मुझे क्षमा कर दो। मैंने तुम्हारे पुत्रों के विरुद्ध लड़ने का व्रत लिया है। लेकिन हां, तुम्हारी भी बात एकदम व्यर्थ न होगी। अब मैं यह करूंगा कि अर्जुन को छोड़कर और किसी पांडव के प्राण नहीं लूंगा। हां, या तो अर्जुन इस युद्ध में काम आयगा, या मैं काम आजाऊंगा। दोनों में से एक को तो मरना ही पड़ेगा। और चारों चाहे मुझे कितना भी क्यों न तंग करें, मैं उनको नहीं मारूंगा। मां, तुम्हारे तो पांच पुत्र हर हालत में रहेंगे--चाहे मैं मर जाऊं चाहे अर्जुन। हम दोनों में से एक बचेगा और बाकी चार तो रहेंगे ही। तुम चिंता न करो।"

अपने बड़े पुत्र की ये क्षत्रियोचित बातें सुनकर माता कुंती ने उसे अपने गले से लगा लिया। उससे कुछ बोला न गया, गला रुंध गया और आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। कुछ देर बाद संभलकर बोली--"विधि की बात को कोई नहीं टाल सकता। तुमने अपने चार छोटे भाइयों की प्राण-रक्षा का जो वचन दिया है वही मेरे लिए बड़ी बात है। तुम्हारा कल्याण हो।"

कर्ण को इस प्रकार आशीर्वाद देकर कुंती अपने महल में चली आई।

: ५९ :

पांडवों के सेनापति

श्रीकृष्ण उपप्लव्य लौट आए और हस्तिनापुर की चर्चा का हाल पांडवों को सुनाया।

"जो सत्य एवं हित के अनुकूल था, वह उपाय मैंने बताया था। किंतु सब व्यर्थ ही हुआ। अब दंड से ही काम लेना पड़ेगा। सभा के सभी वृद्धजनों के कहने पर भी मूर्ख दुर्योधन ने न माना। अब तो युद्ध की ही जल्दी तैयारी होनी चाहिए।"

युधिष्ठिर अपने भाइयों से बोले--"भैया! अब शांति की आशा नहीं रही। सेना सुसज्जित करो और व्यूह-रचना सुचारु रूप से कर लो।"



पांडवों की विशाल सेना को सात हिस्सों में बांट दिया गया। द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखंडी, सात्यकी, चेकितान, भीमसेन आदि सात महारथी इन सात दलों के नायक बने। अब प्रश्न उठा कि सेनापति किसे बनाया जाय? सबकी राय ली गई।

युधिष्ठिर ने सबसे पहले सहदेव की राय मांगी--"सहदेव! इन सातों महारथियों में से किसी एक सुयोग्य वीर को सेनापति बनाना होगा। हमारा सेनापति रण-कुशल हो। अग्नि के समान शत्रु-सैन्य को दग्ध करने वाले भीष्म की शक्ति सहने का माद्दा उसमें हो। इन सातों में से कौन ऐसा है, सहदेव! जो तुम्हारी राय में इन सभी गुणों से युक्त है।"

उन दिनों की प्रथा थी कि छोटों की राय पहले ली जाय। इससे जवानों का आत्म-विश्वास बढ़ता और उनमें जोश आजाता। छोटों से पूछे बगैर ही बड़ों की राय ले ली जाती, तो फिर छोटों की अपनी ओर से कुछ कहने की हिम्मत ही न बंधती। डरते, कि कहीं उद्दंड की उपाधि प्राप्त न हो।

"अज्ञातवास के समय हमने जिनके यहां आश्रय लिया था, जिनकी छत्रछाया में सुरक्षित रहते हुए हम अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त करने की तैयारियां कर रहे हैं, वही विराटराज हमारे सेनापति बनने योग्य है।" सहदेव ने कहा।

फिर नकुल से राय ली गई।

"मुझे तो यही उचित प्रतीत होता है कि पांचालराज द्रुपद, जो आयु में, बुद्धि में, वीरता में, कुल में एवं बल में सर्वश्रेष्ठ हैं, हमारे

सेनापति बनाये जायं। उन्होंने भारद्वाज से अस्त्र-विद्या सीखी है। द्रोण से युद्ध करने के अवसर की वे मुद्दत से प्रतीक्षा किये बैठे हैं। वे सभी राजाओं से सम्मानित हैं, द्रौपदी के पिता हैं, पिता की ही भांति वे हमारा सहारा बने हुए हैं। मेरी राय में वही हमारी सेना के नायक बनने और द्रोण और भीष्म का सामना करने योग्य है।" नकुल ने कहा।

अर्जुन ने कहा—"जो जितेंद्रिय हैं, द्रोण का वध ही जिनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है, वही वीर धृष्टद्युम्न हमारे सेनापति बनें। जिनके बाणों के प्रहार से स्वयं परशुराम भौंचक्के से रह गये, उन भीष्म के बाणों को सहने की शक्ति, साहस एवं बल यदि किसीमें है, तो धृष्टद्युम्न में ही है। उन्हींको सेनापति बनाया जाय।"

भीम ने कहा—"राजन् ! अर्जुन ने जो कहा, ठीक कहा। फिर भी महात्माओं और ऋषि-मुनियों का कहना है कि शिखंडी का जन्म ही हुआ भीष्म के प्राण लेने के लिए। तेज और रौब में भी वह परशुराम के समान दिखाई देता है। मेरी राय मे महारथी भीष्म को सिवाय शिखंडी के और कोई हरा भी नहीं सकेगा। अतः शिखंडी को ही सेनापति बनाया जाय।"

अंत में युधिष्ठिर ने पूछा—"श्रीकृष्ण की राय क्या है ?"

श्रीकृष्ण ने कहा—"इन सबने जिन-जिन वीरों के नाम लिये, वे सभी सेनापतित्व के योग्य हैं। किंतु अर्जुन की राय मुझे सभी दृष्टि से ठीक प्रतीत होती है। मैं उसीका समर्थन करता हूं। धृष्टद्युम्न को ही सारी सेना का नायक बना दिया जाय।"

जिसने स्वयं द्रौपदी का अर्जुन से पाणिग्रहण करवाया था, जो राज-सभा में हुए द्रौपदी के घोर अपमान और उस पर किये गए घोर अत्याचार की कल्पनामात्र से ही भड़क उठता था, अपनी बहन के अपमान का कौरवों से बदला लेने की प्रतीक्षा में जिसने तेरह बरस बड़ी बेचैनी में काटे थे, वही वीर द्रुपदराज-कुमार धृष्टद्युम्न पांडवों की सेना का नायक बनाया गया और उसका विधिवत् अभिषेक किया गया। वीरों की सिंह-

गर्जना, भैरियों के भैरव-नाद, शंखों की तुमुल ध्वनि, दुंदुभि के गर्जन आदि से मानो आकाश फटने-सा लगा था। अपने कोलाहल से दिशाओं को गुंजाती हुई पांडवों की सेना कुरुक्षेत्र के मैदान में जा पहुंची।

: ६० :

कौरवों के सेनापति

उधर कौरवों की सेना के नायक थे भीष्म पितामह। दुर्योधन ने उनके पास अंजलिबद्ध होकर कहा--"देवताओं की सेना का भगवान् कार्त्तिकेय ने जिस शान से संचालन किया था, उसी तरह पितामह हमारे सेनानायक बन कर विजय एवं यश प्राप्त करें। जैसे ऋषभ (बैल) के पीछे बछड़े जाते हैं, वैसे ही हम भीष्म का अनुकरण करेंगे।"

भीष्म ने तथास्तु कहा। पर साथ मे एक शर्त भी लगा दी। बोले--"मेरे सामने जैसे धृतराष्ट्र के लड़के हैं, वैसे ही पांडव भी हैं। दोनों ही मेरे लिए बराबर हैं। इसमें संदेह नहीं कि जो प्रतिज्ञा मैं कर चुका हूं, उसको निभा दूंगा। युद्ध का संचालन करके अपना ऋण अवश्य ही चुका दूंगा। शत्रु-दल के हजारों-लाखों वीरों को मेरे बाणों का शिकार होना ही पड़ेगा। परंतु फिर भी पांडुपुत्रों का वध करना मुझसे न हो सकेगा। लड़ाई छेड़ते समय मेरी सम्मति किसीने नहीं ली थी। इसी कारण मैंने निश्चय कर लिया है कि जान-बूझकर, अपने प्रयत्न से, पांडु-पुत्रों का वध मैं नहीं करूंगा। इसके अलावा एक बात और भी है। सूत-पुत्र कर्ण, जो तुम लोगों का बहुत ही प्यारा है, शुरू से ही मेरी सलाहों का विरोध करता आया है। पहले उससे सलाह ले लेना ठीक होगा। अगर वही सेनापति बन जाय, तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

कर्ण का उद्दंड व्यवहार सदा से ही भीष्म को बहुत खटकता था। कर्ण घमंडी भी बहुत था। उसने भी हठ कर लिया कि जबतक भीष्म जीवित रहेंगे, तबतक वह युद्ध-भूमि में प्रवेश नहीं करेगा। भीष्म

के मारे जाने के बाद ही वह लड़ाई में भाग लेगा और केवल अर्जुन को ही मारेगा ।

कई सद्‌गुणों से विभूषित सज्जनों में भी अक्सर बराबर के लोगों के प्रति स्पर्द्धा, और अपने से बढ़े हुए लोगों के प्रति ईर्ष्या हुआ करती है। यह तब भी कोई नई बात नहीं थी। आज हम किस क्षेत्र में यह कम पाते हैं ?

दुर्योधन ने सब आगा-पीछा सोचकर भीष्म की शर्त मानली और उन्हीं को सेनापति नियुक्त किया। फलतः कर्ण तबतक के लिए युद्ध से विरत रहा। पितामह के नायकत्व में कौरव-सेना समुद्र की भांति लहरें मारती हुई कुरुक्षेत्र की ओर प्रवाहित हुई।

: ६१ :

बलराम

इधर युद्ध की तैयारियां हो रही थीं और उधर एक रोज श्री बलरामजी पांडवों की छावनी में एकाएक आ पहुंचे। नीले रंग का रेशमी वस्त्र पहने, सिंह की-सी चाल वाले, उभरी हुई भुजाओंवाले हलधर को आया देखकर श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर आदि बड़े प्रसन्न हुए। सबने उठकर उनका समुचित आदर-सत्कार किया। श्री बलरामजी ने अपने से बड़े बूढ़े विराटराज और द्रुपदराज को विधिवत् प्रणाम किया और धर्मराज के पास बैठ गये ।

"भरत-वंश में लालच, क्रोध और द्वेष का बोलबाला हो गया। शांति की चेष्टाएं नाकाम रहीं। और सुन रहा हूं कि कुरुक्षेत्र की समर-भूमि में अब युद्ध भी छिड़ने वाला है । यही सुनकर मैं यहां आया हूं कि कुछ अपना दिल आप लोगों के सामने हलका कर आऊं।" कहते-कहते श्री बलराम का गला भर आया। ठंडी आहें भरते वे कुछ देर चुप रहे। फिर बोले—

"धर्मपुत्र ! अब संसार का सत्यानाश ही होने वाला है। भयानक, वीभत्स

दृश्य देखने में आयंगे। पृथ्वी का हरा-भरा शरीर, कटे हुए अंगों से और खूनी कीचड़ से सनने वाला है। विधि के प्रपंच में पड़कर संसार भर के राजा-महाराजा और सारी क्षत्रिय-जाति के लोग, पागलों की भांति मृत्यु की खोज में निकले है और यहां आकर इकट्ठे हुए है। कितनी ही बार मैंने कृष्ण को कहा कि हमारे लिए तो पांडव और कौरव दोनों ही एक समान हैं। दोनों को मूर्खता करने की सूझी है। इसमें हमें बीच में पड़ने की आवश्यकता नहीं। पर कृष्ण ने मेरी नहीं मानी। अर्जुन के प्रति उसका इतना स्नेह है कि उसने तुम्हारे पक्ष में रहकर युद्ध करना भी स्वीकार किया। और जिस तरफ कृष्ण हो, उसके विपक्ष में मै भला कैसे जाऊं? भीम और दुर्योधन, दोनों ही ने मुझसे गदा-युद्ध सीखा है। दोनों ही मेरे शिष्य हैं। दोनों पर मेरा एक जैसा प्यार है। इन दोनों कुरुवंशियों को यों आपस में लड़-मरते देखकर मुझसे नहीं रहा जाता। लड़ो तुम लोग। पर यह सब देखने मै यहां नहीं रह सकता। मुझे संसार से विराग-सा हो गया है। अतः मै तो तीर्थ करने जा रहा हूं।"

भ्रातृ-कलह के इस भीषण दृश्य को देखकर बलराम को दुःसह क्षोभ हुआ। उन्होंने भगवान का ध्यान किया और तीर्थ-यात्रा करने को निकल पड़े।



धर्म-संकट का अर्थ है दुविधा। कभी-कभी हरेक मनुष्य को दो ऐसे कर्त्तव्यों का सामना करना पड़ता है जो एक-दूसरे के विरुद्ध होते हैं। ऐसे ही अवसरों पर लोग किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते है। जो सच्चरित्र है, उन्हें बार-बार ऐसी दुविधा का सामना करना पड़ता है। जो धूर्त्त हैं, वे तो अपनी ही इच्छाओं के इशारे पर चला करते है। उन्हें असमंजस का सामना करने की आवश्यकता ही क्या है? जिन्होंने इच्छा की कैंचुली मन से उतार दी हो, उन्हें तो अक्सर किंकर्त्तव्यविमूढ़ होना पड़ता है। महाभारत के इस आख्यान में भीष्म, विदुर, युधिष्ठिर, कर्ण आदि शीलवान लोगों को कितनी ही बार दुविधा में पड़ना पड़ा। पुराणों में हम पढ़ते हैं कि कैसे-

कैसे अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार हरेक व्यक्ति ने धर्म-संकट से छुटकारा पाया था।

तात्पर्य यह कि समस्या के एक होने पर भी उसके हल कई हुआ करते हैं।

आजकल के समालोचक इस मूल तथ्य को भूल जाते हैं और एक ही माप-दंड से सबको नापने का प्रयत्न करते हैं। यह ठीक नहीं है। रामायण में दशरथ, कुंभकर्ण, मारीच, भरत, लक्ष्मण आदि दुविधाओं के भंवर में पड़े और निकल भी आए। हरेक ने इसके लिए अलग-अलग रीति बरती, और उससे हम लाभ उठा सकते हैं। महाभारत की यह आख्यायिका बताती है कि बलराम ने दुविधा से बचने के लिए किस प्रकार तटस्थ रहना उचित समझा।

महाभारत के युद्ध के समय सारे भारतवर्ष में, दो ही राजा युद्ध में सम्मिलित नहीं हुए—तटस्थ रहे। एक तो थे श्री बलराम। और दूसरे थे भोजकट के राजा रुक्मी। रुक्मी की छोटी बहिन रुक्मिणी ही श्रीकृष्ण की पत्नी थी।

: ६२ :

रुक्मिणी

विदर्भ देश के राजा भीष्मक के पांच पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्री का नाम था रुक्मिणी। रुक्मिणी की सुंदरता अनुपम थी और स्वभाव मृदुल। जब वह बालिका थी, तभी श्रीकृष्ण की प्रशंसा हर तरह के लोगों के मुंह उसने सुनी थी और उनपर अनुरक्त हो गई थी। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, मन-ही-मन उसकी यह इच्छा दृढ़ होती गई कि श्रीकृष्ण की वह पत्नी हो और जीवन सफल करे। उसके परिवार के लोगों की भी यही राय थी। पर भीष्मक का बड़ा पुत्र रुक्मी श्रीकृष्ण से बैर रखता था।

श्रीकृष्ण से रुक्मिणी के विवाह की चर्चा सुन कर उसने पिता से आग्रह किया कि कृष्ण के बजाय चेदिराज शिशुपाल से रुक्मिणी का विवाह होना ज्यादा ठीक होगा। राजा भीष्मक थे वृद्ध। राजकुमार की बात जोर पकड़ गई। और ऐसे आसार नजर आने लगे कि शिशुपाल के साथ ही रुक्मिणी का संबंध होगा।

रुक्मिणी श्रीकृष्ण को जी से चाहती थी। वह देवी की अंशावतार थी। शिशुपाल जैसे राक्षसी-स्वभाव वाले से उसका मन कैसे मानता? फिर भी अबला ही जो थी। उसके मन में भय हुआ कि शायद पिताजी भी मेरा बचाव न कर पायेंगे। हठी भाई का उद्देश्य कहीं पूरा न हो जाय। यह सोचकर रुक्मिणी व्याकुल हो उठी। बहुत सोच-विचार के बाद उसने निश्चय किया कि किसी-न-किसी तरह इस दुःख-जाल से छूटना ही होगा। नारी-सुलभ लज्जा को एक ओर रखकर उसने एक ब्राह्मण पुरोहित के हाथ श्रीकृष्ण के पास प्रेम-संदेशा लिख भेजा। और उन पुरोहित से प्रार्थना की किसी प्रकार श्रीकृष्ण को राजी करके मेरी रक्षा करें।

ब्राह्मण पत्र लेकर द्वारका पहुंचा और श्रीकृष्ण से मिला। रुक्मिणी की व्यथा और उनकी प्रार्थना द्वारकाधीश को सुनाने के बाद उसने वह पत्र श्रीकृष्ण को दिया। पत्र में लिखा था--

"मैं तो आप ही को पति मान चुकी हूं। मेरा हृदय आप ही की संपत्ति हो गई है। जो वस्तु आपकी है, उसीको चोरी करने के लिए राजा शिशुपाल घात लगाये बैठा है। इससे पहले कि आपकी वस्तु शिशुपाल के हाथ पड़ जाय, आप यहां आयं; और आकर अपनी चीज को बचा लें। लेकिन मुझे प्राप्त करना सरल भी नहीं है। शिशुपाल और जरासंध की सेनाओं को हराकर भगाने के बाद ही आप मुझे प्राप्त कर सकेंगे। शौर्य दिखलाकर, वीरोचित रीति से, आप मुझे लेजायं। बड़े भैया ने निश्चय कर लिया है कि शिशुपाल के साथ ही मेरा ब्याह करें। विवाह के दिन प्रथा के अनुसार मुझे पूजा के लिए गौरी-मंदिर जाना होगा। साथ में सहेलियां भी होंगी। वह अवसर

मुझे बचाने का हो सकता है। तभी आप मुझे लेजा सकेंगे। यदि आप यह न करेंगे, तो मै अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दूंगी, जिससे कम-से-कम अगले जन्म में तो आपको पा सकूं..."

द्वारकाधीश ने पत्र पढ़ा। एक क्षण कुछ सोचा किया और रथ मंगाकर विदर्भ देश को रवाना हो गये।



विदर्भ देश की राजधानी कुंडिनपुर की शोभा अनूठी हो रही थी। राजकन्या का विवाह होने वाला था, इसलिए नगर बड़ी सुंदरता के साथ सजाया गया था। विवाह की तैयारियां बड़ी धूमधाम से हो रही थीं। शिशुपाल अपने बंधु-बांधवों के साथ आ पहुंचा था। और ये सब-के-सब द्वारकाधीश के शत्रु थे।

उधर जब श्री बलराम ने सुना कि कृष्ण अकेले विदर्भ देश रवाना हो गये, तो वे बड़े चिंतित हुए। सोचा, विदर्भ नरेश की पुत्री के सिलसिले में ही कृष्ण वहां गया होगा। वहां संभव है, कृष्ण अपने दुश्मनों से घिर जाय और उसके प्राणों पर संकट आ जाय। यह सोचकर उन्होंने तत्काल ही एक बड़ी सेना इकट्ठी की और कुंडिनपुर को वेग से प्रस्थान कर दिया।

उधर विवाह के दिन राजकन्या रुक्मिणी राजमहल से निकलकर गौरी-मंदिर की ओर चली। साथ में सहेलियां और सैनिकों की एक बड़ी भीड़ उसको घेरे हुए थी। मंदिर में जाकर उसने विधिपूर्वक देवी की पूजा की। पूजा के बाद रुक्मिणी ने हाथ जोड़कर देवी से प्रार्थना की--

"देवी! तेरे चरणों में मै सिर नवाती हूं। मेरी मनोव्यथा तुम बड़ी अच्छी तरह जानती हो। मै तुमसे क्या कहूं? मुझे यही वरदान दो कि श्रीकृष्ण मेरे पति बनें।"

रुक्मिणी जब मंदिर से निकलीं तो सामने श्रीकृष्ण का रथ देखा। देखते ही उसकी ओर कुछ ऐसी खिंची हुई-सी चलीं जैसे चुंबक की ओर लोहे की सुई। रथ के पास पहुंचते ही श्रीकृष्ण ने सहारा देकर उसे रथ पर चढ़ा लिया और सैनिकों तथा सहेलियों के देखते-देखते श्रीकृष्ण का रथ

हवा से बातें करने लगा।

सैनिक लोग कुमार रुक्मी के पास दौड़े गये और इसकी सूचना की। तुरंत ही रुक्मी ने सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा किया। पर रास्ते में ही बलरामजी की सेना, जो कुंडिनपुर की ओर जा रही थी, मिली। श्रीकृष्ण रुक्मिणी समेत उस सेना से आ मिले। दोनों सेनाओं में घमसान युद्ध हुआ। बलराम और श्रीकृष्ण ने रुक्मी की सेना को तितर-बितर कर दिया और विजय का डंका बजाते हुए द्वारका लौट आये। वहां पहुंचने पर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के साथ विधिपूर्वक ब्याह कर लिया।

अभिमानी रुक्मी श्रीकृष्ण के हाथों हार जाने के कारण बहुत ही दुःखित हुआ। नगर मे वापस जाते उसे बड़ी झेंप आई। विदर्भ न जाकर, जहां श्रीकृष्ण के साथ युद्ध हुआ था वहीं भोजकट नाम का नया नगर बसाकर वह रह गया।



कुरुक्षेत्र मे होने वाले युद्ध के समाचार सुनकर रुक्मी एक अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध में सम्मिलित होने को गया। उसने सोचा कि यह अवसर वासुदेव की मित्रता प्राप्त कर लेने के लिए ठीक होगा। इसलिए वह पांडवों के पास पहुंचा और अर्जुन से बोला--"पांडु पुत्र! आपकी सेना से शत्रु-सेना कुछ अधिक मालूम होती है। इस कारण मै आपकी सहायता करने को आया हूं। शत्रु-सेना के जिस हिस्से पर आप कहें आक्रमण करने को तैयार हूं। मैं इतना शक्तिशाली हूं कि द्रोण, भीष्म या कृपाचार्य, इनमें से किसी एक को युद्ध मे जीत सकता हूं। मै आपको विजय दिला दूंगा। अतः बताइये कि आपकी क्या इच्छा है?"

यह सुन अर्जुन ने हंसते हुए श्रीकृष्ण की ओर देखा और रुक्मी से बोले--"राजन्! हम शत्रु की भारी सेना देख कर भय नहीं खाते। न हम इस शर्त पर आपकी सहायता ही चाहते है। आप बिना किसी शर्त के सहायता करना चाहते हों, तो आपका स्वागत है। नहीं तो आपकी इच्छा।"

यह सुन रुक्मी बड़ा क्रुद्ध हुआ और अपनी सेना लेकर दुर्योधन के पास

चला गया।

"पांडव हमें नहीं चाहते; इस कारण मैं आपकी सहायता को आया हूं।" रुक्मी ने दुर्योधन से कहा।

"यह बात है ? पांडवों के अस्वीकार करने पर आपने हमारी तरफ आने की कृपा की ! किंतु पांडवों ने जिसकी सहायता स्वीकार नहीं की उसकी सहायता स्वीकार करने की हमें जरूरत नहीं।" यह कहकर दुर्योधन ने भी रुक्मी की सहायता ठुकरा दी। बेचारा रुक्मी दोनों तरफ से अपमानित होकर भोजकट को वापस लौट गया।



रुक्मी कर्त्तव्य से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के उद्देश्य से कुरुक्षेत्र गया और अपमानित हुआ। युद्ध में तटस्थ रहने के भी कई कारण होते हैं। कोई शांति-प्रियता के कारण युद्ध में शरीक नहीं होते। कोई स्वार्थ, गर्व आदि राजसी गुणों के कारण; और कोई सुस्ती, भय, आदि तामसी गुणों के कारण युद्ध से किनाराकशी करते हैं। मतलब यह कि सबका कार्य एक जैसा होने पर भी उद्देश्य में अपने-अपने स्वभाव के अनुसार आकाश-पाताल का अंतर हो जाता है।

महाभारत में बलराम भी तटस्थ रहे और रुक्मी भी। किंतु जहां बलराम सात्त्विक-गुण से प्रेरित होकर युद्ध से हट गये, वहां रुक्मी को अपने राजसी गुण के कारण तटस्थ रहना पड़ा।

: ६३ :

असहयोग

युद्ध आरंभ करने के एक दिन पहले पितामह भीष्म, दुर्योधन को धीरज बंधाने के लिए, उनके पक्ष के वीरों की युद्ध-कुशलता एवं दूसरी खूबियों का सुविस्तृत वर्णन करने लगे। अपनी ओर से लड़ने वाले वीरों

की विशेषताएं सुनकर दुर्योधन का हौसला बढ़ता गया। इतने में कर्ण का जिक्र आया।

भीष्म ने कहा—"मैं कर्ण को कोई बड़ा भारी वीर नहीं मानता; यद्यपि वह तुम्हारे स्नेह का पात्र बना हुआ है। पांडवों के प्रति तुम्हारे मन में द्वेष-भाव बढ़ाना उसीका काम था। अपने मुंह अपनी प्रशंसा करते वह कभी नहीं थकता। उसके गर्व की कोई सीमा ही नहीं। मैं तो अतिरथियों में भी उसकी गिनती नहीं करता। उसमें विवेक की बहुत कमी है। उसे दूसरों की निंदा करने का व्यसन-सा हो गया है। इसके अलावा, अपने जन्म-जात कवच-कुंडलों से भी वह हाथ धो बैठा है। इसलिए वह युद्ध में हमारी अधिक सहायता कर सकेगा, इसमें शंका है। इसके अतिरिक्त परशुरामजी का शाप उसने और ले लिया है। ऐन वक्त पर इसकी स्मरण-शक्ति नष्ट हो जायगी। इस कारण इस बात की कोई आशा नहीं की जा सकती कि अर्जुन के साथ लड़ने पर कर्ण जीवित भी रह सकेगा।"

भीष्म की बातें सच्ची होने पर भी कर्ण एवं दुर्योधन को बहुत कड़वी लगीं।

इतने में आचार्य द्रोण ने भी जले पर नमक छिड़का। वे बोले—"पितामह बिल्कुल ठीक कहते हैं। कर्ण मदांध है, घमंडी है। जिन बातों पर ध्यान देना चाहिए उनकी ओर ध्यान न देने के कारण तथा अनावश्यक बातों को तूल देने से मेरा भी ख़याल है कि अर्जुन के साथ युद्ध में इसकी हार ही होगी।"

दोनों वृद्ध-योद्धाओं की कड़वी बातें सुनकर कर्ण को बड़ा गुस्सा आया। उसकी आंखें लाल हो गईं। भीष्म की ओर देखकर वह बोला—

"पितामह, मैंने आपका क्या बिगाड़ा है, जो आप मुझे हमेशा ही नीचा दिखाने के लिए कमर कसे बैठे रहते हैं। आप मुझसे जलते क्यों हैं, और घृणा करते हैं? और इस प्रकार कड़वे वचनों से बेधते रहते हैं? इससे मेरे दिल पर उलटा ही असर होता है। आपकी राय में मैं युद्ध के योग्य नहीं हूं। तो आपके बारे में भी मेरी राय सुन लीजिये। असल बात यह है कि

आप मुझसे नफरत करते हैं और दुर्योधन का भला नहीं चाहते। यही कारण है, आप हर उचित-अनुचित उपायों से हम दोनों मित्रों में फूट पैदा करने की चेष्टा कर रहे हैं। और मेरे प्रति दुर्योधन का स्नेह कम करने का प्रयत्न करते रहते हैं। आप इतने समझदार होकर यह अन्याय क्यों करते हैं? फिर बुढ़ापे के कारण अब आपमें दम भी तो कुछ नहीं रहा है जो इतना बढ़-चढ़ कर बोल रहे हैं। आपको नहीं मालूम कि क्षत्रियों में इज्जत बुढ़ापे की नहीं, बल्कि वीरता की होती है। दुर्योधन और मेरे बीच जो मि ।ता कायम है, उसे तोड़ने और हममें मन-मुटाव पैदा करने का आपका ः।यत्न व्यर्थ ही होगा।"

भीष्म के प्रति इतना कह चुकने के बाद कर्ण दुर्योधन को संबोधन करते हुए बोला—"महाराज आप भलीभांति सोच-विचार कर वही करें, जिसमें आपका हित हो। मेरी राय में तो इन बूढ़े भीष्म का भरोसा अधिक नहीं करना चाहिए। ये तो यही चाहते हैं कि हममें आपस की फूट पैदा हो जाय, और सदा अनबन बनी रहे। मेरे बारे में इन्होंने जो कुछ कहा है, उससे आपके काम में अड़चन ही पैदा होगी। यह मेरा तेज कम करने और मेरा हौसला पस्त करने को मानो कमर कसे बैठे हैं। ये यह नहीं सोचते कि बुढ़ापे में जीवन का क्या ठिकाना। मौत तो इनके दरवाजे पहुंची हुई है। फिर भी गर्व इतना कि और किसीको कुछ समझते ही नहीं। माना कि वृद्धों से सलाह लेनी और उनकी सलाह माननी चाहिए। पर बुढ़ापे में कार्य-शक्ति की एक सीमा होती है। फिर इनका बुढ़ापा ऐसा है कि मानो फिर से जवानी आ रही हो। पर ऐसी ऊपर से थोपी जवानी भी क्या काम दे सकती है? आपने क्या सोचकर इन वृद्ध को सेनापति बनाया है? परिणाम यही होगा कि पराक्रम दूसरे लोग करेंगे और यश इनको प्राप्त होगा। प्राणों पर तो खेलेंगे जवान लोग, और यश प्राप्त करेंगे बूढ़े। जबतक सेना का संचालन इनके बूढ़े, कांपते हाथों में रहेगा, तबतक मेरा हौसला नहीं बढ़ेगा। मैं लड़ाई नहीं कर सकूंगा। मुझे तो आप भीष्म के बाद ही याद करना। मैं तभी हथियार उठाऊंगा।"

घमंड में भूले हुए व्यक्तियों को अपने दोष नहीं सूझते। वे अक्सर यही समझते रहते है कि दोष बताने वाले मे घमंड बहुत अधिक होता है। अपना दोष दूसरे के मुंह से सुनना भी उन्हें नागवार लगता है।

भीष्म को कर्ण की अनर्गल बातों पर क्रोध तो बहुत आया। पर उन्होंने समय की विषमता का विचार करके क्रोध पी लिया। वे बोले--

"कर्ण! परिस्थिति बड़ी विकट है। और मेरे कंधों पर इसे संभालने का भार है। इसी कारण तेरे इन अनुचित वचनों को मैंने सुन लिया है और सह लिया है। यदि यह बात न होती, तो अबतक तुम जीवित भी न रह पाते। कौरवों के पास न जाने किस बुरी घड़ी में तुम आये कि जिससे उनपर यह भारी संकट आ पड़ा ह।" इतना कहकर भीष्म ने अपनेको संभाल लिया।

दोनों को इस प्रकार वाक्-युद्ध करते देख दुर्योधन बोले--"पितामह! आप शांत हो जायं। मै तो आप दोनों ही की सहायता का अभिलाषी हूं और दोनों ही की मदद से विजय प्राप्ति की आशा कर रहा हूं। दोनों ही महान् वीरता का परिचय देन वाले है और कल सूर्य उगते ही युद्ध शुरू होन वाला है। ऐसे अवसर पर हम आपस में न झगड़ें।

भीष्म तो शांत हो ही गये थे। किंतु कर्ण अपनी जिद्द पर अड़ा रहा। उसने यही हठ पकड़ ली कि जबतक भीष्म सेनापति रहेंगे तबतक वह हथियार नहीं उठायगा। लाचार होकर दुर्योधन ने मान लिया और कर्ण का प्रण पूरा होकर रहा। महाभारत के युद्ध में पहले दस दिन कर्ण ने लड़ाई में बिल्कुल हिस्सा नहीं लिया। हां, उसने अपनी सेना को अवश्य लड़ाई में भेज दिया।

दस दिन पूरे हुए। महारथी भीष्म का शरीर तीरों से बिंध कर छलनी-सा बन चुका था। युद्ध के मैदान में वह हताहत पड़े थे। तब जाकर कर्ण को होश आया। उसे अपनी भूल महसूस हुई। उसने भीष्म के पांव पकड़ कर क्षमा मांगी। भीष्म ने कर्ण को क्षमा ही नहीं किया बल्कि आशीर्वाद भी दिया।

इस पर स्वयं कर्ण की प्रेरणा से आचार्य द्रोण सेनापति बनाये गये। द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में कर्ण ने युद्ध में हिस्सा लिया। द्रोणाचार्य भी खेत रहे। उसके बाद फिर कर्ण ने सेनापतित्व स्वीकार करके युद्ध का संचालन किया।

: ६४ :

गीता की उत्पत्ति

कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों तरफ की सेनाएं लड़ने को तैयार खड़ी थीं। उन दिनों की रीति के अनुसार दोनों पक्ष के वीरों ने युद्ध-नीति पर चलने की प्रतिज्ञाएं लीं।

युद्ध की प्रणाली एवं पद्धति समय-समय पर बदलती रहती थी। उन दिनों की युद्ध-प्रणाली को ध्यान में रखते हुए हमें यह कथा पढ़नी चाहिए। तभी हर घटना का सही चित्र हमारे सामने आवेगा। नहीं तो घटनाओं में कहीं-कहीं अस्वाभाविकता का भ्रम हो सकता है।

महाभारत के युद्ध की शर्तें ये थीं:

रोज सूर्यास्त के बाद लड़ाई बंद होजाय। युद्ध बंद होने के बाद दोनों पक्ष के लोग प्रेम के साथ आपस में मिलें। समान बल वालों में ही टक्कर हो। अनुचित या अन्यायपूर्ण ढंग से कोई लड़ नहीं सकता। सेना से दूर हट जाने वालों पर बाणों या हथियारों का प्रहार न हो। रथी रथी से, हाथीसवार हाथीसवार से, घुड़सवार घुड़सवार से और पैदल पैदल से ही लड़े। शत्रु पर विश्वास करके जो लड़ना बंद कर दे उस पर, या डरकर हार मानने या सिर झुकाने वाले पर शस्त्र का प्रयोग न होना चाहिए। दो योद्धा आपस में युद्ध कर रहे हों, तो उनको सूचना दिये बिना, या सावधान किये बिना, तीसरे को उन पर या किसी एक पर शस्त्र नहीं चलाना चाहिए। निहत्थे, असावधान, पीठ दिखाकर भागने वाले, या कवच से रहित लोगों

को हथियार चलाकर नहीं मारना चाहिए। हथियार पहुंचाने और ढोनेवालों, अनुचरों, भेरी बजाने वालों और शंख फूंकने वालों पर भी हथियार चलाना नहीं चाहिए। लड़ाई के इन नियमों को कौरवों एवं पांडवों दोनों न प्रतिज्ञापूर्वक मान लिया।

ज्यों-ज्यों समय बदलता जाता है, संसार की रीतिनीति भी बदलती जाती है। न्याय एवं अन्याय की विवेचना भी एक जैसी स्थिर नहीं रहती; न ही न्याय अन्याय को निर्धारित करने वाले नियम ही कायम रहते हैं। आजकल की लड़ाइयों में जो नीति बरती जाती है, उसके अनुसार, जो भी सामान या जानवर लड़ाई में काम दे सकें, उन सबको नष्ट किया जा सकता है। चाहे वे घोड़े जैसे बेज़बान जानवर हों, या दवाइयों जैसी आवश्यक वस्तुएं हों। किंतु उन दिनों की रीति कुछ और ही थी।

कहने का मतलब यह नहीं कि उन दिनों के प्रचलित विधि-निषेधों का कभी उल्लंघन होता ही नहीं था। उलटे, महाभारत के कई प्रसंगों से साफ पता चलता है कि उन दिनों भी, विभिन्न कारणों से शर्तें कभी-कभी तोड़ी जाती थीं। कभी-कभी ऐसा हुआ करता है कि कुछ खास अवसरों पर, विशेष कारणों से, प्रचलित नियमों का उल्लंघन करना पड़ता है। कभी-कभी यहां तक नौबत पहुंच जाती है कि पुराने विधि-निषेधों के स्थान पर नये ही नियम बनाने पड़ जाते हैं।

महाभारत के युद्ध मे भी कभी-कभी ये नियम तोड़े गये हैं अवश्य; किंतु आम तौर पर सबने उपरोक्त शर्तें मान ली थीं और उन्हींके अनुसार वे लड़े भी थे। कभी किसीके शर्त तोड़ने की खबर पड़ी, तो उसकी सबने निंदा ही की; तोड़ने वाला भी लज्जित हुआ और अंत में पछताया।

सेनापति भीष्म ने कौरव-सेना के वीरों को उत्साहित करते हुए कहा—

"वीरो! वह देखो तुम्हारे सामने स्वर्ग का द्वार तुम्हारा स्वागत करने के लिए खुला पड़ा है। तुमको ऐसा अहोभाग्य प्राप्त हो सकता है कि तुम देवराज इंद्र के साथ या ब्रह्मा के साथ इंद्रलोक या ब्रह्मलोक में जाकर निवास करो। तुम सब उसी मार्ग का अनुसरण करो, जिस पर

तुम्हारे बापदादाओं एवं उनके भी पूर्वजों के पवित्र चरण-चिह्न अंकित हैं। तुम्हारे विख्यात वंशों का यही सनातन धर्म रहा है कि या तो विजय का यश प्राप्त करें, या वीरोचित स्वर्ग। अतः वीरो! चिंता छोड़ दो, और आनंद एवं उत्साह के साथ जूझ पड़ो। यश और कीर्त्ति प्राप्त करो। घर में पलंग पर पड़े-पड़े बीमारी से मरना क्षत्रियोचित मृत्यु नहीं है। क्षत्रिय का यही धर्म है कि समर-भूमि में जौहर दिखलावे; विजय प्राप्त करे या शस्त्र-प्रहार से मृत्यु को प्राप्त हो।"

सेनापति भीष्म की ये उत्साह भरी बातें सुनकर वीर योद्धाओं ने भेरियां बजाकर कौरवों का जयजयकार किया। मानो मरते दमतक युद्ध करने और वीर गति प्राप्त करने की घोषणा की।

कौरव-सेना के वीरों की ध्वजाएं बड़ी शान से रथों पर फहरा रही थीं। भीष्म की ध्वजा में ताड़ के पेड़ और तारिकाओं का चित्र अंकित था। सिंह की पूंछ से चित्रित अश्वत्थामा की ध्वजा हवा में लहरा रही थी। द्रोणाचार्य की ध्वजा हरे रंग की थी और उस पर कमंडलु एवं धनुष के चित्र प्रकाश में चमक रहे थे। दुर्योधन की सुविख्यात ध्वजा में सांप फन फैलाये हुए दिखाई देता था। कृपाचार्य की ध्वजा पर वृषभ का और जयद्रथ की ध्वजा पर शूकर के चित्र सुशोभित हो रहे थे। इसी भांति हरेक वीर के रथ पर विभिन्न रंग-रूप की ध्वजाएं लहरा रहीं थीं।

कौरवों की सेना की व्यूह रचना देखकर युधिष्ठिर ने अर्जुन को आज्ञा दी—

"शत्रुओं की सेना संख्या में बहुत बड़ी मालूम होती है। हमारी सेना कुछ कम है, इस कारण इसकी व्यूह-रचना ऐसे करो, जिसमें वह अधिक न फैल जाय। एक जगह सब वीरों को इकट्ठे रहकर लड़ना होगा। अतः सेना को सूची-मुख (सूई की नोक के समान) व्यूह में सज्जित करो।"

इस प्रकार दोनों पक्ष की सेनाओं की व्यूह-रचना हो गई। अर्जुन ने युद्ध के लिए तैयार हुए वीरों को देखा, तो उसके मन में शंका हुई कि हम यह क्या करने जा रहे हैं। उसने अपनी यह शंका श्रीकृष्ण पर प्रकट

की और तब अर्जुन के इस भ्रम को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने जिस कर्मयोग का उपदेश दिया, वह तो विश्वविख्यात है। श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में वह ग्रंथ आज भी सारे संसार के लोगों को--चाहे वे किसी भी देश के हों--मुक्ति-मार्ग पर चलने का रास्ता बताता है।

: ६५ :

आशीर्वाद-प्राप्ति

सब लोग इसीकी राह देख रहे थे कि कब युद्ध शुरू हो। पर एकाएक पांडव-सेना के बीच में हलचल मच गई। देखते क्या है कि धर्मराज युधिष्ठिर ने अचानक अपना कवच और धनुष बाण उतार कर रथ पर रख दिया है और रथ से उतरकर हाथ जोड़ कौरव-सेना के हथियार-बंद सैनिक-पंक्तियों को चीरते हुए भीष्म की ओर पैदल जा रहे हैं। बिना कुछ सूचना दिये उनको इस प्रकार जाते देखकर दोनों ही पक्ष वाले अचंभे में आगये।

अर्जुन तुरंत रथ से कूद पड़ा और युधिष्ठिर के पीछे कौरव सेना में घुस गया। दूसरे पांडव और श्रीकृष्ण भी उनके साथ ही हो लिये। उन्हें यह डर हो रहा था कि अपनी स्वाभाविक शांति-प्रियता के आवेश में कहीं युधिष्ठिर इस घड़ी युद्ध न करने की या युद्ध बंद करने की न ठान लें।

अर्जुन लपककर युधिष्ठिर के पास जा पहुंचा और उनसे बोला--"महाराज, आप इस हालत में हमें छोड़कर कहां जा रहे हैं? आपने कवच और शस्त्र क्यों उतार डाले? शत्रु तो कवच और अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित खड़े हैं। और बस, अभी युद्ध शुरू ही होने वाला है। आखिर आपकी मंशा क्या है?"

पर युधिष्ठिर को तो यह सब सुनाई नहीं देता था। वे अपनी ही धुन में चले जा रहे थे। अर्जुन की बातें उन्होंने सुनी ही नहीं। वह आगे बढ़ते चले गये।

इतने में श्रीकृष्ण बोले––"अर्जुन ! मैं समझ गया कि महाराज युधिष्ठिर की इच्छा क्या है। वे युद्ध शुरू होने से पहले पितामह भीष्म आदि बड़े-बूढ़ों की अनुमति एवं आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उस प्रकार निःशस्त्र होकर जा रहे है। क्योंकि बिना बड़े-बूढ़ों की आज्ञा लिये युद्ध करना अनुचित माना जाता है। यही कारण है कि धर्मराज ने यह न्यायोचित और विजय प्राप्त करने वाली नीति अख्तियार की। धर्मराज का उद्देश्य अच्छा ही है।"

उधर दुर्योधन की सेना के वीरों ने जब देखा कि युधिष्ठिर बाहें ऊपर उठाये और हाथ जोड़े चले आ रहे है तो समझा, कि वे संधि करने के उद्देश्य से ही आ रहे होंगे। यह सोचकर किसीने तो उन्हें धिक्कारा। कुछ ने आनंद का अनुभव किया। वे आपस में कहने लगे––वह देखो ! राजा युधिष्ठिर हाथ जोड़े निःशस्त्र होकर चले आ रहे है। हमारी भारी सेना देखकर वे डर गये और अब हमसे सुलह करने आ रहे है। धिक्कार है ऐसे डरपोकों को, जो सारे क्षत्रिय-कुल के अपमान का कारण बन रहे हैं।

शत्रु-सेना के हथियार-बंद वीरों की कतार को चीरते हुए युधिष्ठिर सीधे पितामह भीष्म के पास जा पहुंचे और झुककर उनके चरण छुये। फिर बोले––"पितामह ! हमने आपके साथ लड़ने का दुःसाहस कर ही लिया। कृपया हमें युद्ध शुरू करने की अनुमति दीजिये और आशीर्वाद भी कि हम युद्ध में विजय प्राप्त करें।"

भीष्म बोले––"वत्स युधिष्ठिर, मुझे तुमसे यही आशा थी। तुमने भरत-वंश की मर्यादा रख ली। तुमसे मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। मैं स्वतंत्र नहीं हूं––विवश होकर मुझे तुम्हारे विपक्ष में रहना पड़ा है। फिर भी मेरी यही कामना है कि रण में तुम्हारी विजय हो। जाओ, हिम्मत से युद्ध करो––विजय तुम्हारी ही होगी। तुम कभी परास्त नहीं हो सकते।"

भीष्म की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त कर लेने के बाद युधिष्ठिर आचार्य द्रोण के पास गये और परिक्रमा करके उनको दंडवत किया।

आचार्य ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"धन किसीके अधीन नहीं होता। किंतु मनुष्य तो धन ही का गुलाम बना रहता है; यही कारण है कि मैं भी कौरवों के अधीन हूं—उनका साथ देने को बंधा हूं। फिर भी मेरी यही कामना है कि जीत तुम्हारी ही हो।" आचार्य द्रोण से आशीष ले धर्मराज ने आचार्य कृप एवं मद्रराज शल्य के पास जाकर उनके भी आशीर्वाद प्राप्त किये और अपनी सेना में लौट आये।

युद्ध शुरू हुआ, तो पहले बड़े योद्धाओं में द्वंद्व होने लगा। बराबर की ताकत वाले, एक ही जैसे हथियार लेकर दो-दो की जोड़ी में लड़ने लगे। अर्जुन के साथ भीष्म, सात्यकि के साथ कृतवर्मा और अभिमन्यु बृहत्पाल के साथ भिड़ गये। भीमसेन दुर्योधन से जा भिड़ा। युधिष्ठिर शल्य के साथ लड़ने लगे। धृष्टद्युम्न ने आचार्य द्रोण पर सारी शक्ति लगाकर हमला बोल दिया और इसी प्रकार प्रत्येक वीर युद्ध-धर्म का पालन करते हुए द्वंद्व-युद्ध करने लगा।

इन हजारों द्वंद्व-युद्धों के अलावा 'संकुल' युद्ध भी होने लगा। हजारों-लाखों सैनिक झुंड-के-झुंड जाकर विरोधी सैनिक दल पर टूट पड़ने लगे। इस प्रकार एक दल के दूसरे दल से लड़ने को 'संकुल-युद्ध' कहा जाता था। दोनों पक्ष के असंख्य सैनिक पागलों की भांति अंधाधुंध लड़े और गाजर-मूली की भांति कट मरे। रक्त और मांस के साथ रौंदी जाकर हरी-भरी भूमि कीचड़-भरे दलदल-सी बन गई। ऊपर से कितने ही घोड़े और हाथी भी इस दलदल में कट-कटकर गिरे। इस कारण रथों का चलना कठिन हो गया। उनके पहिये कीचड़ में धंस जाते थे। कभी-कभी लाशों के अटक जाने से भी रथों की गति रुक जाती थी।

आजकल की युद्ध-प्रणाली में द्वंद्व-युद्ध की प्रथा तो बंद हो गई है। अंधाधुंध 'संकुल' युद्ध ही हुआ करता है।

भीष्म के नेतृत्व में कौरव-वीरों ने दस दिन तक युद्ध किया। दस दिन के बाद भीष्म आहत हुए और द्रोणाचार्य सेनापति नियुक्त किये गये। द्रोणाचार्य भी जब खेत रहे तो कर्ण को सेनापतित्व ग्रहण करना पड़ा।

सत्रहवें दिन की लड़ाई में कर्ण का भी स्वर्गवास हुआ। उसके बाद शल्य ने कौरवों का सेनापति बनकर सेना का संचालन किया।

इस प्रकार महाभारत का युद्ध, कुल अठारह दिन चला। युद्ध के अंतिम दिनों में घोर अन्याय और कुचक्रों से काम लिया गया। कुयुक्तियों का बोलबाला हो गया।

प्रायः देखा जाता है कि धर्म अचानक नष्ट नहीं हो जाता। समय-समय पर उसे विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है और उसकी परीक्षा-सी हुआ करती है। बड़े-बड़े धर्मात्मा भी ऐसी नाजुक घड़ियों में अपना औसान भूल जाते हैं और अधर्म की राह चल पड़ते हैं। बड़े जिस रास्ते जायं, साधारण लोग भी उसीका अनुसरण करते हैं। फलतः अधर्म पर सब-के-सब उतारू हो जाते हैं। धीरे-धीरे धर्म की आवाज नक्कारखाने में तूती की-सी हो जाती है। अंत में धर्म का नामो-निशां तक मिट जाता है और संसार पर अधर्म ही का राज हो जाता है।

: ६६ :

पहला दिन

अक्सर कौरवों की सेना के अग्रभाग पर दुःशासन ही रहा करता था और पांडवों की सेना के आगे भीमसेन। वीरों के गर्जन, शंखों के बजने की तुमुल ध्वनि, विविध बाजों का शब्द, भेरियों का भैरवनिनाद, घोड़ों का हिनहिनाना, हाथियों का चिंघाड़ना आदि सभी शब्दों ने मिलकर आकाश को गुंजा दिया था। बाणों को 'सांय-सांय' करके जाते देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो आकाश से तारे टूट रहे हों। बाप ने बेटे को मारा। बेटे ने पिता के प्राण लिये। भानजे ने मामा का वध किया। मामा ने भानजे का काम तमाम किया। युद्ध का यह दृष्य था।

पहले दिन की लड़ाई में भीष्म ने पांडवों पर ऐसा हमला किया कि देख-

कर पांडव-सेना थर्रा उठी। पितामह का रथ जिधर चला, उधर ही कालदेव का भयंकर नृत्य-सा होने लगा। सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु यह देखकर क्रोध में आगया और वृद्ध पितामह का बढ़ना रोका। दोनों पक्ष के वीरों में से सबसे छोटे बालक अभिमन्यु को, सबसे वयोवृद्ध धनुर्धारी भीष्म से भिड़ते देखकर देवता लोग भी मुग्ध हो गये।

अभिमन्यु का रथ आगे बढ़ा। उसकी ध्वजा पर सोने का कर्णिकार वृक्ष चित्रित था। अभिमन्यु ने कृतवर्मा पर एक बाण चलाया, शल्य पर पांच और भीष्म को नौ बाण मारे। एक और बाण ने दुर्मुख के सारथी का सिर धड़ से अलग गिरा दिया। दूसरे बाण ने कृपाचार्य के धनुष को नष्ट कर दिया। अभिमन्यु की यह युद्ध-कुशलता देखकर देवताओं ने फूल बरसाये। भीष्म और उनके अनुगामी वीरों ने भी सुभद्रा-पुत्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि यह पिता के ही समान वीर है।

इसके बाद कौरव-वीरों ने अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया और एक साथ उस पर बाणों की बौछार कर दी। किंतु अभिमन्यु इससे तनिक भी विचलित न हुआ। भीष्म ने जितने बाण मारे उन सबको अभिमन्यु ने अपने बाणों से काटकर उड़ा दिया। एक बाण उसने ऐसा निशाना ताककर मारा कि जिससे भीष्म की ध्वजा कट गई। भीष्म के रथ की ध्वजा कटी देखकर भीमसेन का दिल बांसों उछल पड़ा और वह सिंह की भांति दहाड़ उठा। काकाजी की गरज सुनकर भतीजे का हौसला दस गुना बढ़ गया।

सुकुमार बालक की इस अद्भुत रण-कुशलता को देखकर पितामह का मन भी अभिमान एवं आनंद से फूल उठा। उनको खेद हुआ कि मुझ बूढ़े को अपनी सारी शक्ति लगाकर अपने पोते से लड़ना पड़ रहा है! यह सोचकर वे बड़े व्यथित हुए। फिर भी अपना कर्त्तव्य समझकर बालक पर बाणों की बौछार करने लगे। यह देखकर विराट, उत्तर, धृष्टद्युम्न, भीमसेन आदि पांडव-पक्ष के वीरों ने आकर चारों ओर से अभिमन्यु को घेर कर अपने बीच में ले लिया और सबोंने भीष्म पर जोरों का

हमला कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि भीष्म को अभिमन्यु की तरफ से ध्यान हटाकर इन लोगों से अपना बचाव करना पड़ गया।

विराटराज-पुत्र कुमार उत्तर हाथी पर सवार होकर शल्य से आ भिड़ा। शल्य के रथ के चारों घोड़े हाथी के पांव के नीचे आगये और कुचल कर मर गये। यह देख मद्रराज बड़े जोश में आगये और अपना शक्ति नामक हथियार उत्तर पर चला दिया। वह अस्त्र उत्तर का कवच भेदकर उसकी ठीक छाती के अंदर जा लगा। उसके हाथ से अंकुश और तोमर छूटकर गिर गये और हाथी के मस्तक पर से राजकुमार उत्तर का मृत-शरीर पृथ्वी पर लुढ़क पड़ा।

उत्तर के स्वर्ग सिधार जाने पर भी उसके हाथी ने शल्य पर धावा करना न छोड़ा। मद्रराज में और उत्तर के हाथी में ऐसी भीषण भिड़ंत हुई कि देखते ही बनता था। शल्य ने खड्ग का प्रहार करके हाथी की सूंड़ काटकर गिरा दी। तिस पर भी हाथी का जोश ठंडा न हुआ। यह देखकर शल्य ने उसके मर्म-स्थानों को बाणों से बींध डाला। तब वह हाथी, भयानक चिंघाड़ के साथ गिर पड़ा।

विराटराज के जेठे पुत्र श्वेत ने दूर से देखा कि उसके छोटे भाई को शल्य ने मार डाला है; इससे उसे अपार क्रोध हो गया। क्रोध के मारे वह ऐसे लाल हो उठा जैसे घी डालने से अग्नि प्रज्वलित हो उठी हो। राजकुमार ने अग्नि-ज्वाला की भांति मद्रराज के रथ पर हमला कर दिया। कुमार श्वेत के हाथों शल्य की कहीं मृत्यु न हो जाय, इस भय से सात रथिकों ने मद्रराज को अपने घेरे में ले लिया। उन सातों ने रथ पर से श्वेत पर उजले बाणों की बौछार की तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे काले-काले बादलों पर असंख्य बिजलियां कौंध रही हों। श्वेत इससे तनिक भी विचलित न हुआ। उसने अपने तेज बाणों के प्रहार से कौरव-वीरों के धनुष काट डाले। इस पर सातों वीरों ने सात शक्तियों का श्वेत पर प्रयोग किया। श्वेत ने सात भाले फेंककर शक्तियों के टुकड़े कर दिये। श्वेत ने वह कमाल दिखाया कि स्वयं कौरव-वीर भी विस्मित रह गये। इतने में शल्य को आफत में

फंसा देखकर दुर्योधन एक भारी सेना लेकर उनकी रक्षा के लिए चला। इस सेना में और पांडव-सेना में भयानक युद्ध छिड़ गया। हजारों वीर खेत रहे। असंख्य रथों के धुर्रे उड़ गये। हजारों की संख्या में हाथी और घोड़े ढेर होकर गिर पड़े। श्वेत ने दुर्योधन की सेना की धज्जियां उड़ा दीं और उसे तितर-बितरकर के भीष्म पर ही वार कर दिया। और दोनों में घमासान युद्ध होने लगा।

राजकुमार श्वेत ने भीष्म के रथ की ध्वजा फिर काटकर गिरा दी। भीष्म ने श्वेत के रथ के घोड़े और सारथी को बाणों से मार गिराया और रथ की ध्वजा काट डाली। तब फिर श्वेत ने अपना शक्ति नामक शस्त्र भीष्म पर चला दिया। भीष्म ने तीर चलाकर उसे बीच ही में रोक लिया।

इस पर श्वेत ने भारी गदा उठाकर जोरों से घुमाई और भीष्म के रथ पर दे मारी। देखते-ही-देखते भीष्म ने रथ पर से कूदकर अपने प्राण बचा लिये। श्वेत की गदा के वार से भीष्म का रथ चूर-चूर होकर बिखर गया। भीष्म क्रोध के मारे आपे से बाहर होगये और एक बाण खींचकर श्वेत पर जोर से मारा। बाण के लगते ही विराट-कुमार श्वेत के प्राण-पखेरू उड़ गये। यह देख दुःशासन बाजे बजाता हुआ नाच उठा। इसके बाद भीष्म ने पांडवों की सेना में भयंकर प्रलय मचा दी।

पहले दिन की लड़ाई में पांडवों की सेना बहुत ही तंग आगई। धर्मराज युधिष्ठिर के मन में भय छा गया। दुर्योधन आनंद के कारण झूमता हुआ दिखाई दिया। पांडव घबराहट के साथ श्रीकृष्ण के पास गये और उपाय सोचने लगे।

श्रीकृष्ण सबका साहस बंधाते हुए युधिष्ठिर से बोले—"भरतश्रेष्ठ! आप कोई चिंता न करें। आपके चारों भाई विख्यात शूर हैं। तो फिर आप नाहक भय-विह्वल क्यों हो रहे हैं? आपका साथ देने के लिए जब विराटराज, पांचालराज, उनके वीर पुत्र धृष्टद्युम्न एवं हम हैं तो फिर घबराने का कारण ही क्या रहा? क्या आपको यह भी स्मरण नहीं रहा कि भीष्म

की हत्या करना ही शिखंडी के जीवन का एकमात्र ध्येय है ?" इस प्रकार श्रीकृष्ण युधिष्ठिर और पांडव-सेना का धीरज बंधाने लगे।

: ६७ :

दूसरा दिन

पहले दिन की लड़ाई में पांडव-सेना की जो दुर्गति हुई उससे सबक लेकर पांडव-सेना के नायक धृष्टद्युम्न ने दूसरे दिन बड़ी सतर्कता के साथ व्यूह-रचना की और सैनिकों का साहस बंधाया।

क्षुब्ध सागर-सी फैली अपनी सेना को देखकर दुर्योधन मारे दर्प के मस्त हो उठा और गरजकर बोला—"वीरो! प्राण हथेली पर लेकर लड़ो। जीत हमारी होकर रहेगी।"

भीष्म के सेनापतित्व में कौरव-सेना ने पांडवों की सेना पर फिर भीषण आक्रमण कर दिया। पांडवों की सेना तितर-बितर हो गई। बड़ा हाहाकार मच गया। असंख्य वीर मौत के घाट उतारे जाने लगे।

यह देख अर्जुन से न रहा गया। अपने सारथी वासुदेव से बोला—"यदि हम इसी प्रकार लापरवाह रहे तो भीष्म हमारी सेना को मटियामेट करके छोड़ेंगे। इसलिए हमें मन लगाकर लड़ना होगा और भीष्म का वध करके ही दम लेना होगा। नहीं तो हमारी सेना की कुशल नहीं।"

"ठीक कहते हो, धनंजय! यह लो। मैं भीष्म की ओर अपना रथ लिये चलता हूं। खूब सतर्क रहना। लो, यह भीष्म खड़े हैं।" कहते-कहते श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ भीष्म की ओर घुमा दिया।

अर्जुन के रथ को अपनी ओर तेजी से आते देखकर भीष्म ने उसका बाणों से वीरोचित स्वागत किया। सारा विश्व जिन्हें वीरों में श्रेष्ठ कहकर पूजता था। उन महारथी भीष्म ने बड़ी सतर्कता के साथ, चुने हुए बाण, निशाना लगाकर अर्जुन पर चलाये। दुर्योधन ने पहले ही से आज्ञा

दे रक्खी थी कि सभी वीर हर हालत में भीष्म की ही रक्षा में तत्पर रहें। अतः कौरव-वीर भीष्म को चारों ओर से घेरकर अर्जुन का मुकाबला करने लगे।

किंतु अर्जुन भला कब इन आघातों की परवाह करने वाला था! वह निधड़क कौरव-सेना की पंक्ति तोड़ता हुआ आगे बढ़ा। सारी कौरव-सेना में तीन ही ऐसे वीर थे, जो अर्जुन का मुकाबला कर सकते थे। भीष्म, द्रोण तथा कर्ण। इन तीन वीरों को छोड़कर और कोई भी अर्जुन के आगे क्षण भर भी नहीं टिक सकता था। सारे कौरव-वीरों को अपना प्रतिरोध करते देखकर अर्जुन ने उनकी पंक्ति तोड़ दी और उनके ठीक बीचोंबीच जा डटा और फिर अपना गांडीव-धनुष हाथ में लेकर इस कुशलता से उसने युद्ध किया कि कौरव-सेना के सभी महारथी देखकर दंग रह गये। शत्रुओं के रथों के बीच होता हुआ अर्जुन का रथ इस वेग से इधर-उधर चक्कर काटता रहा कि कोई उसे कहीं देख नहीं पाता था। इस अद्भुत युद्ध-कुशलता को देखकर दुर्योधन का कलेजा कांप उठा। एकबारगी भीष्म पर से उसका विश्वास उठ-सा गया।

भय-विह्वल होकर वह बोला—"पितामह, प्रतीत होता है, आपके व आचार्य द्रोण के जीते-जी अर्जुन और श्रीकृष्ण सारी कौरव-सेना को खाक में मिलाकर रहेंगे। महारथी कर्ण ने, जो मुझसे स्नेह करता है, आपके कारण हथियार न उठाने का प्रण कर रक्खा है। जान पड़ता है, मुझे निराशा ही का सामना करना होगा। आप मुझे किसी विधि उबारें और कोई-न-कोई उपाय करके अर्जुन को मौत के मुंह में पहुंचा दें।"

इन कटु वचनों से भीष्म को बड़ा क्रोध हुआ और जोश में आकर भीष्म ने अर्जुन पर जोरों से हमला कर दिया। भीष्म और अर्जुन में ऐसा भयानक संग्राम छिड़ गया कि आकाश में स्वयं देवता लोग उसे देखने के लिए आ इकट्ठे हुए। भीष्म और अर्जुन दोनों ही के रथों में सफेद घोड़े जुते हुए थे। दोनों ही समान शक्ति-संपन्न थे और रण-कुशलता में भी एक दूसरे से कम न थे। बड़े उत्साह के साथ दोनों वीरों ने अपनी-अपनी कुश-

लता दिखाई, मानों उन्हें उसमें असीम आनंद आ रहा हो। बड़ी देर तक यह युद्ध होता रहा। दोनों तरफ से एक दूसरे पर असंख्य बाण चलाये गये। बाणों ने बाणों को काटकर गिरा दिया। कभी-कभी भीष्म के चलाये कुछ बाण श्रीकृष्ण की छाती पर भी लग गये। घावों से लहू निकलने लगा। श्रीकृष्ण के श्याम रंग के शरीर पर खून की बूंदें ऐसी सुशोभित हुईं जैसे तमाल वृक्ष (पलाश-वृक्ष) की हरी-भरी टहनियों पर लाल-लाल फूल शोभा दे रहे हों। श्रीकृष्ण को इस प्रकार घायल देखकर अर्जुन आपे से बाहर हो गया। क्रोधित होकर वह भीष्म पर टूट पड़ा और एक बार जोर का वार कर दिया।

इस प्रकार अर्जुन और भीष्म के बीच बड़ी देरतक तुमुल युद्ध होता रहा। फिर भी हार-जीत का कोई निर्णय न हो सका। दोनों ने अद्‌भुत चतुरता का परिचय दिया था। जब दोनों के रथ वेग से आकर एक दूसरे से टकराते थे तब दूर से देखनेवाले को केवल ध्वजा देखकर ही पहचानते थे कि कौनसा रथ भीष्म का और कौनसा अर्जुन का। वरना दोनों रथों में कोई अंतर ही दिखाई नहीं पड़ता था। यह चमत्कार देखकर मनुष्य तो मनुष्य, स्वयं देवता लोग भी विस्मय में पड़ जाते थे। एक ओर यह अद्‌भुत युद्ध हो रहा था, दूसरी ओर द्रुपदराज के पुत्र धृष्टद्युम्न, जो द्रोणाचार्य के जन्म के वैरी थे, आचार्य के साथ भिड़े हुए थे।

आचार्य द्रोण ने धृष्टद्युम्न पर पैने बाणों की बौछार करके उन्हें घायल कर दिया। पर धृष्टद्युम्न जरा भी न घबराया। वह घृणा-पूर्वक हंसता हुआ आचार्य पर पैने बाण बरसाता रहा। आचार्य ने सहज ही में उन बाणों को काट गिराया। इसमें धृष्टद्युम्न का सारथी भी मारा गया। इससे राजकुमार को बहुत क्रोध हो आया। उत्तेजित होकर भारी गदा हाथ में लेकर वह द्रोण पर टूट पड़ा। आचार्य ने गदा को बाणों से चूर-चूरकर दिया। फिर धृष्टद्युम्न तलवार लेकर द्रोण पर ऐसे झपटा, जैसे हाथी पर सिंह। किंतु द्रोण ने शरों की वर्षा से राजकुमार का शरीर बुरी तरह से बींध डाला। यहां तक कि धृष्टद्युम्न

से चला भी नहीं गया। इतने में पांचाल राजकुमार की यह हालत देखकर भीमसेन उसके बचाव के लिए दौड़ा और द्रोणाचार्य पर बाणों की एक साथ वर्षा कर दी। इससे पल भर के लिए द्रोण रुक गये। यह समय पाकर भीमसेन ने धृष्टद्युम्न को अपने रथ पर बिठा लिया और युद्ध-क्षेत्र से निकाल लिया।

यह देख दुर्योधन ने कलिंगराज की सेना को आज्ञा दी कि वह भीम का पीछा करे और उस पर हमला करे।

कलिंग-सेना को भीमसेन ने तहस-नहस कर दिया। उस सेना के असंख्य सैनिक मृत्यु के घाट उतार दिये। भीम ने ऐसा प्रलय मचाया कि देखकर सेना हाहाकार कर उठी। वह कहने लगी कि कहीं यमराज तो भीम के रूप में नहीं उतर आये! एक बार निराशा का यह भाव मन में आना था कि कौरव-सेना की हिम्मत टूट गई। सैनिकों के मन में भय छा गया। उनका हौसला पस्त हो गया। कौरव-सेना का यह हाल देखकर भीष्म अर्जुन से लड़ना छोड़कर उनकी सहायता के लिए इधर ही आ पहुंचे। यह देखकर सात्यकि, अभिमन्यु आदि पांडव-वीर भी भीमसेन की रक्षा के लिए आगये और भीष्म पर सबने हमला कर दिया। सात्यकि के चलाये एक बाण ने भीष्म के सारथी को मार गिराया। सारथी के गिर जाने पर घोड़े हवा से बातें करते हुए अत्यंत वेग से भाग खड़े हुए। यह देख पांडव-सेना के वीर बांसों उछल पड़े और साथ ही कौरवों की सेना पर टूट पड़े। इससे कौरव-सेना में बड़ी तबाही मची। सब कौरव-वीर पश्चिम की ओर देख-देखकर यह मनाने लगे कि युद्ध बंद हो, ताकि इस तबाही से मुक्ति मिले।

निदान सूर्य अस्त हुआ। संध्या हुई। भीष्म द्रोणाचार्य से बोले—"आचार्य! उचित यही होगा कि अब युद्ध बंद कर दिया जाय। आज हमारी सेना के वीर बड़े थके हैं।"

और युद्ध बंद हुआ। अर्जुन आदि पांडव-वीर विजय के बाजे बजाते और आनंद से झूमते हुए अपने शिविरों को लौटे।

पहले दिन की लड़ाई के बाद पांडवों में जो आतंक छाया हुआ था, वह आज के युद्ध के बाद कौरवों के मन में छा रहा था।

: ६८ :

तीसरा दिन

तीसरे दिन सबेरे भीष्म ने अपनी सेना की गरुड़ के आकार में व्यूह-रचना की और उसके अगले सिरे का बचाव दुर्योधन के जिम्मे किया। सब प्रकार की तैयारियां बड़ी सतर्कता के साथ की गई थीं। इसलिए कौरवों को दृढ़ विश्वास था कि शत्रु आज हमारा व्यूह तोड़ ही नहीं सकेंगे।

उधर पांडवों ने भी बड़ी सतर्कता के साथ व्यूह-रचना की। अर्जुन और धृष्टद्युम्न ने सलाह करके कौरवों का गरुड़-व्यूह तोड़ने के उद्देश्य से अपनी सेना का व्यूह अर्द्ध-चंद्र की शक्ल में बनाया। एक सिरे पर भीमसेन और दूसरे सिरे पर अर्जुन रक्षा करने के लिए खड़े हो गये कि जिससे सेना का बचाव भलीभांति हो सके।

इस प्रकार दोनों सेनाओं की व्यूह-रचना हो जाने के बाद दोनों पक्ष फिर युद्ध में लग गये और एक दूसरे पर हमला करने लगे। दोनों सेनाओं की टुकड़ियां इस प्रकार आपस मे एक दूसरे से गुथ गईं और उनमें इतना भीषण संग्राम होने लगा कि रथों, हाथियों और घोड़ों के तेज़ चलने के कारण धूल उड़कर आकाश में छा गई, जिसके कारण सूरज भी छिप गया। अर्जुन ने कौरव-सेना पर बड़ा भीषण हमला किया। फिर भी वह शत्रु-सैन्य का मोर्चा न तोड़ सका।

कौरव-सेना के वीरों ने भी पांडवों की कतारें तोड़ने की चेष्टा की और वे सारी शक्ति लेकर अर्जुन पर टूट पड़े। कौरव-वीरों ने, अपने सब प्रकार के पैने हथियारों से अर्जुन के रथ पर भीषण हमला कर दिया। टिड्डी-दल की भांति अपनी ओर आते हुए उन हथियारों

को अर्जुन ने अपनी रण-कुशलता से रोक लिया और बड़ी तेज़ी से अपने चारों ओर बाण चलाते हुए उसने बाणों का एक घेरा-सा खड़ा कर लिया और इस प्रकार शत्रु-दल के भयानक हथियारों को निकम्मा कर दिया।

उधर दूसरी ओर शकुनि को भारी सेना के साथ आया देखकर सात्यकि और अभिमन्यु ने उसका मुकाबला किया। शकुनि भी बड़ा कुशल योद्धा था। सात्यकि के रथ को उसने तहस-नहस कर दिया। तब सात्यकि जोश में आगया और अभिमन्यु के रथ पर चढ़कर शकुनि की सेना पर भीषण हमला करके उसे नष्ट कर दिया।

युधिष्ठिर जिस सेना का संचालन कर रहे थे, उस पर भीष्म और द्रोणाचार्य एक साथ टूट पड़े। यह देख नकुल और सहदेव युधिष्ठिर की सहायता करने दौड़ पड़े और द्रोणाचार्य की सेना पर बाणों से जोरों का हमला कर दिया। उधर भीम और घटोत्कच ने एक साथ दुर्योधन पर हमला बोल दिया। घटोत्कच ने ऐसी कुशलता का परिचय दिया कि उसके सामने स्वयं भीमसेन का पराक्रम भी फीका पड़ गया।

भीमसेन के चलाये एक बाण से दुर्योधन जोर का धक्का खाकर बेहोश होगया और रथ पर गिर पड़ा। यह देख उसके सारथी ने सोचा कि दुर्योधन को लड़ाई के मैदान से हटा लिया जाय जिससे कौरव-सेना को दुर्योधन के मूच्छित होने का पता न चले। उसे भय हुआ कि अगर सेना को पता चल गया कि दुर्योधन मूच्छित होगये हैं तो खलबली मच जायगी और व्यूह-रचना टूट जायगी। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर सारथी जल्दी से रथ को युद्धि-भूमि से हटा कर छावनी की ओर होगया। किंतु उसने जो सोचा था, हुआ उससे उलटा ही। कौरव-सेना का अनुशासन स्थिर रखने के उद्देश्य से उसने जो कार्य किया था, वही उसके अनुशासन के टूटने और सेना में खलबली मच जाने का कारण बन गया। कौरव-सैनिकों ने समझा कि दुर्योधन युद्ध-क्षेत्र से भाग खड़े हुए। इससे सारी कौरव-सेना भयभीत हो उठी। सैनिकों में भगदड़ मच गई। इस प्रकार सेना का अनुशासन भंग हो जाने पर व्यूह-रचना भी नष्ट हो गई।

घबराये हुए और भय के मारे भागने वाले सैनिकों का पीछा करके भीमसेन ने उन्हें बाण मार-मार कर बहुत परेशान किया।

तितर-बितर हो रही कौरव-सेना को सेनापति भीष्म एवं आचार्य द्रोण ने किसी तरह इकट्ठा किया और फिर से व्यवस्थित रूप से व्यूह-रचना की। इसी बीच दुर्योधन की मूर्च्छा दूर हुई तो उसने भी मैदान में आकर परिस्थिति को सम्हालने में भीष्म और द्रोण का हाथ बंटाया। जब जरा शांति हुई और व्यवस्था बंधी तो वह भीष्म के पास गया और पितामह भीष्म को जली-कटी सुनाने लगा। बोला--

"आप और आचार्यजी क्या करते हैं, जो अपनी सेना को भी ठीक से सम्हाल कर नहीं रख सकते और जब उस पर हमला होता है तो उसे तितर-बितर होते देख कर भी कुछ करते-धरते नहीं। आपके सेनापतित्व में सेना का यह हाल हो, यह हमारे और आपके लिए बड़े अपमान की बात है। पर मालूम ऐसा होता है कि आप पर इसका कोई असर नहीं हो रहा है। इसका तो यही अर्थ है कि आप पांडवों को चाहते हैं। यदि यह सही है, तो पहले ही से आपने क्यों नहीं कह दिया कि मैं पांडवों, सात्यकि, धृष्टद्युम्न आदि के विरुद्ध नहीं लड़ सकता। मुझे स्पष्ट क्यों नहीं बता दिया कि तेरे शत्रु ही मेरे प्रिय हैं? यदि यह बात न होती--और आप और द्रोणाचार्य मन लगा कर पांडवों से लड़ते तो उस सेना को हराना आप दोनों के बायें हाथ का खेल है। अब भी समय है कि आप दोनों स्पष्ट रूप से मुझे बता दें। अगर मेरा साथ छोड़ देना है तो बिना किसी झिझक के कह दें और पांडवों के पक्ष में चले जायं। मैं अकेला ही उनसे लड़ूंगा।"

युद्ध में बुरी तरह से हार जाने से दुर्योधन घबरा गया था। फिर उसे पहले ही से मालूम था कि भीष्म मेरी चालों को पसंद नहीं करते। यही नहीं, घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इसी कारण खिसिया कर उसने इस प्रकार भीष्म को जली-कटी सुनाई।

दुर्योधन की इन मूर्खता भरी और नादान बातों पर भीष्म को जरा हंसी-सी आई। वे बोले--"बेटा! मैंने अपनी बात तुमसे छिपाई कहां है?

स्पष्ट रूप से तुमको जो सलाह मैंने दी--उसकी ओर तुमने जरा भी ध्यान नहीं दिया। कितनी बार तुम्हें समझा कर कहा कि पांडवों पर विजय तुम कभी नहीं पा सकोगे। पर तुमने मेरी चेतावनी पर ध्यान ही कब दिया और कर्ण के बहकावे में आकर युद्ध छेड़ दिया। यह मेरी तो भूल नहीं थी। फिर यदि मैं तुम्हारा साथ दे रहा हूं तो वह केवल कर्त्तव्य से प्रेरित होकर। यद्यपि मैं बूढ़ा हो गया हूं, पर लड़ाई में मैं पीछे हटने वाला नहीं हूं। तुम अपने मन से यह ख्याल हटा दो कि मैं पांडवों के प्रेम के कारण उन्हें हराने में कोई कोई कसर उठा रखूंगा।"

इतना कह कर भीष्मने फिर से युद्ध शुरू कर दिया।

इधर पांडवों की सेना में आनंद छाया हुआ था। दिन के पहले भाग में उन्होंने कौरव-सेना पर जिस प्रकार हमला कर के तितर-बितर कर दिया था, उससे इस बात की आशा न थी कि भीष्म इस बिखरी सेना को फिर से इकट्ठा करके हम पर टूट पड़ेंगे। पर उनका यह विचार गलत साबित हुआ। भीष्म ने ऐसा भयानक हमला किया कि पांडव-सेना के पांव उखड़-से गये। ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो भीष्म ने माया से अपने को एक से अनेक बना लिया हो। जिधर देखो, उधर भीष्म ही भीष्म दिखाई देते थे। दुर्योधन की जली-कटी बातों ने उनके क्रोध को इतना भड़का दिया कि वे ऐसे दिखाई दिये, जैसे कोई जलता हुआ अंगार इधर-से-उधर घूमकर प्रलय मचा रहा हो। जो भी भीष्म के सामने आया कि भस्म होगया, जैसे पतंग आग में गिरकर भस्म हो जाता है। भीष्म ने ऐसा प्रलयंकारी युद्ध किया कि पांडव-सेना भय-विह्वल हो उठी और तितर-बितर होकर भागने लगी। श्रीकृष्ण, अर्जुन और शिखंडी के प्रयत्नों के बावजूद सेना अनुशासन न रख सकी।

यह सब देख श्रीकृष्ण बोले-- "अर्जुन! अब तैयार हो जाओ। आज तुम्हारी परीक्षा का समय आगया। तुमने शपथ खाई थी न, कि भीष्म द्रोण आदि गुरुजनों एवं मित्रों तथा संबंधियों का संहार करूंगा? अब समय आगया कि अपनी शपथ को पूरा कर दिखाओ। हमारी सेना

इस समय भय-विचलित हो रही है। उनके पांव उखड़ रहे हैं। यही समय है कि भीष्म पर जोर का आक्रमण करके अपनी सेना का उत्साह बंधाओ और उसे नष्ट होने से बचाओ।"

अर्जुन ने यह सब देखा और श्रीकृष्ण के कथन पर विचार करके निश्चय-पूर्वक बोला--"माधव, आप रथ को भीष्म की ओर कर लीजिए।"

अर्जुन का रथ तेजी से भीष्म की ओर चला। भीष्म ने अर्जुन को अपनी ओर आते देख बाणों की बौछार से उसे रोकने की चेष्टा की। अर्जुन ने गांडीव पर चढ़ाकर तीन बाण ऐसे खींच कर मारे कि भीष्म का धनुष टूट गया। भीष्म ने दूसरा धनुष हाथ मे लिया और प्रत्यंचा चढ़ाना ही चाहते थे कि अर्जुन के बाण ने उसके भी टुकड़े कर दिये। अर्जुन की यह निपुणता देखकर पितामह मुग्ध हो गये। पर भीष्म ने भी बड़ी निपुणता से एक साथ बहुत से अचूक बाण अर्जुन को लक्ष्य करके मारे। अर्जुन ने उन बाणों का काट तो किया, परंतु श्रीकृष्ण को उससे तसल्ली न हुई। उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि भीष्म के प्रति अर्जुन के मन में जो श्रद्धा है, उसके कारण अर्जुन ठीक से युद्ध नहीं कर रहा है। उधर भीष्म का आक्रमण तो हर घड़ी बल पकड़ता जा रहा था। पांडव-सेना घबराई हुई भाग रही थी। ऐसी विषम परिस्थिति पर जरा भी हिचकिचाने से बना-बनाया काम बिगड़ने का भय था।

यह सोचकर श्रीकृष्ण ने, भीष्म के बाणों से बचने के लिए, अर्जुन के रथ को घुमा-फिरा कर बड़ी निपुणता से चलाया; परंतु फिर भी भीष्म के चलाये हुए कई बाण अर्जुन एवं श्रीकृष्ण के शरीर पर लग ही गये। इसपर श्रीकृष्ण को असीम क्रोध हो आया। उनसे न रहा गया। उन्होंने खुद भीष्म को मारने की ठानी। घोड़ों की रास छोड़ दी और चक्र हाथ में लेकर रथ पर से कूद पड़े और भीष्म की ओर दौड़े।

किंतु भीष्म इससे ज़रा भी विचलित न हुए। उनके मुख पर प्रसन्नता झलक रही थी। आह्लाद के साथ बोल उठे--"आओ, माधव, आओ! आओ! नमस्कार है तुम्हें। मेरे अहोभाग्य कि मेरी ख़ातिर तुम्हें रथ

पर से उतरना पड़ा! यह लो, करो मेरा वध कि जिससे मेरा सुयश तीनों लोकों में व्याप्त हो जाय। तुम्हारे हाथों मरकर तो मैं वह पद प्राप्त करूंगा, जिससे इस पार लौटना नहीं पड़ता।"

अर्जुन यह देख सन्न रह गया। उसने सोचा कि यह तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। वह रथ से उतरा और श्रीकृष्ण के पीछे भागा। बड़े परिश्रम से श्रीकृष्ण के पास पहुंचकर उन्हें पकड़ पाया और बोला--"नाराज न हों, माधव, मैं स्वयं यह करूंगा। मेरी सुस्ती को क्षमा करें।"

अर्जुन के आग्रह पर श्रीकृष्ण वापस लौटे और फिर से अर्जुन का रथ हांकने लगे।

श्रीकृष्ण के इस कार्य से अर्जुन उत्तेजित हो उठा और कौरव-सेना पर वह मानो वज्र के समान गिरा। हजारों की संख्या में कौरव-वीरों को उसने मौत के घाट उतार दिया और शाम होते-होते कौरव-सेना बड़ी बुरी तरह से हार गई। थकी-हारी सेना मशालों की रोशनी में अपने शिविर को लौट चली।

कौरव-सैनिक आपस में बातें करते थे कि भीष्म को हराना अर्जुन की ही सामर्थ्य की बात थी। अर्जुन के सिवा और किसकी हिम्मत होती, जो हारी लड़ाई को जीत में बदल लेता।

: ६९ :

चौथा दिन

लड़ाई में हर दिन एक ही जैसी घटनाएं हुआ करती हैं। मार-काट व हार-जीत के सिवाय उसमें होता भी क्या है कि जिससे कथा मनोरंजक बने? परंतु महाभारत के आख्यान की सर्व प्रधान घटना ही युद्ध है। उसे अगर ध्यान से न पढ़ा जाय तो कथा के भावों और भावोद्वेगों का सही परिचय प्राप्त नहीं हो सकता।

पौ फटी। भीष्म ने कौरवों की सेना का फिर से व्यूह रचा। द्रोण, दुर्योधन आदि वीर उन्हें घेर कर खड़े हो गये। वे उस समय ऐसे मालूम होते थे मानो देवताओं से घिरे देवराज इंद्र वज्र हाथ में लिये खड़े हों। भीष्म ने सब देखभाल कर सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। हनुमान की ध्वजा वाले रथ पर से अर्जुन ने भीष्म की हलचलों का निरीक्षण कर लिया और युद्ध के लिए तैयार हो गया। लड़ाई शुरू हो गई।

अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन, शल-पुत्र आदि पांचों वीरों ने बालक अभिमन्यु को एक साथ घेर लिया और भीषण वार करने लगे। अर्जुन का वीर बालक उससे जरा भी विचलित न हुआ और पांचों आक्रमणकारियों का इस दृढ़ता के साथ मुकाबला किया, जैसे हाथियों के समूह का एक सिंह का बच्चा मुकाबला करता हो। अर्जुन ने जब यह देखा तो उसे बड़ा क्रोध आया और तुरंत अभिमन्यु के पास पहुंच गया। अर्जुन के आजाने से युद्ध में और गरमी आगई। इतने में धृष्टद्युम्न भी एक भारी सेना लेकर उधर ही आ पहुंचा।

शल का पुत्र मारा गया। यह खबर पाकर शल और शल्य दोनों उस जगह आ पहुंचे और धृष्टद्युम्न पर बाणों की वर्षा करने लगे। शल्य ने एक तीखा बाण चला कर धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला। यह देख अभिमन्यु से न रहा गया। उसने शल्य पर तेज बाणों की बौछार कर दी। अभिमन्यु का क्रोध देखकर कौरव-वीर कांप उठे। शल्य पर भारी संकट आया जानकर दुर्योधन और उनके भाई उसकी मदद पर आगये और शल्य को चारों ओर से घेर लिया। इसी बीच भीमसेन भी उधर आ पहुंचा और जमकर युद्ध करने लगा। दुःशासन आदि ने जब यह देखा तो एकबारगी कांप उठे। यह देख दुर्योधन को बड़ा क्रोध हो आया। उसने क्रोध में ही हाथियों की भारी सेना लेकर भीमसेन पर हमला कर दिया। चिंघाड़ते हुए हमला करने वाले हाथियों का मुकाबला करने के लिए भीमसेन रथ पर से कूद पड़ा और लोहे की एक भारी गदा लेकर उन पर पिल पड़ा। भीम की मार खाकर हाथी भयभीत हो उठे और आपस में ही लड़ने लगे।

वह दृश्य बड़ा भीषण व साथ-साथ दयनीय भी था। कौरवों की हाथी-सेना का यह हाल देखकर पांडव-सेना के वीरों ने उन हाथियों पर बाणों की और बौछार कर दी जिससे वे और भी भयभीत हो गये।

भीमसेन उन मस्त हाथियों के बीच में घुस गया और उनको बुरी तरह से काट-काटकर गिराने लगा। उस समय ऐसा मालूम होता था, मानो देवराज इंद्र पर्वतों के पंख काट रहे हों। असंख्य हाथी मारे गये और पहाड़ों की भांति रण-भूमि में गिर पड़े। बचे-खुचे घबराहट के मारे इधर-उधर भागते हुए कौरवों की सेना का ही नाश करने लगे।

यह सब देखकर दुर्योधन से न रहा गया। उसने आज्ञा दे दी कि सारी कौरव-सेना एकत्र होकर अकेले भीम पर आक्रमण कर दे। पर कौरव-सेना के इस आक्रमण से भीमसेन जरा भी विचलित न हुआ और सुमेरु पर्वत के समान अचल डटा रहा।

इसी बीच पांडव-सेना के और वीर भीम की सहायता को आ पहुंचे।

दुर्योधन ने भीम पर जो बाण चलाये थे, उनमें से कई भीमसेन की छाती पर लग गये थे। इससे भीम जरा चिढ़ गया था। वह फिर से रथारूढ़ होगया और अपने सारथी से बोला—"विशोक! देखो तो, धृतराष्ट्र के ये बेटे मेरे सामने युद्ध-क्षेत्र में आ खड़े हुए हैं। मैं बड़ा ही खुश हूं। मेरे इच्छा-रूपी पेड़ पर मानो आज ही फल निकल रहे हैं और मेरे हाथ आगये हैं। तुम रास को जरा संभाल कर पकड़ लो। घोड़ों को सतर्कता से हांको। मैं आज ही इन सबको यमराज के दरबार में भेजे देता हूं।"

यह कहते-कहते भीमसेन ने धनुष तानकर दुर्योधन पर कई बाण एक साथ चला दिये। बाणों का प्रहार ऐसा भीषण था कि दुर्योधन के अगर कवच न होता तो उसके प्राण ही न रहते। कवच के कारण वह बच गया। पर इस हमले में भीमसेन ने दुर्योधन के आठ भाई मार डाले।

दुर्योधन ने भी क्रोध में आकर कई तीखे बाण भीमसेन पर चलाये। एक बाण से भीमसेन के धनुष के टुकड़े कर दिये। इस पर भीमसेन ने दूसरा धनुष ले लिया और तलवार की-सी तेज धार वाला बाण चलाकर

दुर्योधन का धनुष काट डाला। दुर्योधन ने भी दूसरा धनुष ले लिया और खूब निशाना साध भीमसेन की छाती पर एक भीषण अस्त्र चलाया। चोट खाकर भीम मूर्च्छित-सा होकर रथ पर बैठ गया। यह देख अभिमन्यु आदि वीरों ने दुर्योधन पर प्रखर अस्त्रों की वर्षा कर दी। अपने पिता का यह हाल देखकर घटोत्कच के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह आपे से बाहर होगया और उसने भयानक युद्ध शुरू कर दिया। घटोत्कच के भीषण आक्रमण के आगे कौरव-सेना टिक न सकी।

सेना को विह्वल होती देखकर भीष्म पितामह द्रोण से बोले—"द्विजवर! इस राक्षस के आगे आज हम नहीं ठहर सकेंगे। एक तो हमारे सैनिक थके हुए हैं, दूसरे शाम भी हो चली है। अंधेरा हो जाने पर तो राक्षस की शक्ति और भी बढ़ेगी। इस कारण आज का युद्ध अभी बंद कर दें। कल फिर देखा जायगा।" यह कहकर भीष्म ने सेना लौटा ली।

उस दिन की लड़ाई में दुर्योधन के कितने ही भाई मारे गये। चिंता-ग्रस्त दुर्योधन अपने शिविर में जाकर व्यथित हृदय बैठ गया। उसकी आंखें भर आईं।



हस्तिनापुर में बैठ, संजय के मुंह से भारत-युद्ध की घटनाओं का वर्णन सुनते हुए, धृतराष्ट्र आर्त्त स्वर में बोले—

"संजय! तुम तो सदा मेरे ही बंधु मित्रों एवं पुत्रों के मारे जाने और दुःख उठाने की बात सुनाते जा रहे हो! क्या इसका मतलब यह है कि मेरे पुत्र और उनके साथी ही हार रहे हैं? संजय! सचमुच मुझे बहुत शोक होता है। कौन-सी ऐसी बात है, जिससे मेरे पुत्र जीतने की आशा करते है? यह मेरे लिए असह्य हो रहा है। ऐसा मालूम होता है, मानो प्रारब्ध का लिखा कोई मेट नहीं सकता।"

संजय ने उत्तर दिया—"राजन्! यह जो कुछ अन्याय हो रहा है, वह सब आप के ही कर्म का परिणाम है। अब घबराने से क्या बन सकता

है ? अस्थिर न होइए ! दृढ़ता के साथ सारी घटनाओं का हाल सुनते जाइए ।"

"विदुर की सब बातें अब सच साबित हो रही हैं ।" कहकर धृतराष्ट्र ने गहरी सांस ली और अपने बिस्तर पर पड़ गये ।

"संजय ! जैसे कोई तैर कर समुद्र को पार नहीं कर सकता वैसे-ही इस असीम दुःख को मैं कभी पार नहीं कर सकूंगा ।" धृतराष्ट्र ने रुद्ध कंठ से कहा ।

कुरुक्षेत्र के मैदान का आंखों देखा हाल संजय धृतराष्ट्र को सुनाता जाता था । वहांका बयान सुनते-सुनते धृतराष्ट्र व्यथित हो जाते और वह दुःख उनकी सहन-शक्ति से भारी हो जाता, तो वह कुछ कह-सुनकर अपना शोक-भार हलका कर लेते ।

"मेरे सारे पुत्र भीमसेन के ही हाथों मार डाले जाने वाले हैं! हमारे पक्ष में कौनसा ऐसा शूर-वीर है, जो मेरे पुत्रों की रक्षा कर सके ! मेरे ध्यान में तो ऐसा कोई वीर हमारी तरफ़ दीखता नहीं । युद्ध में हार कर हमारी सेना मैदान छोड़कर भागती है तो भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा आदि वीर खड़े-खड़े क्या देखा ही करते हैं ? सेना को बचाने का वे कोई प्रयत्न नहीं करते ? कौन-सी अशुभ घड़ी में मेरे बेटों की रक्षा करने का उन्होंने निश्चय किया था ? अगर यही हालत रही तो मेरा एक भी पुत्र जीता नहीं बचता दीखता । हा दैव ! तूने मेरे भाग्य में क्या लिख रखा है?" कहकर वृद्ध धृतराष्ट्र रोने लगे ।

संजय बोले—"राजन् ! शांत होइए । पांडव धर्म पर स्थिर हैं । इसलिए युद्ध में भी विजय उन्हींकी होनी है । माना कि आपके भी पुत्र बड़े वीर हैं । किंतु उनके मन में कुविचार ही उठते हैं । यही कारण है कि उनकी अवनति ही होती जा रही है । पांडवों की उन्होंने बुराई की । वे अब अपने ही किये का फल पा रहे हैं । पांडव और कुछ नहीं करते, केवल क्षत्रियोचित ढंग से न्यायपूर्वक युद्ध कर रहे हैं । न्याय के मार्ग से विचलित न होने के कारण उनका बल नष्ट नहीं हुआ । उल्टे वह बढ़

रहा है। आपको विदुर ने, द्रोण ने, भीष्म ने और मैंने कितना समझाया। फिर भी आपने किसीकी न सुनी। अपने हितैषियों की बात न मानी। अपनी ही राह चले। जैसे कोई योगी मूर्खता-वश दवा न खाने की हठ करे, वैसे ही आप अपने मूर्ख पुत्र ही की राय मानते रहे और वह बात नहीं मानी जिससे कुल का हित हो सकता था। अब आप पछता रहे हैं, लेकिन इससे क्या फायदा हो सकता है? और सुनिये, आपके पुत्र दुर्योधन ने भी चौथी रात को भीष्म से यही प्रश्न किया जो आपने अभी मुझसे किया। भीष्म ने उसका क्या उत्तर दिया, यह भी आपको अभी सुनाता हूं।"

इस भूमिका के साथ संजय ने कहना शुरू किया।



चौथे दिन का युद्ध बंद हुआ। रात हो चली। दुर्योधन अकेले पितामह भीष्म के शिविर में गया और बड़ी नम्रता के साथ पूछा—"पितामह! यह तो सारा संसार जानता है कि आप, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, भूरिश्रवा, विकर्ण, भगदत्त आदि साहसी वीर मृत्यु से जरा नहीं डरते। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि आप लोगों की शक्ति और पराक्रम के सामने पांडवों की सेना कुछ नहीं है। आपमें से एक-एक के विरुद्ध पांचों पांडव इकट्ठे भी जुट जायं, फिर भी जीत उनकी नहीं हो सकेगी। इतना सब कुछ होते हुए भी क्या कारण है कि कुंती के पुत्र हमें रोज युद्ध में हराते जाते हैं? अवश्य इसमें कोई रहस्य मालूम होता है। मुझे यह समझाइये।"

भीष्म ने शांत-भाव से उत्तर दिया—"बेटा दुर्योधन! मेरी बात सुनो। मैंने कितने ही प्रकार से तुम्हें समझाया। ऐसी युक्तियां बताईं जिनसे तुम्हारा हित हो सकता था। परंतु तुमने एक न सुनी। बुजुर्ग का कहा न माना। पर अब भी चेत जाओ। पांडवों से संधि कर लो, जिसमें तुम्हारी भी कुशल हो और संसार की भी। आखिर दोनों एक ही कुल के हो—भाई-भाई हो। राज्य को आपस में बांटकर दोनों बंधु-गण सुखपूर्वक भोग सकते हो। इससे पहले भी मैंने तुम्हें यही सलाह दी।

पर तुमने नहीं मानी। उल्टे पांडवों का अपमान किया। अब तुम यह अपने ही किये का फल पा रहे हो। भगवान् कृष्ण जिनके रक्षक हैं, उन पाण्डवों की विजय अवश्य होगी, इसमें संदेह नहीं। मैं अब भी तुमको सावधान किये देता हूं कि पांडवों से संधि कर लेना ठीक होगा। इससे एक तो तुम्हें शक्तिमान भाई प्राप्त होंगे। दूसरे, तुम राज्य का भी सुख भोग सकते हो। स्मरण रहे--श्रीकृष्ण और अर्जुन नर-नारायण के अवतार हैं। उनकी अवहेलना करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश निश्चित है।"

भीष्म से बिदा लेकर दुर्योधन अपने शिविर में चला गया। पलंग पर लेटा हुआ बड़ी देरतक विचारों में डूबा रहा। उसे नींद नहीं आई।

: ७० :

पांचवां दिन

अगले दिन सुबह होने पर दोनों सेनाएं फिर सुसज्जित हो गईं। भीष्म ने आज और भी अधिक सुरक्षित रूप से अपनी सेना की व्यूह-रचना की। उधर पांडव-सेना की भी व्यूह-रचना युधिष्ठिर ने बड़ी सतर्कता से की। सदा की भांति भीमसेन सेना के आगे खड़ा होगया। शिखंडी, धृष्टद्युम्न और सात्यकि, उनके पीछे सेना की रक्षा करते हुए खड़े रहे और सब पांडव-वीर श्रेणी-बद्ध होकर उनके पीछे। सबसे पिछली कतार में युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव खड़े थे।

शंख-ध्वनि के साथ लड़ाई शुरू हो गई। भीष्म ने धनुष तानकर बाणों की झड़ी लगानी शुरू कर दी और शीघ्र पांडव-सेना को नाकोंदम कर दिया। सेना में हाहाकार मच गया। यह देखकर धनंजय ने भीष्म पर कई बाण मारे और उन्हें बहुत सताया।

सदा की भांति अपनी सेना को भयभीत होते देखकर दुर्योधन ने आचार्य द्रोण को बुरा-भला कहा, जिससे द्रोण क्रोध में आगये और बोले--

"तुम पांडवों के पराक्रम से परिचित नहीं हो, यही वजह है जो तुम ऐसी बकझक किया करते हो। फिर भी में अपनी ओर से तो कोई कसर नहीं रखता।" यह कहकर द्रोणाचार्य पांडवों की सेना पर टूट पड़े। यह देख सात्यकि ने उसका पूरी ताक़त से जवाब दिया। दोनों में भयानक युद्ध छिड़ गया। परंतु आचार्य द्रोण के आगे भला सात्यकि कबतक टिकता? सात्यकि की बुरी गत होते देखकर भीमसेन उसकी सहायता को दौड़ा और आचार्य पर बाणों की बौछार कर दी।

इसपर युद्ध और भी जोर पकड़ गया। द्रोण, भीष्म और शल्य, तीनों कौरव-वीर भीमसेन के मुकाबले में आ डटे। यह देखकर शिखंडी ने भीष्म और द्रोण पर तीखे बाणों की झड़ी लगादी। शिखण्डी के मैदान में आते ही भीष्म रंग-भूमि छोड़कर चले गए। भीष्म का कहना था कि शिखंडी चूंकि जन्म से पुरुष नहीं, स्त्री है, इसलिए उसके साथ लड़ना क्षात्र-धर्म के विरुद्ध है।

जब भीष्म मैदान छोड़कर हट गये तो द्रोणाचार्य ने शिखंडी पर हमला कर दिया। महारथी होते हुए भी, द्रोण के आगे शिखंडी ज्यादा देर न टिक सका। विवश होकर द्रोण के आगे से उसे हट जाना पड़ा।

दोपहर तक भीषण संकुल युद्ध होता रहा। दोनों तरफ से सैनिक आपस में गुत्थमगुत्था होकर लड़ने लगे। दोनों तरफ के असंख्य वीर इस युद्ध में बलि चढ़ गये।

तीसरे पहर दुर्योधन ने सात्यकि के विरुद्ध एक भारी सेना भेज दी। सात्यकि ने उस सेना का सर्वनाश कर दिया और भूरिश्रवा को खोजते हुए जाकर उनसे भिड़ गया। किंतु भूरिश्रवा भी साधारण वीर न था। बड़ा पराक्रमी था। सात्यकि की सेना पर जोरों से हमला करके सबको खदेड़ दिया। अकेला सात्यकि अंततक डटा रहा। यह हाल देखकर सात्यकि के दसों पुत्र भूरिश्रवा पर टूट पड़े।

दसों वीर युवकों के हमले का अकेले भूरिश्रवा ने बड़ी वीरता से मुकाबला किया। यद्यपि सात्यकि के दसों बेटों ने उसे घेरकर बाणों की

बौछार कर दी तो भी भूरिश्रवा ने अद्‌भुत चतुरता का परिचय दिया। उन सबके धनुष उसने काट डाले और दसों को एक साथ ही यमपुरी पहुंचा दिया। दसों पराक्रमी वीर जमीन पर धड़ाम से ऐसे गिर पड़े जैसे वज्र गिरने पर पेड़। अपने सारे पुत्रों को यों युद्ध-भूमि में मृत होकर पड़े देखकर सात्यकि मारे शोक और क्रोध के आपे से बाहर होगया और भूरिश्रवा पर झपटा। दोनों के रथ आपस में टकराकर चूर-चूर होगये। तब दोनों ढाल-तलवार लेकर भूमि पर लड़ने लगे। इतने में भीम तेजी से रथ चलाता हुआ सात्यकि के आगे आ खड़ा हुआ और उसे ज़बरदस्ती रथ पर बिठाकर युद्ध-भूमि से बाहर लेआया। भूरिश्रवा तलवार का ऐसा धनी था कि जिसके आगे किसीकी नहीं चलती थी। भीमसेन यह बात भली-भांति जानता था और इसी कारण उसने सात्यकि को भूरिश्रवा से लड़ने से रोक लिया।

उस दिन संध्या होते-होते अर्जुन ने हजारों कौरव-सैनिकों का जीवन समाप्त कर दिया। जितने वीर अर्जुन के विरुद्ध लड़ने के लिए दुर्योधन ने भेजे वे सब ऐसे बेबस होकर मरे जैसे आग में कीड़े। यह देखकर पांडव-सेना के वीरों ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया और ज़ोर का जयजय-कार कर उठे। इतने में सूरज डूबा और भीष्म ने युद्ध बंद करने की आज्ञा दी। थकेथकाये सैनिक अपनी-अपनी छावनी की ओर चले गए।

: ७१ :

छठा दिन

अगले दिन प्रातःकाल युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार सेनापति धृष्टद्युम्न ने पांडव-सेना की मकर-व्यूह में रचना की। उधर क्रौंच-व्यूह में रची हुई कौरव-सेना सामने खड़ी थी।

उन दिनों, सैन्य-व्यूहों के नाम, किसी पशु या पक्षी के-से होते थे। यह तो सब जानते हैं कि व्यायाम के जो आसन प्रचलित हैं, उनके भी नाम

पशु-पक्षियों के नाम पर होते हैं--जैसे मत्स्यासन, गरुड़ासन, इत्यादि। यह भी उसी समय से प्रचलित हुआ है, ऐसा मालूम होता है। सेना-व्यूहों के नाम भी इसी भांति रखे जाते थे।

किसी व्यूह-विशष की रचना करते समय इन बातों का ध्यान रखना पड़ता था कि सेना का फैलाव कैसा हो? विभिन्न सेना-विभागों का बंटवारा कैसा हो? अर्थात् प्रत्येक स्थान पर कौन-सा विभाग किस संख्या में स्थित हो, कौन-कौन से सेना-नायक किन-किन मुख्य स्थानों पर खड़े रह कर सैन्य-संचालन करें, आदि। इन सब बातों को खूब सोच-विचार कर आक्रमण एवं बचाव दोनों प्रकार की कार्रवाइयों की कुशल व्यवस्था रखना ही व्यूह-रचना का उद्देश्य होता था। जिस व्यूह का आकार मगरमच्छ का-सा होता उसका नाम मकर-व्यूह रखा जाता था। क्रौंच, गरुड़ आदि व्यूहों के भी नाम इसी तरह पड़े। उन दिनों के समर-शास्त्र में कई प्रकार के व्यूहों का वर्णन पाया जाता है।

भारत-युद्ध के संचालक योद्धा लोग, जिस दिन जो उद्देश्य साधना हो, उस पर और घटनाओं के रुख पर पहले ही से सोच-विचार कर लेते थे और उसीके अनुसार व्यूह-रचना का निश्चय करते थे।

छठे दिन सवेरे युद्ध छिड़ते ही दोनों तरफ की जन-हानि बड़ी तादाद में होने लगी।

आचार्य द्रोण का सारथी मारा गया। इस पर द्रोण ने स्वयं रास पकड़कर रथ चला लिया और पांडव-सेना में घुस कर ऐसा प्रलय मचाया मानो आग का अंगारा रुई के ढेर को जलाकर राख कर रहा हो।

शीघ्र ही दोनों सेनाओं के व्यूह टूट-फूट गये। इस पर दोनों पक्ष के सेना-समूह बांध तोड़कर निकल पड़े और एक-दूसरे से भिड़ गये। एसी मार-काट मची कि रक्त की नदी-सी बह निकली। सारे युद्ध-क्षेत्र में मरे हुए हाथी-घोड़े, और खेत रहे सैनिकों की लाशों तथा टूटे रथों के बड़े-बड़े ढेर लग गये।

इतने में भीमसेन शत्रु-सैन्य में अकेले घुस गया और दुर्योधन के भाइयों

का वध करने की इच्छा से उन्हें खोजने लगा। शीघ्र ही दुर्योधन के भाइयों ने भीम को आ घेरा। दुःशासन, दुर्विषह आदि ने एक साथ भीमसेन पर चारों ओर से बाणों का वार कर दिया। वायुपुत्र भीम, जिसे भय छू तक न गया था---ऐसे आक्रमण से भला कब विचलित होने वाला था! वह अकेले ही उन सभीके मुकाबले मे डटा रहा। दुर्योधन के भाइयों की इच्छा तो भीमसेन को कैद कर लेने की थी। किंतु भीमसेन की इच्छा उन सबका काम ही तमाम कर डालने की थी! लड़ाई की भयानकता का क्या कहें! ऐसा भयानक संग्राम हुआ कि जैसे देवताओं तथा असुरों के बीच हुआ बतलाते हैं। इतने में अचानक भीमसेन को न जाने क्या सूझा। वह उठ खड़ा हुआ और अपने सारथी विशोक से बोला-- "विशोक! तुम यहीं पर ठहरे रहो, मैं जरा आगे चलता हूं और धृतराष्ट्र के इन दुष्ट पुत्रों का काम तमाम करके लौटूंगा। मैं न लौटूं, तबतक तुम यहीं पर खड़े रहना।" यह कहकर भीमसेन हाथ में गदा लेकर रथ पर से कूद पड़ा और शत्रु-दल के बीच में जा घुसा। घोड़ों, सवारों एवं रथों को चकनाचूर करता हुआ वायुपुत्र भीमसेन दुर्योधन के भाइयों की ओर इस प्रकार बढ़ रहा था, मानो कराल काल हाथ मे दंड लिये घूम रहा हो।

धृष्टद्युम्न ने जब भीमसेन को रथ पर चढ़कर शत्रु-सेना मे घुसते देखा तो वेग से उसका पीछा किया। अंत में भीम के रथ को एक जगह खड़ा देखा। पर वहां रथ पर अकेला सारथी ही था, भीमसेन न था। वह चौंक पड़ा और अज्ञात आशंका से उसका दिल धड़कने लगा। रथ के पास जाकर सारथी से पूछने लगा--

"विशोक! मेरे प्राणप्रिय भीमसेन कहां गये?"

सारथी विशोक ने द्रुपद राजकुमार को नमस्कार करके निवेदन किया, "सेनापते! पांडु-पुत्र मुझे यहां पर ठहरने की आज्ञा देकर आप हाथ में गदा लिये इसी सेना-समुद्र में कूद पड़े हैं और धृतराष्ट्र के पुत्रों की खोज में हैं। आगे का हाल तो मुझे मालूम नहीं।"

यह सुन धृष्टद्युम्न शंकित हो उठा। उसे भय हुआ कि कहीं सारे

कौरव-पुत्र एक साथ मिलकर भीमसेन पर हमला न कर दें। यह सोच पांडव-सेनापति स्वयं भी शत्रु-सेना में घुस पड़ा। भीमसेन की गदा की मार से जो हाथी-घोड़े मरे पड़े थे, उन्हीं के द्वारा भीम का पता लगाता हुआ धृष्टद्युम्न आगे बढ़ा।

दूर शत्रुओं के समूह में भीमसेन दिखाई दिया। धृष्टद्युम्न ने देखा कि भीमसेन हाथ में गदा लिये भूमि पर खड़ा है। उसकी लाल-लाल आंखों से मानो चिनगारियां निकल रही हैं, सारा शरीर घावों से भरा है। शत्रु-दल के रथारूढ़ वीर, भीमसेन को चारों तरफ से घेरे हुए बाणों की बौछार कर रहे हैं। यह देखकर धृष्टद्युम्न का हृदय अभिमान एवं श्रद्धा से भर आया। वह रथपर से कूद पड़ा और दौड़कर भीम को छाती से लगा लिया और खींचकर अपने रथ पर बिठा लिया। फिर उसके शरीर पर लगे बाणों को एक-एक करके निकालने लगा।

यह देख दुर्योधन ने अपने सैनिकों से कहा—"देखते क्या हो? द्रुपद-कुमार और भीमसेन पर हमला बोल दो। भले ही वे चुनौती स्वीकार करें या न करें। दोनों में से कोई बचने न पावे।" यह सुनते ही कितने ही कौरव-वीर एक साथ उन दोनों पर टूट पड़े। भीम और धृष्टद्युम्न ने न तो चुनौती दी, न स्वीकार ही की। वे युद्ध करने को प्रस्तुत न हुए। फिर भी कौरव-वीर उन पर बाण बरसाते रहे।

यह देख धृष्टद्युम्न से न रहा गया। उसने कौरवों पर मोहनास्त्र का प्रयोग किया जिससे वे सब अचेत हो गये। (धृष्टद्युम्न ने मोहनास्त्र का प्रयोग द्रोणाचार्य से सीखा था।) इतने में दुर्योधन वहां आ पहुंचा। उसने मोहनास्त्र के प्रभाव को दूर करने वाला अस्त्र चलाया। उसके प्रयोग से सारे कौरव-वीर फिर जाग्रत हो उठे और दुर्योधन ने सबको उत्साहित करके धृष्टद्युम्न पर जोरों से आक्रमण कर दिया।

इतने में युधिष्ठिर ने वीर अभिमन्यु के सेनापतित्व में भीमसेन और धृष्टद्युम्न की सहायता के लिए सेना भेज दी। अभिमन्यु ठीक समय पर अपनी सेना के साथ धृष्टद्युम्न की मदद पर जा पहुंचा।

यह मदद पहुंच जाने पर धृष्टद्युम्न बड़े उत्साह के साथ लड़ने लगा। इधर भीमसेन भी ज़रा विश्राम करके कैकय-राज के रथ पर आरूढ़ होकर कौरवों पर भीषण प्रहार करने लगा। इतना सब होने पर भी द्रोण के पराक्रम एवं उग्रता के आगे भीमसेन आदि की वीरता फीकी-सी पड़ जाती थी। आचार्य द्रोण ने द्रुपद कुमार के सारथी और घोड़ों को मार डाला और उसके रथ को चकनाचूर कर दिया। इस पर धृष्टद्युम्न अभिमन्यु के रथ पर जा चढ़ा और अविचलित भाव से अपना युद्ध जारी रक्खा। पर अंत मे द्रोण ने वह तबाही मचाई कि पांडव-सेना के पांव उखड़ गये। पांडव सैनिकों के हृदय कांप उठे।

इसके बाद तो अंधाधुंध संकुल युद्ध होने लगा। असंख्य वीर और सैनिक मारे गये। दुर्योधन और भीमसेन के भी दो-दो हाथ हुए। दोनों ने पहले तो वाक्-बाणों का एक दूसरे पर प्रहार किया। फिर हथियारों की लड़ाई हुई। दोनों वीर रथों पर आरूढ़ होकर एक-दूसरे पर भीषण शस्त्र-प्रहार करने लगे। अंत मे दुर्योधन बुरी तरह घायल हुआ और बेहोश होकर रथ पर गिर पड़ा। तब कृपाचार्य ने बड़ी चतुराई से उसे अपने रथ पर ले लिया जिससे दुर्योधन की जान बच गई। उसी समय भीष्म उधर आ पहुंचे और कौरव-सेना का संचालन आप ही करने लगे। उन्होंने पांडव-सेना को तितर-बितर कर दिया। बड़ी देर तक इसी प्रकार तुमुल युद्ध होता रहा, यहांतक कि पश्चिमी आकाश लाल हो चला। सूरज डूबा ही चाहता था। फिर भी कुछ मुहूर्त्त तक युद्ध जारी ही रहा।

सूर्यास्त के बाद युद्ध समाप्त हुआ। आज का युद्ध इतना भयंकर था कि धृष्टद्युम्न और भीमसेन के सकुशल शिविर में लौट आने पर युधिष्ठिर ने बड़ा आनंद मनाया। उनकी खुशी की सीमा न थी।

: ७२ :

सातवां दिन

दुर्योधन का सारा शरीर घावों से भरा था। असह्य पीड़ा हो रही थी। पितामह भीष्म के पास जाकर वह बड़ा झल्लाया और बोला--"पितामह! प्रतिदिन पांडवों की ही जीत होती जा रही है। वे ही हमारे व्यूह को तोड़ते और हमारे वीरों को मौत के घाट उतारते जा रहे है, फिर भी न जाने आप क्यों कुछ करते-धरते नहीं ?"

दुर्योधन को सांत्वना देते हुए भीष्म ने उत्तर दिया--

"बेटा दुर्योधन! द्रोणाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, विकर्ण, भगदत्त, शकुनि, राजा सुशर्म, मगध नरेश, कृपाचार्य और स्वयं मुझ जैसे महारथी लोग जब तुम्हारी खातिर प्राणों तक की बलि चढ़ाने को तैयार हैं तो फिर तुम्हें चिंता काहे की? धीरज धरो, भगवान् सब ठीक ही करेंगे।" यह कहकर भीष्म सेना की व्यूह-रचना में लग गये।

जब व्यूह-रचना हो चुकी तो भीष्म बोले-- "राजन्! अपनी इस सेना को तो देखो! हजारों की सख्या मे रथ-घोड़े, घुड़-सवार, उत्तम हाथी, देश-विदेश से आये हुए शस्त्र-धारी सैनिक आदि से सज्जित इस विराट-सेना से मनुष्यों की कौन कहे, देवताओं तक को परास्त किया जा सकता है, फिर भय किस बात का ?"

यह कह कर भीष्म ने दुर्योधन को एक ऐसा लेप दिया, जिसके लगाने से दुर्योधन के सारे घाव ठीक हो गये और वह फिर से ताजा हो उठा। इससे दुर्योधन का साहस एवं उत्साह बढ़ गया और वह खुशी-खुशी फिर लड़ने को तत्पर हो गया।

उस दिन कौरवों की सेना का व्यूह मंडलाकार रचा गया। एक-एक

हाथी के निकट सात-सात रथ खड़े थे। हरेक रथ की रक्षा के लिए सात घुड़-सवार सैनिक नियुक्त थे। एक-एक घुड़-सवार का सात-सात धनुर्धारी वीर साथ दे रहे थे। एक-एक धनुर्धारी वीर का बचाव करने को दस-दस वीर ढाल लिये खड़े थे। सभी वीर अभेद्य कवच पहने हुए थे। इस सुसज्जित, विशाल सेना-समूह के बीच में, अपने रथ पर खड़ा दुर्योधन ऐसे शोभायमान हुआ, जैसे देवताओं की सेना में देवराज इंद्र।

उधर युधिष्ठिर ने पांडवों की सेना को 'वज्र-व्यूह' में रचवाया। उस दिन का युद्ध केंद्रित न था, बल्कि कई मोर्चों पर व्याप्त था। प्रत्येक मोर्चे पर विख्यात वीरों में घमासान युद्ध होता रहा। एक मोर्चे पर अर्जुन के विरुद्ध स्वयं भीष्म डटे हुए थे। एक स्थान पर द्रोणाचार्य और विराट-राज में भीषण युद्ध हो रहा था। दूसरे एक मोर्चे पर शिखंडी और अश्वत्थामा में लड़ाई हो रही थी। एक जगह धृष्टद्युम्न और दुर्योधन भिड़े हुए थे। एक ओर नकुल और सहदेव अपने मामा शल्य पर बाण बरसा रहे थे। दूसरी ओर अवंति के दोनों राजा युधामन्यु से लड़ते दिखाई दे रहे थे। एक मोर्चे पर दुर्योधन के चार भाइयों की अकेला भीमसेन खबर ले रहा था तो दूसरे मोर्चे पर घटोत्कच और भगदत्त में भयानक द्वंद्व छिड़ा हुआ था। किसी और मोर्चे पर अलम्बुष और सात्यकि की टक्कर थी, तो कहीं दूर पर भूरिश्रवा धृष्टद्युम्न का मुकाबला कर रहे थे। युधिष्ठिर का श्रुतायु के साथ द्वंद्व हो रहा था, जबकि कृपाचार्य और चेकितान एक दूसरे मोर्चे पर भिड़ रहे थे।



द्रोणाचार्य के साथ हुई लड़ाई में विराटराज को हार खानी पड़ी। उनका रथ, सारथी और घोड़े सब नष्ट हो गये। इस पर विराटराज अपने पुत्र शंख के रथ पर चढ़ गये। विराट-कुमार उत्तर एवं श्वेत, पहले ही दिन की लड़ाई में काम आ चुके थे। सातवें दिन के युद्ध में तीसरे कुमार शंख ने पिता के देखते-देखते प्राण त्याग दिये।

उधर शिखंडी के रथ को अश्वत्थामा ने तोड़-फोड़ डाला। इस पर

शिखंडी जमीन पर कूद पड़ा और ढाल-तलवार लेकर अश्वत्थामा पर झपटा, किंतु अश्वत्थामा ने बाणों की बौछार से उसकी तलवार के टुकड़े कर दिये। पर अपनी टूटी तलवार ही शिखंडी ने बड़े जोर से घुमा कर अश्वत्थामा पर फेंक मारी। अश्वत्थामा ने कुशलता से एक बाण ऐसा निशाना ताक कर मारा कि वेग के साथ आ रही तलवार रास्ते में ही कट गिरी। शिखंडी बुरी तरह घायल हुआ और सात्यकि के रथ पर चढ़कर मैदान छोड़ कर भाग गया।

राक्षस अलम्बुष और सात्यकि में जो युद्ध हुआ, उसमें पहले सात्यकि की बड़ी बुरी गत हुई। किंतु थोड़ी ही देर में वह संभल गया और राक्षस अलंबुष की बुरी तरह खबर ली। अलम्बुष हारकर उल्टे पांव भाग खड़ा हुआ।

दुर्योधन के रथ के घोड़े धृष्टद्युम्न के बाणों के बुरी तरह शिकार हुए। इस पर दुर्योधन हाथ में खड्ग लेकर मैदान में कूद पड़ा और धृष्टद्युम्न की ओर झपटा। किंतु शकुनि ने बीच में पड़कर दुर्योधन को रथ पर बिठा लिया और युद्ध-भूमि से हटा लिया।

अवंती के दोनों भाई—विंद और अनुविंद युधामन्यु के विरुद्ध लड़े और हार गये। उनकी सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट हो गई।

वृद्ध भगदत्त हाथी पर सवार होकर घटोत्कच से लड़ा और उसकी सारी सेना को तितर-बितर कर दिया। अकेला घटोत्कच अंत तक डटा रहा। भयानक युद्ध हुआ और अंत में घटोत्कच हारकर मैदान छोड़ भाग खड़ा हुआ। भगदत्त की इस विजय पर कौरव-सेना में बड़ी खुशी मनाई गई।

एक दूसरे मोर्चे पर मद्रराज शल्य, अपने भानजों नकुल और सहदेव से लड़ रहा था। नकुल के रथ के घोड़े मारे गये। वह तुरंत सहदेव के रथ पर सवार होकर मामा शल्य पर बाण चलाने लगा। सहदेव के चलाये पैने बाणों से शल्य मूच्छित हो गया। शल्य का यह हाल देखकर उसके सारथी ने बड़ी चतुराई से अपने रथ को वहांसे हटा लिया जिससे शल्य के प्राणों की रक्षा हो गई। कौरव-सेना ने जब देखा कि स्वयं राजा शल्य

मैदान छोड़ कर भाग रहे हैं तो उसमें घबराहट फैल गई। माद्री पुत्रों ने विजय-शख बजाते हुए शल्य की सेना को तहस-नहस कर दिया।

दोपहर को युधिष्ठिर और श्रुतायु में ज़ोर का युद्ध होने लगा। युधिष्ठिर का रथ श्रुतायु के रथ की ओर बढ़ा। जाते-जाते युधिष्ठिर ने श्रुतायु पर कई बाण चलाये। श्रुतायु ने उन सब बाणों को रोका ही नहीं, बल्कि सात तीखे बाण युधिष्ठिर पर खींच कर मारे, जिससे युधिष्ठिर का कवच टूट गया और वह घायल हो गये। इस पर युधिष्ठिर को बड़ा क्रोध आगया और उन्होंने एक बड़ा भयानक बाण श्रुतायु की छाती पर मारा। उस दिन युधिष्ठिर अपने स्वाभाविक शांत-भाव से रहित-से हो गये और क्रोध के कारण प्रज्वलित हो उठे। अंत मे श्रुतायु अपने रथ, घोड़े और सारथी से हाथ धो बैठा और घायल होकर लड़ाई का मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ। इस पर दुर्योधन की सेना में खलबली मच गई। सैनिक घबराहट में पड़ गये। इस घटना के बाद तो दुर्योधन की सेना का साहस और टूट गया और सैनिकों में भय छा गया।

राजा चेकितान कृपाचार्य के साथ लड़ने लगा। कृपाचार्य ने चेकितान के सारथी को मार डाला और रथ को भी चकनाचूर कर दिया। इस पर चेकितान, खड्ग लेकर जमीन पर कूद पड़ा और कृपाचार्य के घोड़ों और सारथी को मार डाला। तब आचार्य कृप भी रथ से उतरे और पृथ्वी पर ही खड़े हो चेकितान पर कई बाण चलाये। उन बाणों के प्रहार से चेकितान बहुत ही परेशान हो गया और तब क्रोध में आकर कृपाचार्य पर अपनी गदा वेग से घुमा कर फेंकी; परंतु कृपाचार्य ने उसे भी बाणों से काट दिया। इस पर चेकितान तलवार घुमाता हुआ कृपाचार्य पर झपटा। कृपाचार्य ने भी तुरंत धनुष फेंक दिया और खड्ग लेकर तैयार हो गये। दोनों में घात-प्रतिघात होता रहा। अंत में दोनों ही घायल होकर गिर पड़े। भीमसेन चेकितान को और शकुनि कृपाचार्य को अपने-अपने रथ पर बिठाकर शिविर में लेगये।

धृष्टकेतु ने छियानवें बाण भूरिश्रवा की छाती पर ताक कर चलाये।

सभी बाण निशाने पर जा लगे। उस समय भूरिश्रवा उन बाणों के साथ ऐसे देदीप्यमान हुए, जैसे सूर्य अपनी किरणों से सुशोभित होते हैं। ऐसे में भी भूरिश्रवा धृष्टकेतु के पीछे बुरी तरह पड़ गये और उसे युद्ध-भूमि से खदेड़ कर छोड़ा।

दुर्योधन के तीन भाई अभिमन्यु के साथ लड़ कर बुरी तरह हारे। अभिमन्यु चाहता तो उनके प्राण ले लेता। किंतु उसे भीमसेन की प्रतिज्ञा याद थी। इस कारण उनको जीवित छोड़कर दूसरी ओर को हट गया। इतने में पितामह भीष्म अभिमन्यु से भिड़ पड़े। अर्जुन ने जब यह देखा तो श्रीकृष्ण से बोला—"सखे! मैं भीष्म पर हमला करना चाहता हूं। आप उधर को ही रथ चलाइये।"

अर्जुन के वहां पहुंचते ही उसके और भाई भी वहां आ पहुंचे। अकेले भीष्म पांचों पांडवों का सामना करने लगे। पर यह युद्ध अधिक देर नहीं चला। सूरज अस्त होने लगा और युद्ध बन्द हुआ। दोनों पक्ष के सैनिक और वीर थके-मांदे, घावों की पीड़ा से तड़पते व कराहते हुए अपने शिविरों मे जा पहुंचे।

दोनों तरफ़ के वीरों ने अपने-अपने शरीर पर लगे बाण निकाले और घावों को वैद्यक-रीति के अनुसार पानी से धो कर औषधि लगाई और थोड़ा विश्राम करने लगे। कुछ देर मन-बहलाव के लिए संगीत और वाद्य का आनंद लेने लए। दोनों ओर के सैनिक उस आनंद में इतने लीन हो गये कि युद्ध की चर्चा तक भूल गये।

: ७३ :

आठवां दिन

आठवें दिन सवेरे भीष्म ने कौरव सेना की व्यूह-रचना कछुए की शकल से की। इस पर युधिष्ठिर धृष्टद्युम्न से बोले—"कौरवों के कूर्म-व्यूह को

देखकर अपने सैन्य की व्यूह-रचना इस तरह करो कि जिससे शत्रु-व्यूह को तोड़ा जा सके। जल्दी इसकी व्यवस्था होनी चाहिए।

तब धृष्टद्युम्न ने पांडवों की सेना की तीन शिखरों (चोटियों) वाले व्यूह में रचना की। इस व्यूह के एक सिरे पर भीमसेन और दूसरे सिरे पर सात्यकि अपनी-अपनी सेनायें लेकर मुस्तैदी से खड़े होगए। बीच वाले सिरे पर स्वयं युधिष्ठिर खड़े रहे।

सामरिक कला में हमारे पूर्वजों को काफी प्रवीणता प्राप्त थी। लड़ने के तौर-तरीकों के बारे में यद्यपि कोई सुविस्तृत शास्त्र तो नहीं रचा गया तो भी प्रायः सभी क्षत्रियों को उनका परंपरागत ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त होता चला आता था। शत्रु पक्ष के अस्त्र-शस्त्र तथा उन शस्त्रों की शक्ति इत्यादि बातों को देखते हुए, उस समय की प्रचलित युद्ध-पद्धति के अनुसार, उन दिनों के राजा लोग, अपने अस्त्र-शस्त्रों एवं तौर-तरीकों में आवश्यक परिवर्त्तन और परिवर्द्धन भी समय-समय पर कर लेते थे।

कुरुक्षेत्र के युद्ध को हुए कई हजार वर्ष हो चुके है। अतः महाभारत मे जिस युद्ध का वर्णन है, उसकी आजकल के युद्ध की कार्रवाइयों के साथ तुलना करके उसे कोरी कल्पना ठहरा देना या निरर्थक बतंगड़ समझना उचित नहीं। अभी डेढ़ ही सौ साल हुए, इंग्लैंड के वीर नेलसन ने अपनी सुप्रसिद्ध नौ-सेना को लेकर फ्रांसीसियों के छक्के छुड़ा दिये थे। किंतु यदि उसी विजेता नेलसन के जहाजों और हथियारों की तुलना आजकल की नौ-सेना व हथियारों से की जाय तो उसके समय की लड़ाइयां विलक्षण ही प्रतीत होंगी! यदि डेढ़ ही सौ बरस के पहले की परिस्थिति यह थी तो भारत-युद्ध के समय की बात तो पूछना ही क्या है!

एक बात और भी है, जिसे हमें ध्यान में रखना चाहिए। युद्ध को ही विषय बनाकर जो काव्य या आख्यान-ग्रंथ रचा जाय, उससे युद्ध की कार्रवाइयों एवं विभिन्न हथियारों का प्रामाणिक विवरण तथा व्याख्या की आशा नहीं की जा सकती। हमारे यहां प्राचीन काल में युद्ध के जो तौर-तरीके और पद्धति प्रचलित थी, वह क्षत्रियोचित संस्कृति का ही एक अंग

मानी जाती थी। युद्ध के तौर-तरीकों के रहस्य एवं गति-विधि का ज्ञान उन्हीं लोगों तक सीमित रहा जिनका उनसे काम पड़ता था। कवियों या ऋषियों के रचित ग्रंथों में उन पद्धतियों की व्याख्या या विवरण नहीं पाये जा सकते। आजकल के किसी गल्प या उपन्यास में कहीं किसी रोग के इलाज का जिक्र हो तो लेखक से इस बात की तो आशा नहीं की जाती कि वह इलाज का पूरा विवरण, दवाओं की फेहरिस्त के साथ देता जाय। यदि दे भी तो बड़ा बेतुका-सा होगा! ठीक इसी तरह व्यासजी से भी युद्ध-प्रणाली के पूरे शास्त्र की आशा रखना सर्वथा अनुचित होगा।

"मकर-व्यूह क्या चीज होती है? कूर्म-व्यूह किसे कहते हैं? शृंगाटक होता क्या है? बाणों की बौछार से अपने चारों तरफ किला-बंदी कर लेना कैसे हो सकता था? शरीर के बाणों से बिंध जाने पर भी कैसे जीवित रहा जाता था? कवचों से वीरों की कहांतक रक्षा होती थी?" इत्यादि बातों का विवरण व्यासजी ने अपने ग्रंथ में इस ढंग से नहीं दिया है जिससे आजकल के पाठकगण उसे समझ सकें। जितना विवरण उन्होंने दिया है वही उनकी विशेष प्रतिभा का द्योतक है।



आठवें दिन का युद्ध शुरू हुआ तो पहले ही धावे में भीमसेन ने धृतराष्ट्र के आठ बेटों का वध कर दिया। यह देखकर दुर्योधन का हृदय विदीर्ण होगया। कौरव-सेना के लोग डरे कि कहीं भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा आज ही न पूरी करदें।

उस दिन एक ऐसी घटना हुई जिससे अर्जुन शोक-विह्वल हो उठा। उसका लाड़ला बेटा और साहसी वीर इरावान, जो एक नागकन्या से पैदा हुआ था, उस दिन खेत रहा। वीर इरावान पांडवों की सहायता के लिए आया हुआ था और उसने ऐसी कुशलता से युद्ध किया था कि सारी कौरव-सेना में भारी तबाही मच गई थी। यह देखकर दुर्योधन ने राक्षस वीर अलंबुष को इरावान के विरुद्ध लड़ने के लिए भेजा। दोनों में बड़ी देर तक घोर संग्राम होता रहा। अंत में राक्षस के हाथों इरावान मारा गया।

अर्जुन को जब इस बात की खबर मिली तो यह दुःख उससे सहा नहीं गया। भरी हुई आवाज में श्रीकृष्ण से बोला--"वासुदेव! चाचा विदुर ने पहले ही कहा था कि दोनों पक्ष वालों को युद्ध से दुःसह दुःख प्राप्त होगा। धिक्कार है हमें, जो सिर्फ संपत्ति के अर्थ ऐसे निकृष्ट कार्य करने पर उतारू हो गए हैं! इस भारी हत्याकांड के परिणामस्वरूप हम या वे (कौरव) न जाने कौनसा सुख प्राप्त करेंगे? मधुसूदन, अब मैंने जाना कि भाई युधिष्ठिर ने क्यों दुर्योधन से अनुरोध किया था कि कम-से-कम पांच गांव देकर ही संधि करलें। सचमुच उन्होंने दूर की सोची थी। किंतु मूर्ख दुर्योधन ने पांच गांव भी देने से इन्कार कर दिया, जिससे अब दोनों पक्षों में ये जो पाप-कर्म हो रहे हैं--उन सबका वही कारण बना। यदि मैं इस युद्ध में भाग ले रहा हूं तो वह केवल इसी लिए कि लोग यह कह कर मेरी निंदा न करें कि यह कायर है, डरपोक है!

"जब मैं युद्ध-क्षेत्र में पड़े हुए इन क्षत्रियों को देखता हूं तो मेरा हृदय गरम हो उठता है। धिक्कार है हमारे जीवन को, जो अधर्म की ही भित्ति पर स्थित है!"



भीमसेन के पुत्र घटोत्कच ने जब देखा कि इरावान मारा गया तो उसने इतने जोर से गर्जना की कि सारी सेना सुनकर थरथरा उठी और उसके बाद वह कौरव-सेना पर टूट पड़ा और घोर प्रलय मचाने लगा। कई स्थानों पर घबराहट के मारे सेना बिखर गई। यह हाल देखकर स्वयं दुर्योधन घटोत्कच के मुकाबले में आगया।

दुर्योधन का साथ देने के लिए वंग-नरेश भी अपनी गज-सेना के साथ उधर ही जा पहुंचे। दुर्योधन ने बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया और घटोत्कच की सेना के कितने ही वीरों को मार गिराया। इस पर घटोत्कच को बड़ा क्रोध हो आया। उसने दुर्योधन पर शक्ति नामक हथियार का प्रयोग किया। उसके प्रहार से तो दुर्योधन मारा ही जाता। पर वंग-नरेश ने अपना हाथी बीच में डालकर उसको बड़ी खूबी से बचा लिया। दुर्योधन के बजाय

हाथी घटोत्कच की शक्ति की भेंट चढ़ गया।

इसी बीच में भीष्म को पता लग गया कि दुर्योधन संकट में है। तो उन्होंने आचार्य द्रोण के नेतृत्व में एक भारी सेना दुर्योधन की सहायता के लिए भेज दी। कुमुक पहुंच जाने पर कई सुविख्यात कौरव-वीरों ने घटोत्कच पर एक साथ हमला कर दिया।

उस समय जो गर्जन चारों दिशा में हुआ उससे युधिष्ठिर को मालूम होगया कि घटोत्कच पर कोई आफत आई है। उन्होंने तत्काल भीमसेन को घटना-स्थल पर भेज दिया। भीमसेन के आजाने पर तो युद्ध की भयानकता और भी अधिक होगई। पर जल्दी ही सूर्यास्त होगया और युद्ध भी बंद हुआ।

: ७४ :

नवां दिन

नवें दिन का युद्ध शुरू होने से पहले दुर्योधन भीष्म के पास गया और हमेशा की तरह जलीकटी सुनाकर उनके हृदय पर मानो भालों का प्रहार-सा करने लगा। पितामह को इससे पीड़ा तो बहुत हुई; परंतु फिर भी उन्होंने धीरज न छोड़ा। वे बोले—

"बेटा, तुम्हारी ही खातिर यथाशक्ति प्रयत्न कर रहा हूं और युद्ध मे अपने प्राणों तक की आहुति देने को प्रस्तुत हूं। फिर भी तुम इस बूढ़े को इस प्रकार जब-तब क्लेश क्यों पहुंचाते हो? उचित और अनुचित का कुछ खयाल किये बिना तुम जो ये कटु वचन कह रहे हो, सो क्यों? मुझे ऐसा लगता है कि विनाश का समय निकट आजाने पर हरा भी पीला ही दीख पड़ता है। तुम्हारी इन बातों से भी ऐसा ही मालूम देता है। तुम्हें भी हित में अहित का भ्रम हो रहा है और सब उलटा ही सूझ रहा है। जानबूझ कर अपनी ही इच्छा से तुमने जो वैर मोल लिया उसका परिणाम अब तुम्हें

भुगतना पड़ रहा है। इस परिस्थिति में धर्म एवं कर्तव्य की दृष्टि से तुम्हारे लिए अब उचित यही है कि पौरुष एवं शौर्य से काम लो और निर्भय होकर युद्ध करो। मैं क्षत्रिय हूं। शिखंडी के विरुद्ध मुझसे लड़ा नहीं जायगा। एक स्त्री का वध करना मुझसे नहीं हो सकता। न ही मैं पांडवों की हत्या अपने हाथों से करने पर राजी हूंगा। बस, ये मेरे दृढ़ विचार हैं। इन दो को छोड़कर और चाहे किसीसे भी मुझे लड़ने भेज दो। मैं पीछे नहीं हटूंगा। दूसरे सारे क्षत्रिय वीरों से खुले दिल से लड़ने को मैं प्रस्तुत हूं। तुम्हें भी यही शोभा देता है कि अविचलित होकर क्षत्रियोचित वीरता के साथ युद्ध करो और दूसरों को दोष देना छोड़ो।"

भीष्म ने इस प्रकार दुर्योधन को उपदेश और सैन्य की व्यूह रचना के बारे में आवश्यक सूचनाएं देकर बिदा किया।

दुर्योधन का क्षुब्ध हृदय भीष्म की बातें सुन कर कुछ शांत हुआ। दुःशासन को बुला कर बोला—"भैया! आज हमें अपनी सारी शक्ति और सैन्यबल युद्ध में लगाना होगा। पितामह भीष्म के आश्वासन पर मुझे पूरा भरोसा है। वे सच्चे हृदय से हमारे लिए लड़ रहे हैं। उनको यदि आपत्ति है तो शिखंडी से लड़ने भे ही। कहते हैं कि शिखंडी के विरुद्ध लड़ना उनकी प्रतिज्ञा के विरुद्ध होगा। अतः हमें और किसीकी चिंता भी नहीं। केवल इसी बात की व्यवस्था खूब सतर्कता से करनी चाहिए कि शिखंडी पितामह के सामने न आने पावे। गाफिल सिंह का जंगली कुत्ता भी वध कर सकता है।"



नवे दिन के युद्ध में अभिमन्यु और अलंबुष मे घोर संग्राम छिड़ गया। धनंजय के पुत्र ने पिता की ही भांति रण-कौशल का परिचय दिया। अलंबुष का रथ चूर हो गया। उसे युद्ध-क्षेत्र से जान लेकर भागना पड़ा।

दूसरी तरफ सात्यकि अश्वत्थामा से भिड़ा हुआ था। द्रोण की अर्जुन से थोड़ी देर लड़ाई रही। उसके बाद सभी पांडव वीरों ने पितामह पर एक साथ हमला कर दिया। भीष्म की रक्षा के लिए दुर्योधन ने दुःशासन को

भेज दिया। भीष्म ने अद्भुत पराक्रम से लड़कर पांडवों के सारे प्रयत्न बेकार कर दिये। पांडवों की सेना की पितामह ने उस दिन तो बड़ी दुर्गत की। वन में भूली-भटकी फिरने वाली गायों की भांति पांडव-सैनिकों की भी बड़ी दीन और दयनीय अवस्था हो गई।

यह देखकर श्रीकृष्ण ने रथ रोक लिया और अर्जुन से बोले-- "पार्थ! जिस अवसर की प्रतीक्षा में तुम भाइयों ने तेरह वर्ष बिताए वह अवसर अब हाथ आया है। क्षत्रिय-धर्म को स्मरण कर लो और भीष्म को मारने में आगा-पीछा न करो।"

यह सुन कर अर्जुन ने सर झुका लिया और बोला-- "पूजने योग्य आचार्यों और पितामह की हत्या करने से वनवास करना ही श्रेयस्कर था। फिर भी आपका कहा मानता हूं। रथ चलाइए।"

अर्जुन ने अनमने होकर यह कहा और चिंतित भाव से लड़ने लगा। किंतु भीष्म तो ऐसे प्रकाशमान हो रहे थे जैसे दुपहरी का सूर्य!

अर्जुन का रथ जब भीष्म की ओर बढ़ा तो पांडव-सेना में उत्साह की लहर दौड़ गई। वीरों में पुनः साहस आगया। पर भीष्म ने अर्जुन के रथ पर बाणों की ऐसी वर्षा की कि जिससे सारा रथ ही बाणों के अंधकार में मानो छिप गया। न तो अर्जुन दिखाई देता था, न श्रीकृष्ण। न रथ दिखाई देता था, न घोड़े। फिर भी श्रीकृष्ण जरा भी न घबराए। अविचलित भाव से सतर्कता के साथ रथ चलाते रहे। अर्जुन के बाणों ने कई बार भीष्म के धनुष को काट-काट कर गिरा दिया। हर बार भीष्म अर्जुन के कौशल की सराहना करते और दूसरा धनुष उठा लेते और फिर अर्जुन और श्रीकृष्ण पर बाण चलाते, यहांतक कि अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों को बड़ी पीड़ा हुई।

इस पर कृष्ण झुंझला कर अर्जुन से यह कहते हुए कि 'तुम ठीक तरह से नहीं लड़ते हो' और कुपित से होकर रथ से उतर पड़े और हाथ में चक्र लेकर भीष्म पर झपटे।

क्रोध में भरे श्रीकृष्ण को अपनी ओर आते हुए देख भीष्म पितामह

उनका स्वागत करते हुए बोले-- "भगवान् कृष्ण ! स्वागत हो ! तुम्हारे हाथों मारा जाकर मैं अवश्य ही स्वर्ग प्राप्त करूंगा ।"

इतने में अर्जुन दौड़कर श्रीकृष्ण के पास पहुंचा और दोनों हाथों से उन्हें कसकर पकड़ लिया । बोला-- "केशव ! आपने शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की है ! अपना वचन आप न तोड़िये । पितामह को बाणों से मार गिराने का काम मेरा है । मैं ही इसे पूरा करूंगा । आप चलिये । मेरा रथ चलाते रहिए । मेरे लिए यही बहुत है ।"

यह सुन वासुदेव फिर रथ पर चढ़ गए और उसे चलाने लगे ।

भीष्म ने फिर से युद्ध शुरू किया । पांडवों की सेना की बड़ी बुरी गत बनी । सैनिक बहुत पीड़ित हो रहे थे । थोड़ी देर में सूर्यास्त हुआ और उस दिन का युद्ध बंद कर दिया गया ।

: ७५ :

भीष्म का विछोह

दसवें दिन का युद्ध शुरू हुआ । आज पांडवों ने शिखंडी को आगे किया था । आगे-आगे शिखंडी और उसके पीछे अर्जुन । शिखंडी की आड़ में अर्जुन ने पितामह के ऊपर खूब बाण बरसाये । आज भीष्म का तेज ऐसा प्रखर हो रहा था मानो ग्रीष्म में मध्याह्न का सूर्य ।

शिखंडी के बाणों ने वृद्ध पितामह का वक्ष-स्थल बेध डाला । क्षण भर के लिए भीष्म की आंखों से मानो चिंगारियां निकलीं । ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनकी अग्निमय दृष्टि ही शिखंडी को जलाकर राख कर देगी; परंतु पल भर बाद ही भीष्म का क्रोध शांत हो गया ।

उन्होंने अपने को संभाल लिया और यह सोचकर कि जीवन-संध्या हुआ ही चाहती है, वे कुछ देर शिखंडी का प्रतिरोध किये बिना मूर्त्तिवत् खड़े रहे । यह दृश्य देखकर सब अंचभे में आगये । देवता तक विस्मित

हो उठे।

पर भीष्म के मन की बातें शिखंडी क्या जानता? वह तो बाण-पर-बाण बरसाये ही जा रहा था। भीष्म ने अपने मुंह पर जरा भी बल न आने दिया और शिखंडी के बाणों का प्रत्युत्तर नहीं दिया। अर्जुन ने जब यह देखा कि पितामह प्रतिरोध नहीं कर रहे तो जरा जी कड़ा करके भीष्म के मर्म-स्थानों को लक्ष्य करके तीखे बाणों से बींधना शुरू किया। भीष्म का सारा शरीर बिंध गया। पर इतने पर भी उनका मुख मलिन न हुआ। वे मुस्कराते हुए पास ही खड़े दुःशासन से कहने लगे—"देखो, ये बाण अर्जुन के हैं, शिखंडी के नहीं। जैसे केकड़ी के शरीर को उसके बच्चे ही फाड़ देते हैं, उसी प्रकार अर्जुन के ये बाण मेरे शरीर को बींध रहे हैं।" अपने प्यारे शिष्य के चलाये बाणों के प्रति भी पितामह की इस प्रकार की कोमल भावना ही थी।

भीष्म ने शक्ति-अस्त्र अर्जुन पर चलाया। अर्जुन ने उसे तीन बाणों से काट गिराया। अब भीष्म को यह निश्चय होगया कि आज का युद्ध उनका आखिरी युद्ध होगा। इस कारण वे हाथ में ढाल-तलवार लेकर रथ से उतरने लगे। इतने में अर्जुन के चलाये बाणों से उनकी ढाल के टुकड़े-टुकड़े होगए। अर्जुन का बाण बरसाना जारी था। उसके बाणों ने पितामह के शरीर पर उंगली रखने को भी जगह न छोड़ी थी। पितामह के सारे शरीर पर बाण-ही-बाण चुभ गये थे। और ऐसी अवस्था में ही भीष्म रथ से सिर के बल जमीन पर गिर पड़े। भीष्म के गिरने पर आकाश में खड़े देवताओं ने अपने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और दिशाओं में सुवास भरी मंद-मंद पवन पानीकी बूंदें छिड़काती हुई चलने लगी।

आकाश से पृथ्वी पर उतरकर प्राणीमात्र के शरीर तथा आत्मा के लिए कल्याण-स्वरूप पूजनीया माता गंगा के पुत्र महात्मा भीष्म, पिता शांतनु को सुख पहुंचाने की खातिर राज्य-श्री एवं सुख-भोग को त्याग कर आजीवन ब्रह्मचर्य के व्रत पर अटल रहने वाले महान् वीर भीष्म, परशुराम को

परास्त करने वाले अद्वितीय योद्धा भीष्म, अविश्वासी दुर्योधन की खातिर अपने सत्यव्रत पर दृढ़ रहकर, तिल-तिल करके प्राणों की आहुति देते रहकर, तथा युद्ध-भूमि में आग के तप्त अंगारे के समान तीखे बाणों से सारे शरीर के बिंध जाने पर भी अपनी शक्ति के अंतिम क्षण तक पांडवों को कंपाने वाले भीष्म, महाभारत के युद्ध के दसवें दिन, शक्ति की अंतिम बूंद समाप्त हो जाने पर रथ से भूमि पर गिरे! और भीष्म के गिरने के साथ ही कौरवों के हृदय भी गिर गये।



भीष्म गिरे तो पर उनका शरीर भूमि पर न लगा। सारे शरीर में जो बाण लगे थे वे एक तरफ से घुस कर दूसरी तरफ निकल आए थे। भीष्म का शरीर जमीन पर न पड़ कर उनके सहारे ही ऊपर उठा रहा। उस विलक्षण शर-शय्या पर पड़े भीष्म के शरीर से एक अनूठी आभा फूट रही थी। वे पहले से भी अधिक ज्वलंत दिखाई दे रहे थे। भीष्म के गिरते ही दोनों पक्ष के वीरों ने युद्ध बंद कर दिया और भीष्म के दर्शनार्थ झुंड-के-झुंड दौड़ पड़े। भरत देश के सभी राजा भीष्म के आगे सिर झुकाये, हाथ जोड़े उसी प्रकार खड़े रहे, जैसे सारे देवता सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को नमस्कार करने खड़े हों।



"मेरे सिर के नीचे कोई बाण नहीं लगा है, इस कारण वह लटक रहा है। उसे ऊपर उठाये रखने के लिए सिर के नीचे कुछ सहारा तो कोई लगा दो।" अपने चारों ओर खड़े राजाओं से भीष्म ने कहा।

पास में खड़े राजा लोग शिविरों में दौड़े और कई सुंदर और मुलायम तकिये ले आए। रेशम और रुई के उन कोमल तकियों को पितामह ने लेने से इन्कार कर दिया। अर्जुन से बोले-- "बेटा अर्जुन, मेरे सिर के नीचे कोई सहारा नहीं है। वह लटक रहा है। कोई ठीक-सा तकिया तो लगादो।"

भीष्म ने ये वचन उसी अर्जुन से कहे जिसने अभी-अभी प्राणहारी

बाणों से उनको बींध डाला था। भीष्म का आदेश सुनते ही अर्जुन ने अपने तरकश से तीन तेज बाण निकाले और पितामह के सिर को उनकी नोक पर रख कर उनके लिए उपयुक्त तकिया बना दिया।

भीष्म बोले—"हे राजागण! अर्जुन ने जो सिरहाना बनाया है, उसीसे मैं प्रसन्न हुआ हूं। अभी मेरा शरीर त्याग करने के लिए उचित समय नहीं हुआ है। अतः सूर्यनारायण के उत्तरायण होने तक मैं यहीं और ऐसा ही पड़ा रहूंगा। मेरी आत्मा भी उस समय तक शरीर में स्थित रहेगी। आप लोगों में से जो भी उस समय तक जीवित बचें, वे आकर मुझे देख जायं।"

इसके बाद पितामह ने अर्जुन से कहा—"बेटा! मेरा सारा शरीर जल रहा है और प्यास लग रही है। थोड़ा पानी तो पिलाओ।"

अर्जुन ने तुरंत धनुष तानकर भीष्म की दाहिनी बगल में पृथ्वी पर बड़े जोर से एक तीर मारा। बाण पृथ्वी में घुसकर सीधा पाताल जा लगा। उसी क्षण उस स्थान से जल का एक सोता फूट निकला। कवि कहते हैं कि इस प्रकार माता गंगा अपने महान् और प्यारे पुत्र की प्यास बुझाने स्वयं आईं और भीष्म ने अमृत के समान मधुर और शीतल जल पीकर अपनी प्यास बुझाई। वे बहुत ही खुश और प्रसन्न दिखाई दिये।

फिर दुर्योधन से बोले—"बेटा दुर्योधन! तुम्हें अच्छी बुद्धि प्राप्त हो! देखा तुमने, अर्जुन ने मेरी प्यास कैसे बुझाई? कैसे जल निकला? यह बात संसार में और किसीसे हो सकती है? अब भी समय है। विलंब न करो। अर्जुन से संधि कर लो। मेरी कामना है कि मेरे साथ ही इस युद्ध का भी अवसान हो जाय। बेटा! तुम मेरी बात पर ध्यान देकर पांडवों से अवश्य संधि करलो।"

मृत्यु को सामने देखने पर भी जैसे रोगी को दवा नहीं सुहाती, कड़वी ही लगती है, वैसे ही दुर्योधन को पितामह की ये बातें बहुत ही कड़वी लगीं। वह कुछ बोला नहीं।

धीरे-धीरे सभी राजा अपने-अपने शिविरों को लौट आये।

: ७६ :

पितामह और कर्ण

जब कर्ण को यह पता चला कि भीष्म पितामह घायल होकर रणक्षेत्र मे पड़े है तो वह उनके पास गया, उनको दंडवत प्रणाम किया और बोला--

"पूज्य कुलनायक ! सर्वथा निर्दोष होने पर भी आपकी घृणा का पात्र बना हुआ यह राधापुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता हे ।"

प्रणाम करके जब कर्ण उठा तो पितामह को उसके मुख पर भय की छाया-सी दिखाई दी । यह देख भीष्म का दिल भर आया । बड़े प्रेमपूर्वक कर्ण के सिर पर उन्होंने हाथ रखा और आशीर्वाद दिया और चुभे हुए बाणों से होने वाले कष्ट को दबा कर बोले-- "बेटा, तुम राधा के पुत्र नहीं--देवी कुंती के पुत्र हो । यह मुझे संसार का सारा मर्म जानने वाले नारदजी ने बताया है । सूर्यपुत्र ! मैंने तुमसे द्वेष नहीं किया । अकारण ही तुमने पांडवों से वैर रखा । इसी कारण तुम्हारे प्रति मेरा मन मलिन हुआ । तुम्हारी दान-वीरता और शूरता से मै भलीभांति परिचित हूं । इसमें कोई संदेह नहीं कि शूरता में तुम कृष्ण और अर्जुन की बराबरी कर सकते हो । तुम पांडवों के जेठे हो । इस कारण तुम्हारा कर्त्तव्य यह है कि तुम उनसे मित्रता कर लो । मेरी यही इच्छा है कि इस युद्ध में मेरे सेनापतित्व के साथ-ही-साथ पांडवों के प्रति तुम्हारे वैर-भाव का भी आज ही अंत हो जाय ।

यह सुन कर्ण बड़ी नम्रता के साथ बोला-- "पितामह ! म जानता हूं कि मै कुंती का पुत्र हूं । यह भी मुझे मालूम है कि मै सूत-पुत्र नहीं हूं । परंतु फिर भी दुर्योधन से मैंने जो संपत्ति प्राप्त की है, उसके कारण मै उनको

सहायता करने को बाध्य हो चुका हूं। यह बात मुझसे हो ही नहीं सकती कि अब मैं दुर्योधन का साथ छोड़ दूं और उनके शत्रुओं से जा मिलूं। मेरा कर्त्तव्य यही है कि मैं दुर्योधन के ही पक्ष में रहकर युद्ध करूं। आप कृपया मुझे इस बात की अनुमति दें कि मैं दुर्योधन की तरफ से लड़ूं। मने जो कुछ किया या कहा, उसमें जितने दोष हों, उनके लिए मुझे क्षमा करदें।"

कर्ण का कथन भीष्म बड़े ध्यान से सुनते रहे। उसके बाद बोले--"जो तुम्हारी इच्छा हो, वही करो। जीत धर्म की ही होगी।"

भीष्म के आहत होने के बाद भी महाभारत का युद्ध बंद नहीं हुआ। पितामह ने सबके हित के लिए जो सलाह दी, कौरवों ने उस ओर ध्यान नहीं दिया और युद्ध जारी रक्खा।



भीष्म के बिना कौरवों की सेना ठीक उसी तरह निःसहाय जान पड़ी जैसे गड़रिये के बिना भेड़-बकरियों का झुंड। सत्य पर अटल रहने वाले भीष्म के आहत होते ही सभी कौरव एक स्वर से बोल उठे--"कर्ण! अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो।"

कौरवों ने सोचा कि कर्ण के युद्ध में सम्मिलित हो जाने पर अवश्य हमारी ही जीत होगी। जब तक भीष्म सेनापति बने रहे तब तक कर्ण ने युद्ध में भाग नहीं लिया था। भीष्म ने कर्ण का दर्प दूर करने के विचार से जो कुछ कहा था, उस पर बिगड़कर कर्ण ने शपथ खा कर कहा था कि जब तक भीष्म जीवित रहेंगे तबतक मैं युद्ध नहीं करूंगा। अगर उनके हाथों पांडवों का वध और दुर्योधन की जीत हो जायगी तो मैं दुर्योधन की आज्ञा लेकर वन में चला जाऊंगा। और अगर वे युद्ध में हार गये और वीरोचित स्वर्ग को प्राप्त होगये तो उस समय मैं अकेला ही लड़कर सारे पांडवों को युद्ध में परास्त करके दुर्योधन को विजेता का यश दिलाऊंगा।

दस दिन पहले जिस कर्ण ने यह शपथ खाई थी और दुर्योधन की सहमति से उसे निभाया था, वही कर्ण आज युद्ध में आहत भीष्म के पास पैदल दौड़ा गया और उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा होगया और बोला--

"परशुराम को परास्त करने वाले वीर ! आज आप शिखंडी के हाथों आहत होकर इस युद्ध-भूमि में पड़े हैं। धर्म के शिखर माने जाने वाले आप जैसे महात्मा का जब यह हाल हुआ तो इसका यही अर्थ हो सकता है कि संसार में पुण्य का फल किसीको प्राप्त नहीं होता ! कौरवों को संकट की बाढ़ से पार लगाने वाली नौका के सदृश थे आप ! अब आपके बिना पांडवों के हाथों कौरवों को भारी पीड़ा पहुंचने वाली है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कृष्ण और अर्जुन उसी प्रकार कौरवों का सर्वनाश कर देंगे जैसे पवन और अग्नि मिलकर जंगल का नाश करती है। आपसे प्रार्थना है कि आप अपनी कृपा-दृष्टि मुझ पर डालकर अनुगृहीत करें।"

महात्मा भीष्म कर्ण को आशीर्वाद देते हुए बोले-- "कर्ण ! जिसने भी तुम्हें अपना मित्र बना लिया, उसको तुम वैसे ही सहारा दिया करते हो, जैसे नदियों को समुद्र, बीजों को मिट्टी और प्राणियों को मेघ। अब दुर्योधन की तुम्हीं रक्षा करना। जिसके लिए तुमने कांभोजों को जीता था, हिमालय के दुर्गों पर बसे हुए किरातों को कुचल डाला, जिसके लिए गिरिव्रज के राजाओं से लड़कर विजय प्राप्त की और जिसके लिए और भी कितने ही प्रतापी कार्य किये हैं, उसी दुर्योधन की सेना के अब तुम ही रक्षक बनकर रहना। तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, और शत्रुओं से युद्ध करो। कौरवों की सेना को अपनी ही संपत्ति समझकर उसकी रक्षा करो।"

भीष्म पितामह से आशीष पाकर कर्ण बहुत प्रसन्न हुआ और रथ पर चढ़कर युद्ध-क्षेत्र में जा पहुंचा। कर्ण को देखते ही दुर्योधन आनंद के मारे फूल उठा। भीष्म के विछोह का जो दुःख उसके लिए दुःसह-सा प्रतीत हो रहा था, अब कर्ण के आजाने पर किसी तरह उसे भूल जाना उसके लिए संभव मालूम होने लगा।

: ७७ :

सेनापति द्रोण

दुर्योधन और कर्ण इस बारे में सोच-विचार करने लगे कि अब सेनापति किसे बनाया जाय ?

कर्ण बोले—"यहां पर जितने भी क्षत्रिय उपस्थित हैं, वे सब सेनापति बनने की योग्यता रखते हैं। शारीरिक बल, पराक्रम, यत्नशीलता, बुद्धि, शूरता, धीरज, कुल, ज्ञान आदि सभी बातों में यहां इकट्ठे हुए सभी क्षत्रिय राजा एक-दूसरे की समता कर सकते है। पर सवाल यह है कि इनमें से सेनापति किसे बिनाया जाय? सभी एक साथ तो सेनापति बन नहीं सकते। किसी एक को ही इस पद के लिए चुनना होगा और संभव है इससे दूसरे लोग बुरा मानें। यह हमारे लिए हानिकर साबित होगा। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मुझे तो यही सबसे अच्छा प्रतीत होता है कि आचार्य द्रोण को ही सेनापति बनाया जाय। वे सभी वीरों के आचार्य हैं, शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ है और क्षत्रियों में तो उनकी समता करने वाला कोई है नहीं। मेरी राय में तो अपने आचार्य को ही सेनापति के पद पर बिठाया जाय।"

कर्ण की यह बात दुर्योधन ने मान ली।

"आचार्य! जाति, कुल, शास्त्र-ज्ञान, वय, बुद्धि, वीरता, कुशलता आदि सभी बातों में आप सबसे श्रेष्ठ है। आप ही अब इस सेना का सेनापतित्व स्वीकार करें। हमारी इस सेना का यदि आप संचालन करेंगे तो यह निश्चित है कि युधिष्ठिर को अवश्य जीत लेंगे।" यह कहकर दुर्योधन ने सभी क्षत्रिय वीरों के सामने द्रोणाचार्य से सेनापतित्व स्वीकार करने की विनती की।

एकत्र राजा लोगों ने यह सुनकर सिंहनाद करके दुर्योधन को प्रसन्न किया। शास्त्रोचित रीति से द्रोणाचार्य का सेनापति पद पर अभिषेक हुआ। उस समय ऐसा जयजयकार हुआ, मानो आकाश विदीर्ण हो जायगा। बंदी लोगों के स्तुति-गान और जय-घोष को सुनकर कौरव तो ऐसे उत्साह में आगये कि उन्हें यह भ्रम होने लगा कि उन्होंने पांडवों पर विजय ही पाली।



आचार्य द्रोण ने युद्ध के लिए सेना को शकट-व्यूह में रचा। कर्ण के रथ को उसी दिन पहले-पहल युद्ध के मैदान में इधर-उधर चलते देख कौरव-सेना के वीरों में एक नया ही जोश और आनंद दौड़ गया।

कौरवों की सेना के सिपाही आपस में बातें करने लगे-- "पितामह तो अर्जुन को मारना नहीं चाहते थे। अनमने भाव से युद्ध कर रहे थे। परंतु कर्ण ऐसा नहीं करेंगे। अब तो पांडवों का नाश होकर रहेगा।"

द्रोणाचार्य ने पांच दिन तक कौरवों की सेना का संचालन करते हुए घोर युद्ध किया। यद्यपि अवस्था में वे बूढ़े थे, फिर भी जवानों को लजाने वाली फुर्ती के साथ युद्ध के मैदान में एक छोर से दूसरे छोर तक चक्कर काटते रहे और पागलों के से जोश के साथ युद्ध करते रहे। उनके भीषण आक्रमण के आगे पांडवों की सेना उसी तरह तितर-बितर हो जाती थी, जैसे आंधी के चलने पर मेघ-राशि। सात्यकि, भीम, अर्जुन, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, द्रुपद, काशीराज आदि सुविख्यात वीरों के विरुद्ध अकेले द्रोणाचार्य भिड़ जाते और एक-एक को खदेड़ देते। पांचों दिन उनके हाथों पांडवों की सेना बहुत ही सताई गई। आचार्य द्रोण ने पांडव सेना के नाकों दम कर दिया।

: ७८ :

दुर्योधन का कुचक्र

द्रोणाचार्य के सेनापतित्व ग्रहण करने के बाद दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन, तोनों ने आपस में सलाह करके एक योजना बनाई और उसके अनुसार दुर्योधन आचार्य के पास जाकर बोला, "आचार्य ! किसी भी उपाय से आप युधिष्ठिर को जीवित ही कैद करके हमारे हवाले कर सकें तो कहना ही क्या ! इससे अधिक हम आपसे कुछ नहीं चाहते। यदि इस एक कार्य को आप सफलतापूर्वक पूरा करदें तो फिर मै और मेरे साथी संतोष मान लेंगे।"

यह सुनकर द्रोणाचार्य एक दम खुश हो उठे। पांडवों को मारना उनको भी प्रिय न था। यद्यपि कर्त्तव्य से प्रेरित होकर वे युद्ध में शरीक हुए थे, फिर भी उनके मन-ही-मन यही संघर्ष चल रहा था कि पांडु-पुत्रों को—विशेषकर युधिष्ठिर को—मारना अधर्म तो नहीं है ! इस कारण अब दुर्योधन की यह सूचना पा करके बड़े खुश हुए।

बोले— "दुर्योधन ! तुम्हारी क्या यही इच्छा है कि युधिष्ठिर के प्राणों की रक्षा हो जाय ? तुम्हारा कल्याण हो ! जब तुम्हींने यह कह दिया कि धर्मपुत्र के प्राण न लिये जायं तो फिर इसमें शक ही क्या हो सकता है कि वह अजात-शत्रु है ? लोगों ने 'शत्रुरहित' की जो उपाधि उसको दी है वह आज सार्थक हुई और तुमने उसे सार्थक किया। जब तुम स्वयं यह अनुरोध करने लगे हो कि युधिष्ठिर का वध न किया जाय, उसे जीवित ही पकड़ लिया जाय तो इसमें तो युधिष्ठिर का यश दस गुना बढ़ जाता है। धन्य है युधिष्ठिर को, जिसका कोई शत्रु नहीं !"

यह कह आचार्य कुछ देर सोचते रहे और फिर बोले— "बेटा !

मैंने जान लिया कि युधिष्ठिर को जीवित पकड़वाने से तुम्हारा क्या उद्देश्य है। तुम्हारा उद्देश्य यही है न कि पांडवों को आधा राज्य देकर उनसे संधि कर लें, नहीं तो युधिष्ठिर को जीता पकड़ने की बात ही तुम क्यों करते ?" यह कहते-कहते आचार्य द्रोण बहुत ही गद्गद् हो उठे और वे सोचने लगे--

"बुद्धिमान धर्मपुत्र का जन्म सफल है, कुंतीनंदन बड़भागी है, जिसने अपने शील-स्वभाव से सबको प्रभावित कर दिया है।" बार-बार यही सोचने लगे और धार्मिक जीवन की विजय पर असीम संतोष का अनुभव करने लगे। फिर यह सोचकर कि दुर्योधन के मन में अपने भाइयों के प्रति अभीतक स्नेह ह, द्रोण और भी प्रसन्न हुए।



किंतु दुर्योधन का उद्देश्य तो कुछ और ही था! उसके हृदय में वैरभाव और कुकर्म की इच्छा ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी--वह तनिक भी कम नहीं हुई थी। जब द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को जीता पकड़ने की बात मान ली तो ऐसा करने का अपना उद्देश्य भी उसने आचार्य को बताया।

दुर्योधन को अबतक यह विदित हो चुका था कि युधिष्ठिर को मार डालने से न तो युद्ध बंद होगा, न पांडवों का क्रोध ही कम होगा। उलटे, पांडव और भी अधिक उत्तेजित हो जायंगे और तबतक लड़ेंगे, जबतक कि सारे सैनिक खत्म न हो जाय। दुर्योधन को यह भी पता चल गया था कि उसीकी हार होगी और पांडवों की जीत होगी। यदि ऐसा न होकर दोनों तरफ के सभी योद्धाओं का नाश हो गया तो भी कृष्ण तो मरेंगे नहीं। न ही द्रौपदी जैसी स्त्रियां ही मरेंगी। कृष्ण जीवित रहे तो यह भी निश्चित है कि राज्य द्रौपदी या कुंती के हाथों में चला जायगा। अतः युधिष्ठिर का वध करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। उलटे, यदि युधिष्ठिर को जीता पकड़ लिया जाय तो युद्ध भी शीघ्र ही बंद हो जायगा और जीत भी कौरवों की होगी। थोड़ा-सा राज्य युधिष्ठिर को देने का बहाना करना होगा, सो वह कर देंगे और बाद में फिर जुआ खेल कर सहज ही में उसे छीन

भी लेंगे। क्षत्रियोचित धर्म मानने वाले और बात के पक्के युधिष्ठिर को जुआ खेलकर वन में भेजा जा सकता है। इधर दस दिन के युद्ध में दुर्योधन को यह भी मालूम हो चुका था कि लड़ने से कुल की तबाही ही होती है, लेकिन सफल होना शायद संभव नहीं होगा। इन्हीं सब विचारों से प्रेरित होकर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लाने का अनुरोध किया था।

द्रोण को जब दुर्योधन के असली उद्देश्य का पता लगा तो वे बहुत उदास हो गये। उनको विचार आया कि वे झूठ ही आनंद मनाते थे कि दुर्योधन का दिल अच्छा है। इससे उनके मन में दुर्योधन के प्रति बड़ी घृणा उत्पन्न हो गई। वे मन-ही-मन दुर्योधन की निंदा करने लगे। परंतु फिर भी यही सोचकर उन्होंने संतोष मान लिया कि युधिष्ठिर के प्राण न लेने का कोई-न-कोई बहाना तो मिला ही।

इधर पांडवों को जासूसों द्वारा यह मालूम हो गया कि आचार्य द्रोण ने युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने का निश्चय किया है। पांडव तो द्रोणाचार्य की अद्वितीय शूरता एवं शस्त्र-विद्या के अनुपम ज्ञान से भलीभांति परिचित थे ही। अतः जब सुना कि द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को पकड़ने का निश्चय ही नहीं किया है, बल्कि प्रतिज्ञा भी की है तो उन्हें भी भय हो आया। सबको यही चिंता होने लगी कि किसी भी तरह युधिष्ठिर की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध किया जाय।

इस कारण पांडव-सेना की व्यूह-रचना इस तरह से की गई कि जिससे युधिष्ठिर के चारों ओर उनकी सुरक्षा के लिए काफी सेना मुस्तैदी से रह सके। सेना का एक बहुत बड़ा दल युधिष्ठिर की रक्षा के निमित्त नियुक्त किया गया।



द्रोण के सेनापतित्व में युद्ध प्रारंभ हो गया। पहले दिन के संग्राम में उन्होंने अपने पराक्रम का काफी परिचय दिया। जैसे आग किसी सूखे वन को जलाती हुई फैलती है, वैसे ही पांडव-सेना को जलाते हुए आचार्य द्रोण चक्कर काटते रहे। किसीको पता भी नहीं चला कि द्रोण हैं किस

मोरचे पर। ऐसी फुरती के साथ इधर-उधर रथ चलाते, बाण बरसाते और सर्वनाश मचाते रहे कि पांडव सेना को भ्रम हुआ कि कहीं द्रोण अनेक तो नहीं बन गए।

पांडव-सेना का व्यूह उस मोरचे पर टूट गया जिस पर सेनापति धृष्ट-द्युम्न था और महारथियों में घोर द्वंद्व छिड़ गया। माया-युद्ध का निपुण शकुनि सहदेव से युद्ध करने लगा। जब उनके रथ टूट गये तो दोनों वीर रथ से उतर पड़े और गदाएं लेकर एक-दूसरे से ऐसे टकराये, मानो दो पहाड़ जीवित होकर भिड़ गये हों।

भीमसेन और विविंशति में जो युद्ध हुआ, उसमें दोनों के रथ टूटफूट गए। शल्य ने अपने भानजे नकुल को बहुत सताया। नकुल को इससे बड़ा क्रोध चढ़ा। उसने मामा के रथ की ध्वजा और छतरी काटकर गिरादी और विजय का शंख बजा दिया। दूसरी ओर कृपाचार्य धृष्टकेतु पर टूट पड़े और उसको खदेड़ छोड़ा। सात्यकि और कृतवर्मा में भी भयानक युद्ध हुआ।

विराटराज कर्ण से जा भिड़े। सदा की भांति अभिमन्यु ने अद्‌भुत पराक्रम का परिचय दिया। उसने अकेले ही पौरव, कृतवर्मा, जयद्रथ, शल्य आदि चारों महारथियों का मुकाबला किया और चारों को परास्त कर दिया।

इसके बाद भीम और शल्य में अचानक गदा-युद्ध छिड़ा। अंत में भीम ने शल्य को बुरी तरह हराया और शल्य को युद्ध-क्षेत्र से हटना पड़ा। यह देख कौरव-सेना का साहस डगमगाने लगा। इस पर पांडव सेना ने कौरव-सेना पर जोरों का हमला कर दिया। इससे कौरव-सेना में खलबली मच गई।

द्रोण ने जब यह देखा तो अपनी सेना का हौसला बढ़ाने के लिए अपने सारथी को आज्ञा दी कि रथ उस ओर ले चलो, जिधर युधिष्ठिर युद्ध कर रहे हों। द्रोण के सुनहरे रथ के आग सिंधु-देश के चार सुंदर और फुरतीले घोड़े जुते हुए थे। द्रोण का आज्ञा देना था कि घोड़े हवा से बातें करते हुए युधिष्ठिर के रथ की ओर रथ को ले दौड़े। आचार्य के रथ को अपनी ओर आते देख युधिष्ठिर ने आचार्य पर बाज़ के पर लगे तीखे बाण चलाये, किंतु

आचार्य उनसे जरा भी विचलित न हुए। उलटे धर्मराज पर उन्होंने कई बाण चलाये और उनका धनुष काटकर गिरा दिया। युधिष्ठिर संभलें, इसके पहले ही द्रोणाचार्य वेग से उनके निकट जा पहुंचे। धृष्टद्युम्न ने हजार चेष्टा की, परंतु वह द्रोण को नहीं रोक सके। उनका प्रचंड वेग किसीके रोके नहीं रुकता था।

'युधिष्ठिर पकड़े गए!' 'युधिष्ठिर पकड़े गए' की चिल्लाहट से सारा कुरुक्षेत्र गूंज उठा।

इतन में ही एकाएक न जाने कहांसे अर्जुन उधर आ पहुंचा। रक्त की नदी को पार करता हुआ, हड्डियों के पहाड़ों को लांघता हुआ और धरती को कंपाता हुआ अर्जुन का रथ आ खड़ा हुआ। देखते ही द्रोणाचार्य ज़रा देर के लिए सन्न रह गये।

और अर्जुन के गांडीव धनुष से बाणों की ऐसी अविरल बौछार हो रही थी कि कोई देख नहीं पाता था कि कब बाण धनुष पर चढ़ते और कब चलते। कुरुक्षेत्र का आकाश बाणों से छा गया और इस कारण सारे मैदान में अंधकार-सा छा गया था।

द्रोणाचार्य पीछे हट गए। युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने का उनका प्रयत्न विफल होगया और संध्या होते-होते उस दिन का युद्ध भी बंद हुआ। कौरव-सेना में भय छा गया। पांडव-सेना के वीर शान से अपने-अपने शिविर को लौट चले। सैन्य समूह के पीछे-पीछे चलते हुए कृष्ण और अर्जुन अपने शिविर में जा पहुंचे।

इस प्रकार ग्यारहवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ।

: ७९ :

बारहवां दिन

पहले ही दिन युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की चेष्टा के विफल हो जाने पर आचार्य द्रोण दुर्योधन से कहने लगे— "राजन्! अर्जुन के पास रहने पर युधिष्ठिर को पकड़ना असंभव है। अपनी तरफ से जो कुछ करना है वह मैं करूंगा। यदि कोई उपाय करके अर्जुन को युधिष्ठिर से अलग करके उसे कहीं दूर हटा दिया जाय तो मैं व्यूह तोड़कर युधिष्ठिर के पास पहुंच जाऊंगा और यदि वह मैदान में डटा रहा तो निश्चय ही कैद करके ले आऊंगा। यदि युधिष्ठिर भाग खड़ा हुआ तो वह भी हमारी ही जीत होगी।"

द्रोणाचार्य की ये बातें कौरवों के मित्र त्रिगर्त-नरेश सुशर्म ने सुन लीं। उन्होंने अपने भाइयों के साथ मिलकर मंत्रणा की कि अर्जुन को युधिष्ठिर से अलग हटाने का क्या उपाय किया जाय? सबने अंत में यही निश्चय किया कि संशप्तक व्रत धारण करके अर्जुन को युद्ध के लिए लल्कारा जाय और लड़ते-लड़ते उसे युधिष्ठिर से दूर हटा कर लेजाया जाय।

यह निश्चय करके उन्होंने एक भारी सेना इकट्ठी की और नियमानुसार संशप्तक व्रत की दीक्षा ली। सबने घास के बने वस्त्र धारण किये। अग्नि की पूजा की और फिर शपथ खाई कि हम लोग युद्ध में धनंजय का वध किये बिना नहीं लौटेंगे। यदि भय के कारण पीठ दिखाकर भाग आये तो हमें महापाप करने का दोष प्राप्त हो। हम प्राणों तक का उत्सर्ग करने को प्रस्तुत रहेंगे।

यह शपथ लेने के बाद संशप्तकों ने वे सब दान-पुण्य किये, जो मरणासन्न व्यक्तियों से कराये जाते हैं और फिर वे युद्ध-क्षेत्र में दक्षिण की ओर

मुख करके कूद पड़े और अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा ।

संशप्तक व्रत ली हुई त्रिगर्त-देश के वीरों की इस टोली को कौरव-सेना का 'आत्मघात-दल' समझा जा सकता है । आजकल की लड़ाइयों में भी यह प्रणाली प्रचलित है, जिसके अनुसार कोई दल-विशेष या व्यक्ति-विशेष किसी खास उद्देश्य की पूर्ति के लिए कटिबद्ध होकर निकलते हैं और कृतकार्य हुए बिना जीवित नहीं लौटते । अंग्रेजी में ऐसे वीरों की टोली को स्यूसाइड स्क्वैड (Suicide Squad) कहते हैं ।

संशप्तक-व्रत-धारी त्रिगर्त वीरों ने अर्जुन को नाम लेलेकर पुकारा और उसे युद्ध के लिए चुनौती दी ।

अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा, "राजन् ! देखिये, ये लोग संशप्तक-व्रत लेकर मुझे ललकार रहे हैं । आप तो जानते ही हैं कि मैंने यह प्रण कर रक्खा है कि किसीके ललकारने पर युद्ध में जरूर जाऊंगा । राजा सुशर्मा और उनके साथी मुझे युद्ध के लिए ललकार रहे हैं । इसलिए मैं तो जा रहा हूं और उनका सर्वनाश करके ही लौटूंगा । आप मुझे आज्ञा दीजिए ।"

युधिष्ठिर ने जब यह देखा तो बोले— "भैया, आचार्य द्रोण का इरादा तो तुम्हें मालूम है । उन्होंने मुझे जीवित पकड़ लेजाने का दुर्योधन को वचन दिया है । तुम तो जानते ही हो कि द्रोणाचार्य बड़े बली हैं, शूर हैं और कष्ट-सहिष्णु हैं, शास्त्र-विद्या के पारंगत हैं और अपनी प्रतिज्ञा के लिए पूर्ण प्रयत्नशील हैं । उनके प्रण और उनके सामर्थ्य को ध्यान में रखकर जो तुम्हें उचित लगे, वह करो । यही मेरा कहना है ।"

अर्जुन ने कहा—"आपकी रक्षा पांचालराज पुत्र सत्यजित करेंगे। जबतक वे जीवित रहेंगे तबतक आपपर किसी तरह की आंच नहीं आ सकती।"

और सत्यजित को युधिष्ठिर का रक्षक तैनात करके अर्जुन संशप्तकों की ओर ऐसे लपका जैसे भूखा शेर शिकार पर लपकता हो ।



अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा— "कृष्ण ! देखिए वे त्रिगर्त-लोग खड़े हैं । प्राणों के भय के कारण तो उन्हें रोना ही चाहिये था, किंतु व्रत के नशे

के कारण ये बड़े खुश हो रहे हैं। स्वर्ग की प्रतीक्षा करते हुए वे आनंद के मारे अपने आपेमें नहीं मालूम होते।" यह कहते-कहते अर्जुन शत्रु-सेना के पास जा पहुंचा।



महाभारत के युद्ध का बारहवां दिन था, बहुत ही भयानक युद्ध हो रहा था। अर्जुन ने त्रिगर्तों पर ऐसा आक्रमण किया कि त्रिगर्त-सेना के वीर विचलित होने लगे। इस पर घबराये हुए सैनिकों का उत्साह बढ़ाते हुए राजा सुशर्म सिंह की भांति गरज उठा।

बोला-- "शूरो! याद रक्खो! क्षत्रियों की भरी सभा में तुम लोगों ने शपथ खाकर व्रत धारण किया है। घोर प्रतिज्ञा करने के बाद भय-विह्वल होना तुम्हें शोभा नहीं देता। लोग तुम्हारी हंसी उड़ायेंगे। डरो नहीं! आगे बढ़ो और प्राणों की बलि चढ़ा दो।"

यह सुन सभी वीरों ने एकदूसरे को प्रोत्साहित करके शंख बजाते हुए फिर भयानक युद्ध शुरू कर दिया।

उनका यह युद्ध देखकर श्रीकृष्ण से अर्जुन ने कहा-- "हृषीकेष! जबतक इनके तन मे प्राण रहेंगे, ये मैदान से हटेंगे नहीं। अतः अब हमें भी झिझकना नहीं चाहिए। आप रथ चलाइए।"

मधुसूदन ने रथ चलाया और अपने सारथ्य की कुशलता का अद्भुत परिचय दिया। श्रीकृष्ण का चलाया वह रथ उस समय ऐसे ही शोभित हुआ जैसे देवासुर संग्राम के समय इंद्र का रथ शोभित हो रहा था। अर्जुन के गांडीव ने भी अपनी पूरी चतुराई का परिचय दिया। त्रिगर्तों को एक ही समय में सौ-सौ अर्जुन दिखाई देने लगे और अर्जुन के द्वारा घायल वीर ऐसे दिखाई दिये जैसे हजारों फूलों से लदे पलास के पेड़।

घोर संग्राम होने लगा। एक बार तो अर्जुन का रथ त्रिगर्तों के बाणों की बौछार से मानो अंधकार में विलीन हो गया।

"अर्जुन क्या हाल है? कुशल से तो हो?" श्रीकृष्ण ने रथ हांकते हुए पूछा।

अर्जुन ने 'हां' कहते-कहते त्रिगर्तों के मारे बाणों के अंधेरे में ही गांडीव तान कर ऐसे बाण मारे कि जिनसे शत्रुओं की बाण-वर्षा हवा में उड़ गई।

उस समय युद्ध-भूमि का दृश्य ऐसा भयानक प्रतीत हुआ मानो प्रलय के समय रुद्र की नृत्य-भूमि हो। सारे मैदान पर जहांतक दृष्टि पहुंचती थी, बिना सिर के धड़, टूटे हाथ-पैर आदि के ढेर पड़े दिखाई देते थे।



उधर अर्जुन को संशप्तकों से लड़ने गया देख द्रोणाचार्य ने अपनी सेना को आज्ञा दी कि पांडवों की सेना के व्यूह के उस स्थान पर आक्रमण किया जाय जहां युधिष्ठिर हों। युधिष्ठिर ने देखा कि द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में एक भारी सेना उनकी ओर बढ़ी चली आ रही है। वे धृष्टद्युम्न को सचेत करते हुए बोले—"वह देखो! ब्राह्मण वीर आचार्य द्रोण मुझे पकड़ने के लिए आ रहे हैं। सतर्कता के साथ सेना की देखभाल करना।"

धृष्टद्युम्न द्रोण के आने की प्रतीक्षा किये बिना ही आगे बढ़ चला। द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न को, जिसका जन्म ही द्रोणाचार्य के वध के लिए हुआ था, अपनी ओर आते देखकर द्रोणाचार्य क्षण भर के लिए भयभीत से हुए, मानो काल का आगमन हो रहा हो। उन्हें स्मरण हो आया कि धृष्टद्युम्न के हाथों मेरी मृत्यु निश्चित है और आचार्य उसकी ओर न बढ़कर जिधर राजा द्रुपद युद्ध कर रहे थे, उस तरफ को घूम गये।

द्रुपद की सेना को खूब परेशान करने और खून की नदी बहाने के बाद द्रोणाचार्य ने फिर युधिष्ठिर की ओर अपना रथ बढ़ाया। आचार्य को देखते ही युधिष्ठिर अविचलित भाव से बाणों की वर्षा करने लगे। इस पर सत्यजित द्रोणाचार्य पर टूट पड़ा। भयानक संग्राम छिड़ा। इस समय द्रोणाचार्य ऐसे प्रतीत हुए मानो साक्षात काल हो। पांडव-सेना के वीरों को एक-एक कर के वे मारने लगे। पांचाल राजकुमार वृक के प्राण उनके बाणों ने ले लिये। सत्यजित का भी वही हाल हुआ।

यह देख विराट का पुत्र शतानीक द्रोण पर झपटा और दूसरे ही क्षण शतानीक का सिर कुंडलों के साथ युद्ध-भूमि पर लोटने लगा। इसी

बीच केदम नाम का राजा द्रोणाचार्य से आ टकराया और उसके भी प्राण-पखेरू उड़ गये। द्रोण आगे बढ़ते ही चले। उनके प्रबल वेग को रोकने के लिए हिम्मत करके वसुधान आया और वह भी यमलोक पहुंचा। युधामन्यु, सात्यकि, शिखंडी, उत्तमौजस् आदि कितने ही महारथियों को तितर-बितर करते हुए द्रोणाचार्य युधिष्ठिर के नजदीक जा पहुंचे। उस समय द्रुपदराज का एक और पुत्र पांचाल्य अपने प्राणों की जरा भी परवा न करके अदम्य जोश के साथ द्रोण पर टूट पड़ा। वह भी मृत होकर रथ से जमीन पर इस प्रकार पड़ा जसे आकाश से तारा टूटकर गिरता हो।

"राधेय! आचार्य द्रोण का पराक्रम तो देखो! पांडवों की सेना कैसी बेहाल होकर इधर-उधर भाग रही है। मैं कहता हूं कि ये पांडव अब युद्ध में हार जावेंगे।" दुर्योधन ने कहा।

कर्ण को यह ठीक नहीं लगा। बोला—"दुर्योधन! पांडवों को हराना इतना सरल काम नहीं है। पांडव ऐसे व्यक्ति नहीं कि जो युद्ध से इतनी जल्दी पीछे हट जायं। वे कभी उन घोर यातनाओं को नहीं भूल सकेंगे जो उन्हें विष से, आग से और जुए के खेल से पहुंची थीं। वनवास के समय जो कष्ट झेलने पड़े उन्हें भी वे नहीं भूल सकते। देखो तो, वे पांडव वीर फिर से इकट्ठे होकर आचार्य पर हमला कर रहे हैं। कितने ही वीर युधिष्ठिर की रक्षा के लिए आगये है। भीम, सात्यकि, युधामन्यु, क्षत्रधर्म, नकुल, उत्तमौजस्, द्रुपद, विराट, शिखंडी, धृष्टकेतु आदि बहुत से वीर आ गये हैं और अब द्रोणाचार्य पर अचानक हमला हो रहा है। आचार्य के कंधों पर इतना भार लादकर हम यहां बेकार खड़े रहें यह ठीक नहीं होगा। यद्यपि वे महान् वीर हैं फिर भी उनकी सहन-शक्ति की भी कोई सीमा होती है। भेड़िये भी एक साथ हमला करके एक भारी हाथी को मार सकते हैं। इसलिए चलो, चलें। उन्हें अकेले छोड़ना ठीक नहीं।" यह कहता हुआ कर्ण आचार्य द्रोण की सहायता को चल दिया।

: ८० :

शूर भगदत्त

आचार्य द्रोण युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने की कई बार चेष्टा करके हार गये। तब दुर्योधन ने एक भारी गज-सेना भीम की ओर बढ़ा दी। भीमसेन ने रथ पर ही खड़े उन लड़ाकू हाथियों के झुंड का मुकाबला किया। बाणों की बौछार से हाथियों की बुरी दशा हो गई। अर्द्धचन्द्र बाणों के प्रहार से दुर्योधन के रथ की ध्वजा कटकर गिर गई और धनुष भी टूट गया। दुर्योधन को यों बेहाल होते देखकर अंग नाम का म्लेच्छराज एक बड़े हाथी पर सवार होकर भीमसेन के सम्मुख आ डटा। म्लेच्छराज पर भीम ने नाराच बाणों की जोरों की वर्षा की जिससे म्लेच्छराज को अपने हाथी समेत मैदान से लौटना पड़ा। यह देख वहांकी सारी कौरव सेना भयभीत होकर भाग खड़ी हुई।

हाथी और रथों में जुते हुए घोड़े जब घबराकर भागने लगे तो हजारों पैदल सैनिक उनके पैरों तले कुचल गये और मृत्यु को प्राप्त हुए। कौरव सेना को इस प्रकार घबराहट के मारे भागते देखकर देश के राजा भगदत्त से न रहा गया। वह अपने विख्यात लड़ाकू हाथी सुप्रतीक पर सवार होकर भीमसेन की ओर बढ़ा। अपनी सूंड को घुमाता हुआ वह हाथी भीमसेन पर झपटा और उसके रथ और घोड़ों को तहस-नहस कर दिया। रथ के नष्ट हो जाने पर भी भीमसेन बिलकुल नहीं घबराया। हाथियों के मर्म-स्थानों के बारे में उसकी जानकारी खूब थी। इस कारण वह जमीन पर कूद पड़ा और चालाकी से भगदत्त के हाथी के पांवों के बीच में से घुसकर उसके शरीर से सटकर नीचे खड़ा हो गया और उसके मर्म-स्थानों पर घूंसे मार-मार कर उसे बेहाल कर दिया। हाथी मारे दर्द के जोरों से चिंघाड़ने

लगा। कुम्हार के चाक की भांति वह अपने चारों ओर चक्कर खाने लगा और अपने-आपको छुड़ाने का प्रयत्न करने लगा। घूमते-घूमते अचानक हाथी ने अपनी सूंड से भीमसेन को पकड़ लिया और उसे जमीन पर पटककर अपने परों से कुचलने ही वाला था कि इतने में भीमसेन बड़ी चपलता से उसकी पकड़ में से छटक गया और फिर से उसके पैरों के बीच जा घुसा और पहले की भांति उसे मारे घूंसों के तंग करने लगा।

भीमसेन को यह आशा थी कि पांडव सेना का कोई हाथी इधर निकल आवे और सुप्रतीक पर आक्रमण करदे तो उसे इस संकट से बच निकलने का मौका मिले। पर सेना के और वीरों को इस बात का पता नहीं लगा। उधर काफी समय तक भीम का पता न चला तो सैनिकों ने शोर मचाया कि भीमसेन मारा गया। भगदत्त के हाथी ने भीमसेन को मार दिया!

यह शोर सुनकर युधिष्ठिर ने भी विश्वास कर लिया कि भीमसेन सचमुच ही मारा गया होगा। यह सोचकर उन्होंने अपने वीरों को आज्ञा दी कि भगदत्त पर हमला बोल दो।

इतने में दशार्ण देश के राजा ने अपने लड़ाकू हाथी पर सवार होकर भगदत्त के हाथी पर हमला कर दिया।

दशार्ण के हाथी ने बड़े जोरों के साथ युद्ध किया और सुप्रतीक पर जोर का हमला किया। फिर भी सुप्रतीक के आगे वह अधिक देर टिक नहीं सका। सुप्रतीक ने अपने दांतों से दशार्ण के हाथी की पसलियां चूर कर दीं। दशार्ण का हाथी चक्कर खाकर गिर पड़ा। इसी बीच समय पाकर भीमसेन सुप्रतीक के परों के बीच में से निकल भागा।

इधर युधिष्ठिर की भेजी कुमुक आ पहुंची थी और वृद्ध भगदत्त को चारों तरफ से पांडव वीरों ने घेर लिया। बाणों के वार से उसका हाथी और वह स्वयं दोनों बुरी तरह घायल हो गये; परंतु फिर भी भगदत्त इससे विचलित नहीं हुआ। दावानल की भांति बूढ़े वीर भगदत्त का कलेजा जल रहा था। घेरे हुए शत्रु-वृन्द की बिलकुल परवाह न करके उसने सात्यकि के रथ की ओर ही हाथी दौड़ा दिया। हाथी ने सात्यकि के रथ को उठाकर

हवा में फेंक दिया। सात्यकि फुरती से जमीन पर कूद पड़ा, वरना उसका बचना कठिन हो जाता। उसका सारथी बड़ा कुशल था। उसने आकाश में फेंके गये रथ और घोड़ों को बड़ी कुशलता से बचा लिया और फिर से रथ को उठाकर ठीक-ठाक कर लिया और सात्यकि के नजदीक ले आया।

भगदत्त के हाथी ने पांडव-सेना को बहुत तंग किया। वह निधड़क होकर सेना के अंदर घुसकर सैनिकों को उठा-उठाकर फेंकने लगा और उसने चारों ओर तबाही मचा दी। इस हमले से सैनिकों को बड़ी घबराहट हुई। हाथी पर शान से खड़ा राजा भगदत्त ठीक उसी तरह पांडव सेना के वीरों को मौत के घाट उतार रहा था जैसे देवराज इंद्र अपने ऐरावत पर खड़े असुरों का वध कर रहे हों।

इसी बीच भीमसेन फिर से रथ पर सवार होकर सुप्रतीक पर हमला करने लगा; परंतु मतवाले हाथी ने उसके रथ के घोड़ों की ओर सूंड बढ़ाकर जोर से ऐसी फुंकारें मारीं कि घोड़े घबराकर भाग खड़े हुए।

•

उधर दूसरी ओर दूर पर अर्जुन संशप्तकों से लड़ रहा था। उसने देखा कि जहां पांडव-सेना थी वहां आकाश तक धूल उड़ रही है और हाथी की चिंघाड़ें भी सुनाई दे रही हैं। यह देखकर उसने ताड़ लिया कि जरूर कुछ-न-कुछ अनर्थ हो रहा होगा। वह श्रीकृष्ण से बोला—

"मधुसूदन, सुनिये तो! भगदत्त के लड़ाकू हाथी सुप्रतीक की चिंघाड़ सुनाई दे रही है। लड़ाकू हाथी को चलाने वालों में भगदत्त का सानी संसार में कोई नहीं है। मुझे डर है कि कहीं वह हमारी सेना को तितर-बितर करके हरा न दे। हमें शीघ्र ही उधर चलना चाहिए। इन संशप्तकों को जितना हरा चुके हैं अभी तो उतना ही काफी है। इनको यहीं छोड़कर उधर चलना जरूरी मालूम देता है, जहां द्रोणाचार्य युधिष्ठिर से लड़ रहे हैं।"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन की बात मान ली और उन्होंने रथ उसी ओर घुमा दिया, जिधर भगदत्त के हाथी और भीम का युद्ध हो रहा था। सुशर्मराज

और उसके भाई संशप्तक अर्जुन के रथ का पीछा करने लगे और 'ठहरो-ठहरो' चिल्लाते हुए आक्रमण भी करने लगे। यह देख अर्जुन बड़ी दुविधा में पड़ा। क्षणभर के लिए किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा होकर सोचने लगा कि "क्या करें ? सुशर्म यहां पर ललकार रहा है। उधर उत्तरी मोर्चे पर सेना का व्यूह टूट रहा है और संकट का मौका आया है। उधर जायं तो सुशर्म समझेगा कि यह डरकर भाग रहा है, यहीं पर डटे रहें और उधर सेना को तुरंत मदद न पहुंची तो कियाकराया सब मिट्टी में मिल जायगा।"

अर्जुन इसी सोच-विचार में पड़ा हुआ था कि इतने में सुशर्म ने एक शक्ति-अस्त्र अर्जुन पर छोड़ा और एक तोमर श्रीकृष्ण पर। सचेत होकर तुरंत ही अर्जुन ने तीन बाण मारकर सुशर्म को जवाब दे दिया और भगदत्त की ओर रथ को तेजी से बढ़ाये चलने के लिए श्रीकृष्ण से कहा।

अर्जुन के पहुंचते ही पांडवों की सेना में नया उत्साह आगया। सब जहां-के-तहां रुक गये। भागने की किसीने चेष्टा न की। सेना सम्हल गई और तुरंत हमला करने को प्रस्तुत हो गई। अर्जुन आते ही कौरव सेना की ओर जोरों का हमला करके भगदत्त की तरफ़ बढ़ा। भगदत्त ने तत्काल अपना हाथी अर्जुन पर चला दिया। भगदत्त का हाथी अर्जुन के रथ पर काल की तरह झपटा; पर श्रीकृष्ण ने बड़ी कुशलता से रथ को हाथी के रास्ते से हटाकर बचा लिया।

हाथी पर सवार भगदत्त ने अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों ही पर बाण बरसाने शुरू किये। अर्जुन ने हाथी के कवच पर तीर मारकर पहले उसीको तोड़ दिया। इस कारण सुप्रतीक के शरीर पर बाणों का असर होने लगा। इससे उसे बहुत पीड़ा हुई। यह देख भगदत्त ने श्रीकृष्ण पर एक शक्ति फेंकी। अर्जुन ने बाणों से उसके दो टुकड़े कर दिये। इसके बाद भगदत्त ने एक तोमर अर्जुन पर चलाया। तोमर अर्जुन के मुकुट पर जा लगा। इससे अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। उसने अपना मुकुट संभालकर रख लिया और बोला—"भगदत्त! अब इस संसार को अंतिम बार अच्छी तरह से देख लो।" और यह कहते-कहते अपना गांडीव धनुष तान लिया।

राजा भगदत्त उम्र का वृद्ध था। उसके पके बाल और भरे हुए चेहरे पर वृद्धावस्था के कारण झुर्रियां देखकर सिंह का स्मरण हो आता था। भौंहों पर का चमड़ा लटककर आंखों पर आ पड़ता था। भगदत्त उसे एक रेशमी कपड़े से उठाकर बांधे रखता था। उसकी शूरता का कोई सानी नहीं था। अपने शील स्वभाव और प्रताप के कारण वह क्षत्रियों में बड़ा प्रसिद्ध था। यहांतक कि लोग बड़ी श्रद्धा से कहा करते थे कि भगदत्त इंद्र का मित्र है। अर्जुन के चलाये बाणों से भगदत्त का धनुष टूट गया। तरकश का भी वही हाल हुआ और अर्जुन ने भगदत्त के मर्म-स्थानों पर भी बाण चलाकर छेद डाला था।

उन दिनों योद्धा लोग कवच पहना करते थे। अस्त्र-शस्त्र विद्या सिखाते समय यह भी सिखाया जाता था कि कवच के होते हुए भी किसीके शरीर को बाणों से कैसे बींधा जा सकता है।

वृद्ध भगदत्त के सब हथियार नष्ट हो गये। इसलिए उन्होंने हाथी चलाने का अंकुश ही उठा लिया और उसे अभिमंत्रित करके अर्जुन पर छोड़ा। वह अस्त्र अर्जुन के प्राण ले ही लेता यदि श्रीकृष्ण अपनी छाती आगे न कर लेते। वैष्णवास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित होने के कारण श्रीकृष्ण की छाती पर लगते ही वह शक्ति वनमाला-सी बनकर श्रीकृष्ण की शोभा बढ़ाने लगी।

अर्जुन के अभिमान को इससे बड़ा धक्का लगा। वह श्रीकृष्ण से बोला, "जनार्दन! शत्रु का चलाया हथियार अपने ऊपर लेना क्या आपके लिए उचित था? जब आप यह घोषणा कर चुके हैं कि केवल रथ चलायंगे, युद्ध न करेंगे तो फिर यह कहांका न्याय कि धनुष लिये तो मैं सामने खड़ा रहूं और वार आप अपने ऊपर झेल लें!"

यह सुन श्रीकृष्ण हंसते हुए बोले--"भैया! तुम नहीं जानते! यदि मैं इसे अपने ऊपर न ले लेता तो यह अस्त्र तुम्हारे प्राण लेकर ही छोड़ता। वह मेरी चीज थी और मेरे पास लौट आई।"



अर्जुन ने सुप्रतीक पर तानकर एक बाण चलाया। वह हाथी के सिर

को चीरता हुआ इस प्रकार अंदर चला गया जैसे सांप बिल के अंदर जाता है। बाण के लगने से हाथी चिंघाड़ता हुआ बैठ गया। भगदत्त ने उसे बहुत उकसाया, डांटा-डपटा; लेकिन हाथी ने उसकी एक न सुनी और बैठा ही रहा। पीड़ा के मारे बुरा हाल था उसका। बेहाल होकर वह दांतों से जमीन खोदने लगा और थोड़ी ही देर बाद खत्म हो गया।

हाथी के मर जाने पर अर्जुन को दुःख हुआ। वह चाहता था कि अकेले भगदत्त को ही गिरावे और हाथी को न मारे। पर ऐसा न हो सका। उसके बाद अर्जुन के पैने बाणों से भगदत्त की आंखों के ऊपर बंधी रेशमी पट्टी कट गई जो उसकी आंखों के ऊपर लटक आनेवाली चमड़ी को ऊपर उठाए रखती थी। इससे भगदत्त की आंखें बंद हो गईं। उसे कुछ नहीं सूझने लगा। वह अंधेरे में मानो विलीन हो गया। थोड़ी ही देर बाद एक और पैने बाण ने उसकी छाती छेद डाली।

सोने की माला पहने भगदत्त जब हाथी के मस्तक पर से गिरा तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी पर्वत की चोटी पर से फूलों से लदा हुआ वृक्ष आंधी से उखड़कर गिर रहा हो। भगदत्त को गिरते देखकर कौरवों की सेना मारे भय के तितर-बितर होने लगी।

किंतु शकुनि के दो भाई वृषक और अचल तब भी विचलित न हुए और जमकर लड़ते रहे। उन दोनों वीरों ने अर्जुन पर आगे और पीछे से बाणों की वर्षा करके खूब परेशान किया। अर्जुन ने थोड़ी देर बाद उन दोनों के रथों को तहस-नहस कर दिया और उनकी सेनाओं पर भी भयानक बाण-वर्षा की। सिंह-शिशुओं के समान वे दोनों भाई अर्जुन के बाणों से घायल होकर गिर पड़े और मृत्यु को प्राप्त हुए।

अपने अनुपम वीर भाइयों के मारे जाने पर शकुनि के क्षोभ और क्रोध की सीमा न रही। उसने माया-युद्ध शुरू कर दिया और उन सब उपायों से काम लिया जिनमें उसे कुशलता प्राप्त थी। परंतु अर्जुन ने उसके एक-एक अस्त्र को अपने जवाबी अस्त्र से काट डाला और उसकी माया का प्रभाव दूर कर दिया। अंत में अर्जुन के बाणों से शकुनि ऐसा आहत हुआ कि

उसे युद्ध-क्षेत्र से हट जाना पड़ा ।

इसके बाद तो पांडवों की सेना द्रोणाचार्य की सेना पर टूट पड़ी । असंख्य वीर खेत रहे। खून की नदियां बह चलीं। थोड़ी देर बाद सूर्य अस्त हुआ। द्रोण ने देखा कि उनकी सेना बुरी तरह मार खा रही है। कितने ही सैनिक घायल हो गये हैं, कितने ही वीरों के कवच टूट गये हैं । लोगों में लड़ने का साहस नहीं रहा है। यहांतक हालत हो गई कि किसी-किसी की तो बुद्धि भी ठिकाने नहीं रही । अपनी सेना का यह हाल देखकर द्रोणाचार्य ने लड़ाई बंद कर दी। दोनों पक्षों की सेनाएं अपने-अपने डेरों को चल दीं और इस प्रकार बारहवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ ।

: ८१ :

अभिमन्यु

बारहवें दिन का युद्ध समाप्त हो जाने पर पांडव सेना अर्जुन की प्रशंसा करती हुई उत्साह के साथ अपने शिविर में लौट चली। उधर कौरव-पक्ष के वीर लज्जा अनुभव कर के चिंतित भाव से धीरे-धीरे अपने डेरों में जाने लगे ।

अगले दिन सवेरा हुआ तो दुर्योधन क्रोध में भरा हुआ आचार्य द्रोण के शिविर में गया और आचार्य को नमस्कार करके उपस्थित सैनिकों की ओर ध्यान न देते हुए आचार्य पर बरस पड़ा :

"आचार्य ! युधिष्ठिर को नजदीक में पाकर भी उन्हें पकड़ने में आप असमर्थ रहे। यदि सचमुच आपको हमारी रक्षा की चिंता होती तो कल जो-कुछ हुआ वह आप न होने देते । यदि आप युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ने का दृढ़ संकल्प कर लेते तो फिर किसमें इतनी शक्ति है जो आपकी इच्छा को पूरा होने से रोक सके ? आपने मुझे जो वचन दिया था, न जाने क्यों अभीतक उसे आपने पूरा नहीं किया। आप लोग महात्मा हैं और

महात्माओं के कार्य भी बड़े ही विलक्षण होते हैं।"

दुर्योधन के इस प्रकार सबके सामने कहने पर आचार्य द्रोण को बड़ी चोट लगी। वे बोले--

"दुर्योधन! अपनी सारी शक्ति लगाकर मैं तुम्हारे लिए ही लड़ रहा हूं। क्षत्रिय होकर इस भांति कुविचार करना तुम्हें शोभा नहीं देता। मैंने तो पहले भी तुम्हें बता दिया था कि हमारा उद्देश्य तबतक सफल नहीं हो सकता जबतक अर्जुन युधिष्ठिर के पास रहेगा और तुमको फिर से यह बताये देता हूं कि अर्जुन को युधिष्ठिर से अलग हटाकर कहीं दूर ले जाये बिना तुम्हारा उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। यद्यपि मैं जहांतक हो सकेगा, इस बात का प्रयत्न जारी ही रखूंगा।"

आचार्य द्रोण को दुर्योधन पर क्रोध तो बहुत आया, पर उन्होंने अपनेको शांत कर लिया।



तेरहवें दिन भी संशप्तकों (त्रिगर्तों) ने अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। अर्जुन भी चुनौती स्वीकार करके उनके साथ लड़ता हुआ दक्षिण दिशा की ओर चला। नियत स्थान पर पहुंचने पर अर्जुन और संशप्तकों के बीच घोर संग्राम छिड़ गया।

अर्जुन के दक्षिण की ओर चले जाने के बाद द्रोणाचार्य ने कौरव-सेना की चक्र-व्यूह में रचना की और युधिष्ठिर पर धावा बोल दिया। युधिष्ठिर की ओर से भीम, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुंति भोज, उत्तमौजस्, विराटराज, कैकेय वीर---आदि और भी कितने ही सुविख्यात महारथियों ने द्रोणाचार्य के आक्रमण की बाढ़ को रोकने की जीतोड़ कोशिश की। फिर भी द्रोण का वेग उनके रोके नहीं रुक सका। यह देख सभी महारथी चिंता में पड़ गये।

सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु अभी बालक ही था। फिर भी अपनी रण-कुशलता और शूरता के लिए वह इतना प्रसिद्ध हो चुका था कि लोग उसको कृष्ण एवं अर्जुन की समता करने वाला समझते थे।

युधिष्ठिर ने इस वीर बालक को बुलाकर कहा— "बेटा ! द्रोणाचार्य हमें बहुत तंग कर रहे हैं। यदि हमें हारना पड़ा तो अर्जुन हमारी निंदा करेगा। द्रोण के रचे चक्र-व्यूह को तोड़ना हमारे और किसी वीर से हो नहीं सकता। अकेले तुम्हीं ऐसे हो जिसके लिए द्रोण के बनाये इस व्यूह को तोड़ना संभव है। द्रोण की सेना पर आक्रमण करने को तैयार हो ?"

यह सुन अभिमन्यु बोला— "महाराज, इस चक्रव्यूह में प्रवेश करना तो मुझे आता है, पर प्रवेश करने के बाद कहीं कोई संकट आगया तो व्यूह से बाहर निकलना मुझे याद नहीं है।"

युधिष्ठिर ने कहा— "बेटा, व्यूह को तोड़कर एक बार तुम भीतर प्रवेश कर लो ; फिर तो जिधर से तुम आगे बढ़ोगे, उधर से ही हम तुम्हारे पीछे-पीछे चले आवेंगे और तुम्हारी मदद को तैयार रहेंगे।

युधिष्ठिर की बातों का समर्थन करते हुए भीमसेन ने कहा— "तुम्हारे ठीक पीछे-पीछे मैं चलूंगा। धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि वीर भी अपनी-अपनी सेनाओं के साथ तुम्हारा अनुकरण करेंगे। एक बार अगर तुमने व्यूह को तोड़ दिया तो फिर यह निश्चित समझना कि हम सब कौरव-सेना को तहस-नहस कर डालेंगे।"

यह सब सुन कर बालक अभिमन्यु को मामा कृष्ण और वीर पिता अर्जुन की वीरता का स्मरण हो गया। बड़े उत्साह के साथ वह बोला— "मैं अपनी वीरता और पराक्रम से मामा श्रीकृष्ण और पिताजी को अवश्य प्रसन्न करूंगा।"

युधिष्ठिर ने आशीर्वाद देते हुए कहा— "तुम्हारा बल हमेशा बढ़ता रहेगा। तुम यशस्वी होओगे।"



"सुमित्र ! वह देखो ! द्रोणाचार्य के रथ की ध्वजा ! उसी ओर रथ चलाओ, जल्दी करो।" अपने सारथी को उत्साहित करते हुए अभिमन्यु ने कहा और सारथी ने भी उसी ओर अपना रथ चलाया।

रथ की गति से संतोष न पाकर अभिमन्यु ने सारथी को और तेजी

से रथ चलाने को उकसाया। उत्साह में आकर वह बार-बार कहने लगा—"चलाओ, और तेज़ चलाओ।"

इस पर सारथी नम्रभाव से बोला, "भैया! महाराज युधिष्ठिर ने आप पर यह बड़ी भारी जिम्मेदारी डाली है। मेरे विचार से आप थोड़ी देर और सोच-विचार करलें और उसके बाद व्यूह में प्रवेश करने का तय करें। यह आपके ध्यान में रहे कि द्रोणाचार्य अस्त्र-विद्या के महान् आचार्य हैं और महाबली हैं। आप तो अवस्था में भी अभी निरे बालक ही हैं।"

यह सुन अभिमन्यु हंस पड़ा और बोला—"सुमित्र! तुमको यह याद रखना चाहिए कि मेरे मामा श्रीकृष्ण हैं और पिता हैं महारथी अर्जुन! भय और शंका का भूत मेरे पास तक नहीं फटक सकता। शत्रु पक्ष के सभी वीरों की शक्ति मेरी शक्ति का सोलहवां हिस्सा भी नहीं हो सकती। इनको देखकर मैं सोच-विचार में पड़ूं? तुम फिक्र मत करो। चलाओ रथ तेजी से द्रोणाचार्य की सेना की ओर। ख़ूब तेज़ी से चलाओ।"

अभिमन्यु की आज्ञा मानकर सारथी ने रथ उधर ही बढ़ा दिया।



तीन-तीन वर्ष के सुंदर और वेगवान घोड़े उस सुनहरे रथ को बड़े वेग से खींचते हुए कौरव सेना की ओर दौड़े। कौरव सेना में हलचल मच गई। "अरे अभिमन्यु आया और उसके पीछे-पीछे पांडव वीर भी चले आ रहे हैं!"

कर्णिकार वृक्ष की ध्वजा फहराते हुए अभिमन्यु के रथ को अपनी ओर बड़े वेग से आते हुए देखकर कौरव-सेना के दिल एकबारगी दहल उठे। सब मन में कहने लगे— "वीरता में अभिमन्यु अर्जुन से भी बढ़कर मालूम होता है। आज के युद्ध में भगवान् ही रक्षक है।" और अभिमन्यु का रथ धड़धड़ाता हुआ ऐसा चला—मानो शेर का बच्चा हाथियों पर झपट रहा हो। कौरव-सेना-रूपी समुद्र में एक मुहूर्त्त के लिए ऐसा भंवर-सा आगया जैसे किसी बड़ी नदी के मिलने पर समुद्र में आता है। द्रोणाचार्य के देखते-देखते उनका बनाया व्यूह टूट गया और अभिमन्यु

व्यूह के अंदर दाखिल हो गया।

कौरव वीर एक-एक करके अभिमन्यु का सामना करने आते गये और यमधाम को कूंच करते गये जैसे आग में पड़कर पतंगे भस्म हो जाते हैं। जो भी सामने आया उस बाल-वीर के बाणों की मार से मारा गया। यज्ञ-शाला की जमीन पर जैसे दर्भ फैला दी जाती है, उसी तरह अभिमन्यु ने कौरव-सेना की लाशें सारे युद्ध-क्षेत्र में बिछा दीं। जिधर देखो उधर धनुष, बाण, ढाल, तलवार, परसे, गदा, अंकुश, भाले, रास, चाबुक, शंख आदि बिखरे पड़े थे! कटे हुए हाथ, फूटे सिर, कपाल, शरीर के टुकड़े आदि के ढेर से सारा मैदान ऐसे ढंक गया था कि खोजने पर भी कहीं मिट्टी नहीं दिखाई देती थी।

अभिमन्यु द्वारा किये गय इस सर्वनाश को देखकर दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया। वह स्वयं जोश में आकर उस बालक से जा भिड़ा। द्रोणाचार्य को जब पता लगा कि दुर्योधन अभिमन्यु से युद्ध करने गया है तो उन्होंने तुरंत कई सैनिकों को उसकी सहायता के लिए उधर भेज दिया कि जल्दी से जाकर दुर्योधन की रक्षा करें। थोड़ी देर तक घोर युद्ध होता रहा। इतने में द्रोण की भेजी कुमुक आ पहुंची और दुर्योधन को बड़े परिश्रम के बाद अभिमन्यु के हाथों से छुड़ाया गया। बालक अभिमन्यु को इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि हाथ में आया शिकार बच कर निकल गया। दुर्योधन की सहायता को जो वीर आये थे उन पर वह टूट पड़ा और उन सबको मार-मार कर बेहाल कर दिया। वे बड़ी मुश्किल से अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए।

कौरव-सेना ने जब यह हाल देखा तो युद्ध-धर्म और लज्जा को उसने ताक में रख दिया। बहुत-से वीर एक साथ उस अकेले बालक पर टूट पड़े, किंतु जैसे समुद्र की उमड़ती हुई लहरें बार-बार रेतीले किनारे पर टकरा कर छितरा जाती है, वैसे ही वीर अभिमन्यु से टकराकर वे सभी वीर हर बार बिखर जाते थे। उन सबके बीच अभिमन्यु चट्टान की तरह अटल खड़ा रहा। कुछ देर बाद द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, शकुनि आदि सात महारथियों ने अपने रथों पर चढ़कर चारों तरफ से अभिमन्यु पर एक

साथ हमला बोल दिया। इसी बीच अश्मख नामक एक राजा अपना रथ बड़े वेग से चलाता हुआ अभिमन्यु पर झपटा। अभिमन्यु ने उसके वेग को रोक लिया और दो ही बाणों के वार से उसके प्राण पखेरू उड़ गये। इसके बाद अभिमन्यु ने कर्ण के अभेद्य कवच को छेद डाला और उसको काफी परेशान कर डाला। और भी कितने ही वीरों को आहत होकर मैदान में पीठ दिखानी पड़ी। बहुतों के प्राणों की बलि चढ़ गई। मद्रराज शल्य बुरी तरह घायल हुए और रथ पर ही अचेत होकर पड़ गये। यह देख कर शल्य का छोटा भाई क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया और बड़े वेग से अभिमन्यु पर झपटा, पर अभिमन्यु ने इसके रथ को नष्ट कर दिया और उसका भी काम तमाम कर दिया।

अपने मामा और पिता से पाई हुई अस्त्र-शिक्षा की कुशलता को काम में लाकर शत्रु दल को सर्वनाश का सामना कराने वाले वीर-बालक की शूरता तथा रण-कुशलता को देखकर आनंद के कारण द्रोणाचार्य की आंखें एकबारगी कमल की भांति विकसित हो गईं।

"अभिमन्यु की समता करने वाला वीर कोई नहीं है।" द्रोण ने मुग्ध हो कर कृपाचार्य से कहा। दुर्योधन ने जब इस प्रकार द्रोण को अभिमन्यु की प्रशंसा करते हुए सुना तो उसे बड़ा क्रोध आया।

वह बोला— "आचार्य को अर्जुन से जो स्नेह है, उसी कारण वे उसके पुत्र की अनुचित प्रशंसा मे व्यर्थ समय गंवा रहे हैं। वे चाहते तो इस बालक का दमन करना कोई भारी बात नहीं थी, पर आचार्य इसे मारना थोड़े ही चाहते है।"

बात यह थी कि दुर्योधन ने अधर्म से प्रेरित होकर युद्ध की यह बला सिर मोल ले ली थी। इस कारण उसे अक्सर द्रोण, भीष्म आदि पर अविश्वास होता रहता था और इससे बड़ा व्यथित भी हो जाता था।



"इस नासमझ लड़के को तो मैं अभी ठिकाने लगाये देता हूं।" यह कहकर सिंहनाद करके और शंख बजाकर दुःशासन ने अभिमन्यु पर

बाणों से हमला कर दिया ।

दुःशासन और अभिमन्यु में बड़ी देरतक युद्ध होता रहा । दोनों अपने-अपने रथ पर चढ़कर पैंतरे बदलते हुए और एक-दूसरे को चकमा देते हुए युद्ध करते रहे । अंत में दुःशासन घायल होकर रथ पर ही अचेत हो गया। उसका चतुर सारथी यह हाल देखकर युद्ध के मैदान से उसका रथ दूर लेगया । पराक्रमी दुःशासन की इस पराजय के कारण पांडव-सेना में खुशी छा गई और अभिमन्यु के जयजयकार से सारी दिशाएं गूंजने लगीं ।

इसके बाद महाबली कर्ण ने फिर से अभिमन्यु पर हमला कर दिया । अभिमन्यु उससे परेशान तो हुआ पर वह घबराया तनिक भी नहीं । उसने एक बाण ठीक निशाना ताक कर ऐसे मारा कि कर्ण का धनुष कटकर गिर पड़ा ।

इससे क्रुद्ध होकर कर्ण के भाई सूतपुत्र ने अभिमन्यु पर आक्रमण किया और दूसरे ही क्षण अभिमन्यु के बाणों ने उसके सिर को धड़ से अलग करके पृथ्वी पर गिरा दिया। लगे हाथ अभिमन्यु ने कर्ण की भी कसकर खबर ले ली और उसे उसकी सेना के साथ युद्ध के मैदान से खदेड़ दिया ।

जब कर्ण का यह हाल हुआ तो फिर कौरव सेना की पंक्तियां टूट गईं । सैनिक तितर-बितर होकर भाग खड़े हुए । द्रोण ने उन्हें डटे रहने को हज़ार उकसाया; पर फिर भी कोई डटे रहने का साहस न कर सका। जिसने ज़रा साहस किया कि अभिमन्यु ने उसकी ऐसी गत बनाई जैसे सूखे जंगल को आग तबाह कर देती है ।

: ८२ :

अभिमन्यु का वध

जैसा कि पहले तय हुआ था, पांडवों की सेना अभिमन्यु के पीछे-पीछे चली और जहांसे व्यूह तोड़कर अभिमन्यु अंदर घुसा वहींसे

व्यूह के अंदर प्रवेश करने लगी। सिंधु देश का पराक्रमी राजा जयद्रथ, जो धृतराष्ट्र का भानजा था, यह देख अपनी सेना को लेकर पांडव-सेना पर टूट पड़ा। जयद्रथ के इस साहसपूर्ण काम और सूझ को देखकर कौरव-सेना में उत्साह की लहर दौड़ गई। कौरव-सेना के सभी वीर उसी जगह इकट्ठे होने लगे जहां जयद्रथ पांडव-सेना का रास्ता रोके हुए खड़ा था। शीघ्र ही टूटे मोरचों की दरारें भर गईं। जयद्रथ के रथ पर चांदी का शूकर-ध्वज फहरा रहा था। उसे देख कौरव-सेना की स्फूर्ति बहुत बढ़ गई और उसमें नया उत्साह भर गया। व्यूह को भेदकर अभिमन्यु ने जहांसे रास्ता किया था, वहां इतने सैनिक आकर इकट्ठे होगये कि व्यूह फिर पहले जैसा ही मजबूत हो गया।



व्यूह के द्वार पर ही एक तरफ युधिष्ठिर, भीमसेन और दूसरी ओर जयद्रथ में युद्ध छिड़ गया। युधिष्ठिर ने जो भाला फेंककर मारा तो जयद्रथ का धनुष कट कर गिर गया। पलक मारते-मारते जयद्रथ ने दूसरा धनुष उठा लिया और दस बाण युधिष्ठिर पर मारे। भीमसेन ने बाणों की बौछार से जयद्रथ का धनुष काट दिया, रथ की ध्वजा और छतरी को तोड़-फोड़ दिया और रणभूमि में गिरा दिया। उस पर भी सिंधुराज नहीं घबराया। उसने फिर एक दूसरा धनुष ले लिया और बाणों से भीमसेन का धनुष काट डाला। पल भर में ही भीमसेन के रथ के घोड़े ढेर हो गये। भीमसेन को लाचार हो रथ से उतरकर सात्यकि के रथ पर चढ़ना पड़ा।

जयद्रथ ने जिस कुशलता और बहादुरी से ठीक समय व्यूह की टूटी किलेबंदी को फिर से पूरा करके मजबूत बना दिया उससे पांडव बाहर ही रह गये। अभिमन्यु व्यूह के अंदर अकेला रह गया। पर अकेले अभिमन्यु ने व्यूह के अंदर ही कौरवों की उस विशाल सेना को तहस-नहस करना शुरू कर दिया। जो भी उसके सामने आता खत्म हो जाता था।

दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण अभी बालक था; पर उसमें वीरता की आभा-सी फूट रही थी। उसके भय छू तक न गया था। अभिमन्यु की बाण-

वर्षा से व्याकुल होकर जब सभी योद्धा पीछे हटने लगे तो वीर लक्ष्मण अकेला जमकर अभिमन्यु से भिड़ पड़ा। बालक की इस निर्भयता से स्फूर्ति पाकर भागती हुई कौरव-सेना फिर से इकट्ठी हो गई और वीर लक्ष्मण का साथ देकर लड़ने लगी। सबने एक साथ ही अभिमन्यु पर बाण-वर्षा कर दी। पर वह अभिमन्यु पर इस प्रकार लगी जैसे पर्वत पर मेंह बरसता हो।

दुर्योधन-पुत्र अपने अद्भुत पराक्रम का परिचय देता हुआ वीरता से युद्ध करता रहा। अंत में अभिमन्यु ने उस पर एक भाला चलाया। केंचुली से निकले सांप की तरह चमकता हुआ वह भाला वीर लक्ष्मण के बड़े जोर से जा लगा। सुंदर नासिका और सुंदर भौंहों वाला, चमकीले-घुंघराले केश और जगमगाते कुंडलों से विभूषित वह वीर बालक भाले की चोट से तत्काल मृत होकर गिर पड़ा।

यह देख कौरव-सेना आर्त्तस्वर मे हाहाकार कर उठी।

"पापी अभिमन्यु का इसी क्षण वध करो।" दुर्योधन ने चिल्लाकर कहा और द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृतवर्म आदि छह महारथियों ने अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया।

द्रोण ने कर्ण के पास आकर कहा, "इसका कवच भेदा नहीं जा सकता। ठीक से निशाना बांधकर इसके रथ के घोड़ों के रास काट डालो और पीछे की ओर से इसपर अस्त्र चलाओ।"

सूर्यकुमार कर्ण ने यही किया। पीछे की ओर से बाण चलाये गये। अभिमन्यु का धनुष कट गया। घोड़े और सारथी मारे गये। वह रथ-विहीन हो गया। धनुष भी न रहा। फिर भी वह वीर बालक ढाल-तलवार लिये शान से खड़ा रहा। उस समय ऐसा लगता था मानो क्षत्रियोचित शूरता का वह मूर्त्तस्वरूप हो। लड़ाई के मैदान में ढाल-तलवार लिये खड़े अभिमन्यु ने रण-कौशल का ऐसा प्रदर्शन किया कि सभी वीर विस्मय में पड़ गये। अभिमन्यु बिजली की तरह तलवार घुमाता रहा और जो भी उसके पास आता उस पर आक्रमण करके उसकी खासी अच्छी खबर लेता। वह तलवार इस फुरती से चलाता था कि ऐसा मालूम होता

था मानो वह जमीन पर खड़ा ही न हो और आकाश में ही युद्ध कर रहा हो। इतने में आचार्य द्रोण ने अभिमन्यु की तलवार काट डाली। साथ-ही कर्ण ने कई तेज़ बाण एक साथ चलाकर उसकी ढाल के टुकड़े कर दिये।

तुरंत ही अभिमन्यु ने टूटे रथ का पहिया हाथ में उठा लिया और उसे घुमाने लगा। ऐसा करते हुए वह लगता था मानो सुदर्शन चक्र लिये हुए साक्षात भगवान नारायण हो। रथ के पहिये की धूल लग जाने के कारण उसके गौर-वर्ण शरीर की स्वाभाविक शोभा और बढ़ गई।



इस समय अभिमन्यु भयानक युद्ध कर रहा था। यह देख सारी सेना एक साथ उस पर टूट पड़ी। उसके हाथ का पहिया चूर-चूर हो गया। इसी बीच दुःशासन का पुत्र गदा लेकर अभिमन्यु पर झपटा। इसपर अभिमन्यु ने भी पहिया फेंक कर गदा उठा ली और दोनों आपस में भिड़ पड़े। दोनों में घोर युद्ध छिड़ गया। एक-दूसरे पर गदा का भीषण वार करते हुए दोनों ही राजकुमार आहत होकर गिर पड़े। पर दोनों ही हड़बड़ा कर उठने लगे। दुःशासन का पुत्र जरा पहले उठ खड़ा हुआ। अभिमन्यु अभी उठ ही रहा था कि दुःशासन के पुत्र ने उसके सिर पर जोर से गदा-प्रहार किया। यों भी अभिमन्यु अब तक कइयों से अकेला लड़ते-लड़ते घायल हो चुका था और थककर चूर-चूर हो रहा था। गदा की मार पड़ते ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये।



संजय ने धृतराष्ट्र को इस घटना का हाल सुनाते हुए कहा— "सुभद्रा के पुत्र के कौरव-सेना में घुसने पर सेना की ऐसी दुर्दशा हो गई जैसे हाथी के घुस आने पर कदली-बन की होती है। ऐसे इस वीर को कई लोगों ने एक साथ आक्रमण करके मार डाला और मरे हुए अभिमन्यु के शरीर को घेरकर आपके बंधु-बांधव एवं साथी जंगली व्याधों की भांति नाचने-कूदने व आनंद मानने लगे। जो सच्चे वीर थे यह देख कर उनकी आंखों में आंसू आ गये। आकाश में जो पक्षी मंडरा रहे थे, वे चीखने लगे, मानो

पुकार-पुकार कर कह रहे हों कि "यह धर्म नहीं ! धर्म नहीं !"



अभिमन्यु के वध पर कौरव-वीरों के आनंद का कोई ठिकाना न रहा। सभी वीर सिंह-नाद करने लगे; किंतु धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु को इससे बड़ा क्रोध आया।

वह बोला— "तुम लोगों ने यह उचित नहीं किया। युद्ध-धर्म से अनभिज्ञ क्षत्रियो ! चाहिए तो यह था कि तुम लोग लज्जा से सिर झुकाते ! उल्टा, सिंहनाद कर रहे हो! तुमने यह एक भारी पाप किया है और आगे के लिए एक भारी संकट मोल ले लिया है। इस पर ध्यान न देकर मूर्ख व नासमझ लोगों की भांति आनंद मना रहे हो ! धिक्कार है तुम्हें !" यह कहते-कहते युयुत्सु ने अपने हथियार फेंक दिये और मैदान से चल दिया।

युयुत्सु धर्म-प्रिय था। उसकी बातें भला कौरवों को क्यों पसंद आने लगीं !

: ८२ :

पुत्र-शोक

"हा दैव ! जिस वीर ने द्रोण और अश्वत्थामा को, कृप और दुर्योधन को परास्त कर दिया था, जिसने शत्रु-सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था, वह चिरनिद्रा में सो गया ! हाय मेरे लाड़ले, दुःशासन को खदेड़ने वाले शूर ! क्या सचमुच तुम्हारी मृत्यु हो गई ? तो फिर अब मुझे विजय की क्या जरूरत ! अब राज्य को ही लेकर मैं क्या करूंगा ? हा दैव ! अर्जुन को मैं कैसे सांत्वना दूंगा ? बेचारी सुभद्रा को जो बच्चे से बिछड़ी हुई गऊ की भांति तड़प रही होगी, मैं कैसे शांत कर सकूंगा ? जिन बातों से स्वयं मुझे सांत्वना नहीं मिल सकती, ऐसी निरर्थक बातें दूसरों से कैसे करूं? लोभ में पड़कर लोगों की बुद्धि मंद हो जाती है। जैसे कोई मतिहीन

शहद के लालच में पड़कर सामने के गड्ढे को देखे बिना उसमें गिरकर नाश को प्राप्त हो जाता है, वैसे ही मैंने भी विजय की लालसा में पड़कर अपने प्यारे बेटे को सर्वनाश के गड्ढे में धकेल दिया। मुझ जैसा मतिहीन और निरा मूर्ख संसार भर में और कौन हो सकता है ? मैं भी कैसा हत्यारा और पापी हूं कि जो अर्जुन की अनुपस्थिति में उसके लाड़ले बेटे की रक्षा करने के बजाय उसकी हत्या करवा दी !"

अपने शिविर में दुःख की प्रतिमूर्त्ति-से बैठे युधिष्ठिर इस प्रकार विलाप कर रहे थे। आसपास बैठे लोग अभिमन्यु की शूरता का स्मरण करते हुए अवाक् से बैठे थे।

युधिष्ठिर पर जब कभी विपदा आती और वे शोक-विह्वल होते थे तब भगवान् व्यास उनके पास न जाने कैसे आ पहुंचते थे और उनको समझा-बुझाकर शांत किया करते थे।

इस समय भी भगवान् व्यास आ पहुंचे।

युधिष्ठिर ने उनका उचित आदर-सत्कार करके ऊंचे आसन पर बिठाया और रुद्ध कंठ से बोले-- "भगवन्, हजार प्रयत्न करने पर भी मन शांत नहीं होता।"

व्यासजी युधिष्ठिर को सांत्वना देते हुए बोले-- "युधिष्ठिर, तुम बड़े बुद्धिमान् हो। शास्त्रों के ज्ञाता हो। किसीके बिछोह पर इस तरह शोक-विह्वल होना और मोह में पड़ना तुम्हें शोभा नहीं देता। मृत्यु के तत्त्व से तुम क्या परिचित नहीं हो ? नासमझ लोगों की तरह शोक करना तुम्हें उचित नहीं।" और इस प्रकार जीवन-मरण की दार्शनिक व्याख्या करते हुए भगवान् व्यास ने युधिष्ठिर को शांत किया।

"जगत-सृष्टा ब्रह्मा ने अखिल विश्व का सृजन किया, भांति-भांति के असंख्य जीव-जंतुओं का निर्माण किया और इस प्रकार जीव-जंतुओं की संख्या बढ़ती ही गई। वह रुकती तो थी ही नहीं। विधाता ने जब यह देखा तो भारी सोच में पड़ गये कि जगत में स्थान तो सीमित है और उस पर रहने वाले जीव-जंतुओं की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही

चली जा रही है। इसके लिए क्या उपाय करें? ब्रह्मा ने बहुत सोचा-विचारा। परंतु फिर भी उन्हें कोई उपाय न सूझा। विधाता के मन में इस लगातार चिंता के कारण जो संताप हुआ, उससे एक भीषण ज्वाला-सी उठी और सारे संसार का नाश करने लगी। यह देख रुद्र को भय हुआ कि इससे कहीं संसार का समूलोच्छेदन न हो जाय। वह ब्रह्मा के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि इस ज्वाला को वे समेट लें। ब्रह्मा ने रुद्र की प्रार्थना मान ली और क्रोध की ज्वाला को शांत कर लिया। दबे हुए क्रोध की अग्नि ने मृत्यु का रूप ले लिया। प्राणियों की उत्पत्ति और नाश में व्याधियों और युद्ध जैसी दुर्घटनाओं के द्वारा समता लाने की वह चेष्टा कर रही है और इस प्रकार जीवन का यह एक अनिवार्य अंग ही बन गई है।

"मृत्यु एक ऐसी ईश्वरीय व्यवस्था है कि जिसका एकमात्र उद्देश्य संसार का हित करना है। अतः मृत्यु (मरण) से डरना या उसके लिए शोक करना उचित नहीं। जो मर गये हैं उनके प्रति शोक करने का कोई कारण नहीं है। वास्तव में शोक तो उनके लिए करना चाहिए जो जीवित हैं और मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

भगवान व्यास ने इस तत्त्व-विचार के समर्थन में कई पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों के प्रमाण देकर युधिष्ठिर के व्यथित हृदय को शांत किया।

फिर वे बोले—"तुम तो जानते ही हो कि संसार में जितने भी कीर्त्ति-मान, प्रतापी और धन-संपत्ति से संपन्न भाग्यवान लोग रहे हैं, उन सभी को अंत में शरीर छोड़कर जाना ही पड़ा है। यह भी तुम्हें मालूम है कि मरुत्, सुक्षेत्र, अंग, शिबि, राम, भगीरथ, दिलीप, मांधाता, ययाति, अंबरीष, शशबिंदु, रंतिदेव, भरत, पृथु आदि चौदहों यशस्वी सम्राट् भी आखिर मृत्यु को ही प्राप्त हुए थे। अतः तुम्हें अपने पुत्र की चिंता न करनी चाहिए। जो अधिक देरी न किये स्वर्ग को पहुंच जाय उसके प्रति शोक करना ही नहीं चाहिए। जो दुःख का अनुभव करने लगता है उसका दुःख बढ़ता ही जाता है। विवेकशील व्यक्ति को चाहिए कि शोक को मन से हटा दे और अपने

कर्त्तव्य का पालन करते हुए सद्गति को प्राप्त करने की चेष्टा में दत्त-चित्त रहे ।"

धर्मराज युधिष्ठिर को यों उपदेश देकर भगवान् व्यास अंतर्धान होगए।



संशप्तकों (त्रिगर्तों) का संहार करने के बाद युद्ध समाप्त करके अर्जुन और श्रीकृष्ण अपने शिविर को लौट रहे थे। रास्ते में अर्जुन का दिल कुछ घबराने-सा लगा। वह श्रीकृष्ण से बोला—"गोविंद! न जाने क्यों मेरा मन घबरा रहा है। जी में उदासी-सी छा रही है। जीभ सूख रही है। मन में भारी व्यथा है। यद्यपि इसका कोई कारण मालूम नहीं पड़ता; पर कहीं महाराज युधिष्ठिर के साथ कोई दुर्घटना तो नहीं हुई? धर्मराज कुशल से तो होंगे?

वासुदेव ने कहा— "युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित सकुशल होंगे। तुम इस बात की जरा भी चिंता न करो।"

रास्ते में संध्या-वंदना करने के बाद दोनों फिर रथ पर सवार होकर अपने शिविर की ओर चलने लगे। ज्यों-ज्यों शिविर निकट आता गया त्यों-त्यों अर्जुन की घबराहट बढ़ती गई। वह बोला— "जनार्दन! क्या कारण है कि सदा की भांति आज कोई मंगल-ध्वनि सुनाई नहीं दे रही है? बाजे नहीं बज रहे हैं? जो सैनिक सामने दीख पड़ता है मुझपर उसकी निगाह पड़ते ही न जाने क्यों, वह अपना सिर झुका लेता है। कभी ऐसा हुआ नहीं। आज यह क्या बात है? और क्यों? माधव, मेरा मन घबराया हुआ है। मैं भ्रांत-सा हो रहा हूं। सब भाई कुशल से तो होंगे? आज अभिमन्यु अपने भाइयों के साथ हंसता हुआ मेरा स्वागत करने क्यों नहीं दौड़ा आ रहा है?"

एसी ही बातें करते हुए दोनों शिविर के अंदर पहुंचे।

युधिष्ठिर आदि जो भाई-बंधु शिविर में थे, वे कुछ बोले नहीं। यह देख अर्जुन बोला— "आप लोगों के चेहरे उतरे हुए क्यों हैं? मलिनता आप सबके मुख पर क्यों छाई हुई है? अभिमन्यु भी दीख नहीं पड़ता।

क्या कारण है कि आप कोई भी आज की मेरी विजय पर मेरा स्वागत नहीं करते? न हंसकर आप लोग बातें ही करते हैं। मैंने सुना था कि आचार्य द्रोण ने चक्र-व्यूह रचना की थी। अभिमन्यु को छोड़कर आपमें से कोई भी इस व्यूह को तोड़कर भीतर घुसना नहीं जानता है। अभिमन्यु तो उसे तोड़कर भीतर नहीं चला गया? मैं उसे बाहर निकलने की तरकीब नहीं बता सका था। वहां जाकर कहीं वह मारा तो नहीं गया है?"

किसीके कुछ न कहने पर भी अर्जुन ने परिस्थिति देखकर अपने-आप ही सब बातें ताड़ लीं और तब उससे नहीं रहा गया। सब कुछ जान जाने पर वह बुरी तरह बिलखने लगा।

"अरे! क्या सचमुच मेरा प्यारा बेटा यमलोक पहुंच गया? सचमुच क्या वह यमराज का मेहमान बन गया? युधिष्ठिर, भीमसेन, धृष्टद्युम्न, महापराक्रमी सात्यकि आदि आप सब लोगों ने क्या सुभद्रा के पुत्र को शत्रु के हाथों सौंप दिया? आप सबके होते हुए उसे बलि चढ़ना पड़ा? अब मैं सुभद्रा को किस तरह जाकर समझाऊंगा? द्रौपदी को कैसे मुंह दिखाऊंगा? उनके पूछने पर क्या कहूंगा? अरे, उत्तरा को अब कौन समझायगा? कैसे कोई उसे सांत्वना देगा?"

पुत्र के बिछोह से दुखित अर्जुन को वासुदेव ने सम्हाला और उसे तरह-तरह से समझाने लगे—"भैया, तुम्हें इस तरह व्यथित नहीं होना चाहिए। हम क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय हथियारों के बल जीते हैं और हथियारों से ही हमारी मृत्यु होती है। जो कायर नहीं हैं, जो युद्ध के मैदान में पीठ दिखाना नहीं जानते, उन शूरों की तो मृत्यु सहेली बनकर सदा साथ रहती है। जो वीर निडर होते हैं उनकी तो असमय में ही अचानक मृत्यु हो जाना ही स्वाभाविक मृत्यु है। पुण्यवानों के योग्य स्वर्ग को तुम्हारा पुत्र प्राप्त हुआ है। क्षत्रियों की यही तो कामना—बलवती इच्छा—होती है कि युद्ध करते हुए वीरोचित रीति से प्राण-त्याग करें। क्षत्रियों के जीवन का जो चरम ध्येय है—जिसे पाना ही क्षत्रियों के जीवन का परम उद्देश्य माना गया है—उसीको आज अभिमन्यु प्राप्त हुआ। अतः तुम्हें पुत्र की

मृत्यु का दुःख न करना चाहिए। तुम अधिक शोक-विह्वल होओगे तो तुम्हारे बंधु-बांधवों एवं साथियों का भी मन अधीर हो उठेगा। उनकी भी स्थिरता जाती रहेगी। अतः शोक को दूर करो। अपनेको संभालो और दूसरों को भी ढाढ़स बंधाओ।"

श्रीकृष्ण की बातें सुनकर अर्जुन कुछ शांत हुआ। उसने अपने इस वीर पुत्र की मृत्यु का सारा हाल जानना चाहा। उसके पूछने पर युधिष्ठिर बोले--

"मैंने अभिमन्यु से कहा था कि चक्र-व्यूह को तोड़कर भीतर प्रवेश करने का हमारे लिए रास्ता बना दो तो हम सब तुम्हारा अनुकरण करते हुए व्यूह में प्रवेश कर लेंगे। तुम्हारे सिवा दूसरा और कोई इस व्यूह को तोड़ना नहीं जानता। तुम्हारे पिता और मामा को भी यही प्रिय होगा। तुम इस काम को अवश्य करना। मेरी बात मानकर वीर अभिमन्यु उस अभेद्य व्यूह को तोड़कर अंदर घुस गया। हम भी उसीके पीछे-पीछे चले और हम अंदर घुसने ही वाले थे कि पापी जयद्रथ ने हमें रोक लिया। उसने बड़ी चतुरता से टूटे व्यूह को फिर से ठीक कर दिया। हमारे लाख प्रयत्न करने पर भी जयद्रथ ने हमें प्रवेश करने न दिया। इसके बाद हम तो बाहर रहे और अंदर कई महारथियों ने एक साथ मिलकर उस अकेले बालक को घेर लिया और मार डाला।"

युधिष्ठिर की बात पूरी भी न हो पाई थी कि अर्जुन आर्त्त स्वर में "हा बेटा!" कहकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चेत आने पर वह उठा और दृढ़तापूर्वक बोला--- "जिसके कारण मेरे प्रिय पुत्र की मृत्यु हुई, उस जयद्रथ का मैं कल सूर्यास्त होने से पहले वध करके रहूंगा। युद्ध-क्षेत्र में जयद्रथ की रक्षा करने को यदि आचार्य द्रोण और कृप भी आजायं तो उनको मैं भी अपने बाणों की भेंट चढ़ा दूंगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

यह कहकर अर्जुन ने गांडीव-धनुष का जोर से टंकार किया। श्री-कृष्ण ने भी पांचजन्य शंख बजाया और भीमसेन बोल उठा-- "गांडीव की यह टंकार और मधुसूदन के शंख की यह ध्वनि धृतराष्ट्र के पुत्रों के सर्वनाश

की सूचना है ।"

: ८४ :

सिन्धुराज

सिंधु-देश के सुप्रसिद्ध राजा वृद्धक्षत्र के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम जयद्रथ रक्खा गया । बड़ी तपस्या के बाद वृद्धक्षत्र के यह पुत्र हुआ था । पुत्र के पैदा होते समय यह आकाशवाणी हुई थी--

'यह राजकुमार बड़ा यशस्वी होगा; पर एक श्रेष्ठ-क्षत्रिय के हाथों सिर काटे जाने से उसकी मृत्यु होगी ।'

इस बात का ज्ञान होते हुए भी कि जो पैदा होता है वह मरता जरूर है, बड़े-बड़े ज्ञानियों और तपस्वियों को भी किसीके मरने पर दुःख अवश्य होता है । अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वृद्धक्षत्र आकाशवाणी सुनकर बड़े व्यथित हुए । उन्होंने तत्काल शाप दिया कि जो मेरे पुत्र का सिर काटकर जमीन पर गिरायगा उसका सिर उसी क्षण सौ टुकड़े हो जायगा और वह भी मृत्यु को प्राप्त होगा ।

जयद्रथ के अवस्था प्राप्त हो जाने पर वृद्धक्षत्र ने उसे सिंहासन पर बिठाया और आप तपस्या करने बन को चले गये और 'स्यमंत पंचक' नामक स्थान पर आश्रम बनाकर तपश्चर्या में दिन बिताने लगे । यही स्यमन्त पंचक आगे चलकर कुरुक्षेत्र के नाम से विख्यात हुआ ।



जयद्रथ को मारने की अर्जुन की प्रतिज्ञा के समाचार जासूसों द्वारा कौरवों की छावनी में पहुंचे । जयद्रथ को जब अर्जुन की प्रतिज्ञा का हाल मालूम हुआ तो उसके मन में एकाएक यह विचार आया कि अब उसका अंत समय निकट आगया मालूम होता है । वह दुर्योधन के पास गया और बोला, "मुझे युद्ध की चाह नहीं । मैं अपने देश चला जाना चाहता हूं ।"

यह सुन दुर्योधन ने उसको धीरज बंधाया और बोला--"सैंधव ! आप भय न करें। आपकी रक्षा के लिए जब कर्ण, चित्रसेन, विविंशति, भूरिश्रवा, शल्य, वृषसेन, पुरुमित्र, जय, भोज, कांभोज, सुदक्षिण, सत्यव्रत, विकर्ण, दुर्मुख, दुःशासन, सुबाहु, कालिंगव, अवन्तिदेश के दोनों राजा, आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा, शकुनि आदि महारथी तैयार हैं तो फिर आपका यहांसे भयभीत होकर चला जाना ठीक नहीं। मेरी सारी सेना आपकी रक्षा करने के लिए नियुक्त की जायगी, आप् निःशंक रहें।" दुर्योधन के इस प्रकार आग्रह करने पर जयद्रथ ने उसकी बात मान ली।

इसके बाद जयद्रथ आचार्य द्रोण के पास गया और पूछा--"आचार्य ! आपने मुझे और अर्जुन को एक साथ ही अस्त्र-विद्या सिखाई थी। हम दोनों की शिक्षा में आपको कुछ अंतर भी प्रतीत हुआ था?"

द्रोण ने कहा-- "जयद्रथ, तुम्हें और अर्जुन को मैंने एक ही जैसी शिक्षा दी थी। दोनों की शिक्षा एक समान होने पर भी अपने लगातार अभ्यास और कठिन तपस्या के कारण अर्जुन तुम से बढ़ा-चढ़ा है, इसमें संदेह नहीं। पर तुम इससे भय न करना। कल हम ऐसे व्यूह की रचना करेंगे जिसे तोड़ना अर्जुन के लिए भी दुःसाध्य होगा। उस व्यूह के सबसे पिछले मोरचे पर तुम्हें सुरक्षित रक्खा जायगा। फिर तुम तो क्षत्रिय हो ! अपने पूर्वजों की परंपरा को कायम रखते हुए निर्भय होकर युद्ध करो। यमराज हम सबका पीछा तो कर ही रहे हैं--फर्क इतना ही है कि कोई आगे जाता है तो कोई पीछे। तपस्वी लोग जिस लोक को प्राप्त करते हैं उसे क्षत्रिय लोग युद्ध में बड़ी सुगमता के साथ प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए तुम डरो मत।"



सवेरा हुआ। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण ने सेना की व्यवस्था करने में ध्यान दिया। युद्ध के मैदान से बारह मील दूरी पर जयद्रथ को अपनी सेना एवं रक्षकों के साथ रखा गया। उसकी रक्षा के लिए भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन आदि महारथी अपनी सेनाओं के साथ

सुसज्जित तैयार थे। इन वीरों की सेना और पांडवों की सेना के बीच में आचार्य द्रोण ने एक भारी सेना को शकट-चक्र-व्यूह में रचा। शकट व्यूह के अंदर कुछ दूर आगे पद्मव्यूह बनाया। उससे आगे एक सूची-मुख-व्यूह रचा। इसी सूची-मुख-व्यूह के बीच में जयद्रथ को सुरक्षित रूप से रक्खा गया। शकट-व्यूह के द्वार पर द्रोणाचार्य रथ पर खड़े थे। उन्होंने सफेद वस्त्र पहने हुए थे। उनका कवच भी सफेद रंग का था और माथे पर उन्होंने सफेद शिरस्त्राण पहन रक्खा था। इस शुभ्र वेश में द्रोणाचार्य अपूर्व तेज के साथ प्रकाशमान हुए। उनके रथ में भूरे रंग के घोड़े जुते थे। रथ पर जो ध्वजा फहरा रही थी उसमें वेदी का चित्र अंकित था और मृग-छाला लगी हुई थी। हवा में उस ध्वजा को फहरते देखकर कौरवों का जोश बढ़ने लगा। व्यूह की मजबूती देखकर दुर्योधन को धीरज बंधा।



धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्मर्षण ने कौरव-सेना के आगे अपनी सेना लाकर खड़ी करदी। उस सेना में, एक हजार रथ, एक सौ हाथी, तीन हजार घोड़े, दस हजार पैदल और डेढ़ हजार धनुर्धारी वीर सुव्यवस्थित रूप से खड़े थे। अपनी इस सेना के आगे रथ पर खड़े दुर्मर्षण ने शंख बजाया और पांडवों को युद्ध के लिए ललकारा--

"कहां है वह अर्जुन जिसके बारे में लोगों ने उड़ा दिया कि वह युद्ध में हराया नहीं जा सकता? कहां है वह? आये तो सामने। अभी संसार देखता है कि वह वीर हमारी सेना से टकराकर उसी तरह फूट जाता है, जैसे पत्थरों से टकराकर मिट्टी का घड़ा।"

अर्जुन ने यह सुना और दुर्मर्षण की और अपनी सेना के बीच अपना रथ खड़ा कर दिया और शंख बजाया, जिसका अर्थ था कि उसने चुनौती स्वीकार करली है। उसके जवाब में कौरव-सेना में भी कई शंख बजने लगे।

"केशव! जरा उधर को रथ चलाइए जहां दुर्मर्षण की सेना है। उधर जो गज-सेना है उसको तोड़ते हुए अंदर घुसेंगे।" अर्जुन ने कहा।

दुर्मर्षण की सेना को अर्जुन ने तितर-बितर कर दिया। सेना उसी प्रकार इधर-उधर बिखर गई जैसे तेज़ हवा के चलने से बादल बिखर जाते हैं। यह देख दुःशासन बड़ा क्रुद्ध हुआ और एक भारी गजसेना लेकर उसने अर्जुन को घेर लिया।

दुःशासन बड़ा ही पराक्रमी था। अर्जुन और दुःशासन में भयानक लड़ाई छिड़ गई। अर्जुन के बाणों से गिरे वीरों की लाशों से सारा युद्ध-क्षेत्र पट गया। बड़ा वीभत्स दृश्य था। दुःशासन की सेना का जोश ठंडा हो गया और वह पीठ दिखाकर भाग खड़ी हुई। दुःशासन भी पीछे हटा और द्रोणाचार्य के पास भागा।

अर्जुन का रथ भी तेजी से चलता हुआ आचार्य के निकट जा पहुंचा।

"आचार्य! अपने प्रिय पुत्र को गंवाकर और दुःख से व्यथित होकर, सिंधुराज जयद्रथ की तलाश में आया हूं। अपनी प्रतिज्ञा मुझे पूर्ण करनी है, आप मुझे अनुगृहीत करें।" धनंजय ने विनती की।

आचार्य मुस्करा कर बोले— "अर्जुन, आज तो मुझे हराये बिना तुम जयद्रथ के पास नहीं जा सकोगे।" और दोनों में युद्ध छिड़ गया। आचार्य द्रोण ने धनुष तानकर अर्जुन पर बाणों की बौछार कर दी।

अर्जुन ने भी आचार्य को यथोचित्त उत्तर दिया। द्रोण ने अर्जुन के बाणों को सहज ही में काटकर गिरा दिया और आग के समान जलाने वाले कई तेज़ बाण मारकर अर्जुन और श्रीकृष्ण को बहुत घायल किया। तब अर्जुन आचार्य के धनुष को काट डालने के इरादे से तरकश से बाण निकाल ही रहा था कि इतने में द्रोण के एक बाण से अर्जुन के गांडीव की डोरी कट गई। यह देख द्रोण ने मुसकराते हुए अर्जुन पर, उसके घोड़े पर, रथ पर और उसके चारों ओर बाणों की वर्षा कर दी। उससे अर्जुन बड़ा क्रोधित हो गया और आचार्य पर हावी होने की इच्छा से कई बाणों को एक साथ तान कर छोड़ा।

लेकिन पल भर में ही आचार्य अर्जुन पर फिर से हावी होगये। बाणों की बेरोक-टोक वर्षा करके रथ-सहित अर्जुन को घने अंधकार में डाल दिया।

आचार्य द्रोण की रण-कुशलता और पराक्रम को देखकर वासुदेव ने अर्जुन से कहा–– "पार्थ ! अब देर लगाना ठीक नहीं। आचार्य को छोड़ चलो। ये थकने वाले नहीं हैं।"

यह कहकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ आचार्य की बाईं तरफ से होकर हांक दिया और दोनों शत्रु-सैन्य की ओर जाने लगे। यह देख आचार्य बोले–– "जा कहां रहे हो, अर्जुन? तुम तो शत्रु को परास्त किये बिना कभी युद्ध से हटते नहीं थे! अब भागे क्यों जा रहे हो? ठहरो तो!"

अर्जुन बोला–– "आप मेरे आचार्य हैं––शत्रु नहीं। मै आपका शिष्य हूं, पुत्र के समान हूं। आपको परास्त करने की सामर्थ्य तो संसार के किसी योद्धा में नहीं।" यह कहता हुआ अर्जुन घोड़ों को तेजी से दौड़ाता हुआ द्रोण के सामने से हट गया और कौरव-सेना की ओर चला।

अर्जुन पहले भोजों की सेना पर टूट पड़ा। कृतवर्मा और सुदक्षिण पर एक ही साथ हमला करके व उनको परास्त करके श्रुतायुध पर टूट पड़ा। ज़ोरों की लड़ाई छिड़ गई। श्रुतायुध के घोड़े मारे गये। इसपर उसने गदा उठाकर श्रीकृष्ण पर चला दी। पर निःशस्त्र और युद्ध में शरीक न होने वाले श्रीकृष्ण पर चलाई गई गदा श्रुतायुध को ही जा लगी और श्रुतायुध मृत होकर गिर पड़ा। यह उस वरदान का परिणाम था जो श्रुतायुध की मां ने उसके लिए प्राप्त किया था।



श्रुतायुध की माता पर्णाशा ने वरुण देवता से प्रार्थना की कि मेरा बेटा संसार में किसी शत्रु के हाथों न मारा जाय।

वरुण देवता पर्णाशा से बड़ा स्नेह करते थे। उन्होंने कहा–– "तुम्हारे पुत्र को मै एक दैवी हथियार प्रदान करूंगा। उसे लेकर यदि वह युद्ध करेगा तो कोई भी वीर उसे परास्त नहीं कर सकेगा। लेकिन शर्त यह है कि जो निःशस्त्र हो, युद्ध में शरीक न हुआ हो, उसपर यह शस्त्र नहीं चलाया जाना चाहिये। यदि चलाया गया तो उलटकर यह चलाने वाले का ही वध कर देगा।"

यह कहकर वरुण ने एक दैवी गदा पर्णाशा के पुत्र को प्रदान की। युद्ध के जोश में श्रुतायुध को यह शर्त याद न रही। इसीलिए उसने श्रीकृष्ण पर गदा चला दी। श्रीकृष्ण ने उस गदा को अपने वक्षस्थल पर ले लिया। परंतु मंत्र में त्रुटि होने पर जैसे मंत्र पढ़ने वाले के बस का भूत उलटकर उसीका वध कर देता है, उसी प्रकार श्रुतायुध की फेंकी हुई गदा उलटकर उसीको जा लगी। श्रुतायुध जमीन पर गिर पड़ा, जैसे आंधी के चलने से उखड़कर कोई भारी पेड़ गिर पड़ता है।

इस पर कांभोजराज सुदक्षिण ने अर्जुन पर जोरों का हमला कर दिया। किंतु अर्जुन ने उस पर बाणों की ऐसी वर्षा की कि उसका रथ चूर हो गया, कवच के टुकड़े-टुकड़े हो गए और छाती पर बाण लगने से कांभोजराज हाथ फैलाता हुआ धड़ाम से गिर पड़ा जैसे उत्सव समाप्त होने पर इंद्र-ध्वजाएं।

श्रुतायुध और कांभोजराज जैसे पराक्रमी वीरों का यह हाल हुआ देखकर कौरव-सेना में बड़ी घबराहट मच गई। इस पर श्रुतायु और अच्छुतायु नाम के दो वीर राजाओं ने अर्जुन पर दोनों तरफ से बाण वर्षा शुरू करदी। इससे दोनों में फिर से घोर-संग्राम शुरू होगया। अर्जुन बहुत घायल हो गया और थककर ध्वज-स्तंभ के सहारे खड़ा होगया। श्रीकृष्ण ने उसे आश्वासन दिया। थोड़ी देर मे अर्जुन ने अपनी थकान मिटा कर ताजा हो शत्रु-सेना पर फिर से बाण बरसाने शुरू कर दिये। देखते-देखते दोनों भाइयों को चिरनिद्रा में सुला दिया। यह देख उन दोनों के दो पुत्रों ने युद्ध शुरू कर दिया। उनको भी अर्जुन ने मृत्यु-लोक पहुंचा दिया और इस प्रकार अपना गांडीव हाथ मे लिये हुए, असंख्य वीरों का काम तमाम करता हुए अर्जुन आगे बढ़ता गया और कौरव-सेना-समुद्र को चीरता हुआ अंत में उस जगह जा पहुंचा जहां जयद्रथ अपनी सेना से घिरा खड़ा था।

: ८५ :

अभिमंत्रित कवच

उधर हस्तिनापुर में महाराज धृतराष्ट्र ने संजय से जब अर्जुन की विजयों का हाल सुना तो व्याकुल होकर कहने लगे--"संजय, जिस समय संधि की बातचीत करने श्रीकृष्ण हस्तिनापुर आए हुए थे, उसी समय मैंने दुर्योधन को सचेत किया था और कहा था कि संधि करने का यह अच्छा समय है। इसे हाथ से न जाने दो। अपने भाइयों से मेल करलो। श्रीकृष्ण हमारी ही भलाई के लिए आए हैं। उनकी बातों को ठुकराना नहीं। कितना समझाया था उसे। पर दुर्योधन ने मेरी एक न सुनी। दुःशासन और कर्ण की ही बात उसे ठीक जंची। काल का उकसाया हुआ वह विनाश के गर्त्त में गिरा हुआ है। फिर अकेले मैंने ही क्या, द्रोण ने, भीष्म ने, कृप ने, सभी ने उसे समझाया था कि युद्ध करने में कोई लाभ नहीं है। किंतु उस मूर्ख ने किसी की एक न सुनी। लोभ से उसकी बुद्धि फिर चुकी थी, मन कुविचारों से भर गया था। क्रोध का ही उसके मन पर राज था। ऐसा न होता तो युद्ध की बला मोल लेता ही क्यों।" यह कह धृतराष्ट्र ने ठंडी सांस ली।

यह सुन संजय बोला-- "राजन्! अब पछताने से क्या होता है? आपका शोक करना वैसा ही है जैसे पानी सूख जाने पर बांध लगाना। चाहिये तो यह था कि कुंती पुत्रों को जुए का निमंत्रण ही न देते। आपने तब क्यों नहीं रोका? यदि युधिष्ठिर को पांसा खेलने से रोकते तो आज यह दुःख क्योंकर होता? पिता के नाते आपका कर्त्तव्य था कि पुत्र को दबाकर रखते। यदि आपने ऐसा किया होता तो इस दारुण दुःख से बच गये होते। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ होते हुए भी आपने अपने विवेक से काम नहीं लिया।

बल्कि कर्ण और शकुनि की मूर्खता भरी सलाह मान ली। इस कारण आप श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, द्रोणादि की आंखों में गिर चुके हैं। अब आपके प्रति उनकी वह श्रद्धा नहीं रही जो पहले थी। श्रीकृष्ण ने आपके बारे में यह बात जान ली कि धार्मिकता आपकी बातों तक ही सीमित है। आपके मन में तो लोभ का निवास है। अतः राजन्, अब अपने पुत्रों की निंदा न कीजिये। इसमें दोषी तो आप ही हैं। अब तो आपके पुत्र क्षत्रियोचित धर्म के अनुसार अपनी भरसक चेष्टा कर ही रहे हैं। जान की परवाह न करके वे लड़ रहे हैं। जिस युद्ध का संचालन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, सात्यकि, भीम आदि महारथी कर रहे हों, उसमें आपके बेटों की एक नहीं चल सकती है। उन वीरों के आगे वे टिक नहीं सकते। पर फिर भी जितना उनसे बन पड़ता है उतना प्रयत्न तो आपके पुत्र कर ही रहे हैं। अब उनकी निंदा करना उचित नहीं है।"

शोक से व्याकुल धृतराष्ट्र भारी आवाज़ में बोले—"भैया संजय, मैं भी मानता हूं कि तुमने जो कहा है वह बिलकुल ठीक है। होनी को भला कौन टाल सका है? तो बताओ फिर क्या हुआ? चाहे वह मंगल-समाचार हो, चाहे अमंगल! जो कुछ हुआ उसका सही-सही हाल बताते ही जाओ।"

और संजय सुनाने लगा—



अर्जुन का रथ जयद्रथ की ओर जाते देख दुर्योधन बहुत चिंतित और दुःखी हुआ। तुरंत ही वह द्रोणाचार्य के पास पहुंचा और बोला—

"आचार्य! हमारे इस सेना-व्यूह को तोड़ता हुआ अर्जुन तो अंदर दाखिल होगया है। हमारी इस हार से जयद्रथ की रक्षा पर तैनात सैनिक लोग विचलित हो उठेंगे। सबको आशा थी कि आचार्य द्रोण से निबटे बिना अर्जुन कभी आगे नहीं जायगा। पर वह तो झूठी निकली। आपके देखते-देखते आपके सामने से अर्जुन अपना रथ आगे बढ़ा ले गया। मालूम होता है कि आप पांडवों का भला करने का मौका देखते रहते हैं। यह देख

कर मेरा मन बहुत अधीर हो उठा है। आप ही बताइये, मैंने आपका बिगाड़ा क्या है ? कौन-सा ऐसा अपराध मुझ से हुआ, जो इस तरह आप मेरा साथ छोड़ रहे हैं ? यदि पहले ही आपका इरादा मुझे मालूम हो जाता तो जयद्रथ को कभी यहां ठहरने के लिए आग्रह नहीं करता। उसने तो मुझ से कहा था कि मैं अपने देश को वापिस जाना चाहता हूं। परंतु मैंने ही उसको नहीं जाने दिया। मुझसे यह बड़ी भूल हो गई। यदि अर्जुन जयद्रथ पर आक्रमण करता है तो फिर जयद्रथ के प्राण नहीं बचने के! मेरी तो समझ में नहीं आता कि क्या करूं?"

दुर्योधन को इस प्रकार विलाप करते देख द्रोणाचार्य बोले--"दुर्योधन, यद्यपि इस समय तुमने बहुत-सी अनुचित बातें कही हैं फिर भी मुझे तुम पर कोई क्रोध नहीं है। तुम्हें मैं अपने पुत्र के समान ही मानता हूं। मेरे लिए जैसे अश्वत्थामा, वैसे तुम। अतः तुमको तो मैं जो कुछ कहूं, वही करना चाहिये। यह कवच लो! इसे तुम पहनलो और जाकर अर्जुन का डट कर मुकाबला करो। मुझे यहां से हटना नहीं है; क्योंकि देखो, बाणों की बौछार हो रही है और पांडवों की सेना तेजी से हमारी ओर बढ़ती चली आ रही है। अर्जुन दूसरी ओर गया है, इधर युधिष्ठिर अकेला है, उसीको जीवित पकड़ने के लिए हमने यह प्रबंध किया है। मैं सोचता हूं कि उसे पकड़कर तुम्हारे हाथों सौंप दूं तो मेरा एक काम पूरा हो। इस काम को छोड़कर मैं अर्जुन का पीछा करने नहीं जा सकता। यदि मैं व्यूह का द्वार छोड़कर अर्जुन की खोज में चला जाऊंगा तो भारी अनर्थ हो जायगा। मैंने जो कवच तुमको दिया है उसे पहनकर चले जाओ। भय न करो। तुम बड़े शूर हो और साथ ही रणकुशल भी। इस कवच पर किसी भी हथियार का वार होने पर तुम्हें तकलीफ नहीं होगी। किसी हथियार का इस पर प्रभाव नहीं होगा। यह मेरा अभिमंत्रित कवच है। इससे तुम्हारे शरीर की रक्षा होगी। जैसे देवराज इंद्र ब्रह्मा से कवच प्राप्त कर युद्ध-क्षेत्र में गये थे वैसे ही मेरे हाथों कवच पहनकर तुम भी युद्ध के लिए प्रस्थान करो। तुम्हारा कल्याण हो।"

आचार्य के ये वचन सुनकर और उनके हाथों दैवी कवच प्राप्त कर दुर्योधन की हिम्मत बंधी। आचार्य के कहे अनुसार एक बड़ी सेना को लेकर वह अर्जुन के मुकाबले को चला।



इधर अर्जुन कौरव-सेना को पीछे छोड़कर तेज़ी से आगे बढ़ता गया। बहुत दूर चले जाने के बाद श्रीकृष्ण ने देखा कि घोड़े थके हुए हैं। उन्होंने रथ खड़ा किया कि घोड़े ज़रा सुस्ता लें। इतने में विंद और अनुविंद नाम के दो वीर भाइयों ने अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन ने उनका मुकाबला किया और उनकी सेना तितर-बितर करके उन दोनों भाइयों को भी मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद श्रीकृष्ण ने घोड़े रथ से खोल दिये। थोड़ी देर थकान मिटा लेने के बाद रथ जोत कर फिर जयद्रथ की ओर तेज़ी से चल दिये।



इतने में दूर पर दुर्योधन को आता देख श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सचेत करते हुए कहा--

"धनंजय! वह देखो, पीछे दुर्योधन आ रहा है। चिरकाल से मन में क्रोध की जो आग दबा रक्खी है, आज उसे प्रकट करो। इस अनर्थ की जड़ को जलाकर भस्म करदो। इससे अच्छा अवसर फिर कभी नहीं मिलेगा। आज यह तुम्हारा शत्रु तुम्हारे बाणों का लक्ष्य बनने को आ रहा है। स्मरण रहे--यह महारथी है। दूर से ही आक्रमण करने की सामर्थ्य रखता है। अस्त्र-विद्या का कुशल जानकार है। जोश के साथ युद्ध करने वाला है। शरीर का गठीला और बली है।"

यह कह श्रीकृष्ण ने रथ घुमा दिया और अर्जुन ने एकाएक दुर्योधन पर हमला कर दिया।



इस अचानक आक्रमण से दुर्योधन ज़रा भी न घबराया। वह बोला--"अर्जुन! सुना तो बहुत है कि तुमने बड़े वीरोचित कार्य किये हैं; किंतु

तुम्हारी वीरता का सही परिचय हमें तो अभी तक मिला नहीं है। ज़रा देखें तो कि तुम में कौन-सा ऐसा पराक्रम है कि जिसकी इतनी प्रशंसा सुनने में आ रही है।" और दोनों में घोर संग्राम छिड़ गया।



"पार्थ ! यह कैसे अचरज की बात है ? क्या वजह है कि तुम्हारे चलाये बाण आज दुर्योधन को ज़रा भी चोट नहीं पहुंचाय रहे हैं ? गांडीव धनुष से बाण निकले और शत्रु पर उसका प्रभाव न हो ! यह तो कभी नहीं देखा था। आज ऐसा क्यों हो रहा है ? मुझे इस बात की कभी भी आशा न थी। अर्जुन ! तुम्हारी पकड़ में ढील तो नहीं रहती ? भुजाओं का बल तो कम नहीं हो गया ? गांडीव की तनावट स्वाभाविक है ? फिर क्या बात है जो तुम्हारे बाण दुर्योधन पर असर नहीं करते ?" श्रीकृष्ण आतुर होकर बोले।

अर्जुन ने कहा— "सखा कृष्ण ! मेरा खयाल है कि इसने आचार्य द्रोण से अभिमंत्रित कवच पा लिया है और उसीको यह पहने हुए है। आचार्य ने इस कवच का भेद मुझे भी बताया था। उन्होंने जरूर ही वह कवच इसके शरीर पर पहनाया होगा। स्वयं दुर्योधन इसे नहीं पहन सकता। दूसरे द्वारा पहनाये हुए कवच को दुर्योधन ठीक उसी तरह ओढ़े खड़ा है जैसे बोझा लदा हुआ बैल। आप अभी मेरी कुशलता की बानगी देखिए।" और कहते-कहते अर्जुन ने ऐसी तेजी से बाण चलाये कि पलक मारते-मारते दुर्योधन के घोड़े और सारथी मारे गये और रथ चूर-चूर हो गया। थोड़ी ही देर में अर्जुन ने दुर्योधन का धनुष काट डाला और चमड़े के दस्ताने फाड़ दिये। दुर्योधन के शरीर का वह भाग जो कवच से ढका नहीं था, अर्जुन के बाणों से बुरी तरह भिद गया। इस प्रकार अर्जुन ने दुर्योधन को बेहद परेशान किया। अर्जुन के बाणों से दुर्योधन के हाथ, पांव, नाख़ून, उंगलियां तक बिध गये। अंत में दुर्योधन को हार माननी ही पड़ी।



दुर्योधन समर-भूमि में पीठ दिखाकर भाग खड़ा हुआ। यह देख

श्रीकृष्ण ने अपना पांचजन्य शंख बजाया और बड़े जोर से विजयनाद किया।

जयद्रथ की रक्षा पर नियुक्त वीरों ने जब यह सुना तो उनके दिल एकबारगी दहल उठे और भूरिश्रवा, कर्ण, कृप, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ आदि आठों रथ पर सवार हो कर अर्जुन के मुकाबले पर आगये।

: ८६ :

युधिष्ठिरकी चिन्ता

दुर्योधन को अर्जुन का पीछा करते देखकर पांडव-सेना ने शत्रुओं पर और भी जोर का हमला कर दिया। धृष्टद्युम्न ने सोचा कि जयद्रथ की रक्षा करने को यदि द्रोण भी चले गये तो अनर्थ ही हो जायगा। इस कारण द्रोणाचार्य को रोके रखने के इरादे से उन्होंने द्रोण पर लगातार आक्रमण जारी रक्खा। धृष्टद्युम्न की इस चाल के कारण कौरव-सेना तीन हिस्सों में बंट कर कमजोर पड़ गई।

मौका देखकर धृष्टद्युम्न ने अपना रथ आचार्य के रथ से टकरा दिया। दोनों के रथ एक-दूसरे से भिड़ गये। राजकुमार के रथ के कबूतरी रंग के घोड़े और आचार्य के रथ के भूरे रंग के घोड़े एक साथ खड़े हो जाने से ऐसे शोभायमान हुए जैसे सूर्यास्त के समय की मेघ-माला! वह दृश्य बड़ा ही सुहावना था। इतने में धृष्टद्युम्न ने अपना धनुष फेंक दिया और ढाल-तलवार लेकर द्रोणाचार्य के रथ पर उछलकर जा चढ़ा और द्रोण पर पागलों की भांति वार करने लगा। अपने जन्म के वैरी पर धृष्टद्युम्न ऐसे ही झपटा जैसे मरे जानवर पर चील-कौवे झपटते हैं। उसकी आंखों में निठुरता और खून की प्यास झलक रही थी! काफी देर तक धृष्टद्युम्न का हमला जारी रहा। अंत में द्रोण ने क्रोध में आकर एक पैना बाण चलाया। वह पांचालकुमार के प्राण ही ले लेता, यदि सात्यकि का बाण उसे बीच में ही न काट देता। अचानक सात्यकि के बाण रोक लेने पर द्रोण का ध्यान

उसकी ओर फिर गया। इसी बीच पांचाल-सेना के रथ-सवार धृष्टद्युम्न को वहां से हटा ले गये।



काले नाग के समान फुफकार मारते हुए व लाल-लाल आंखों से चिनगारियां बरसाते हुए द्रोणाचार्य सात्यकि पर टूट पड़े। पर सात्यकि भी कोई मामूली वीर न था। पांडव सेना के सब से चतुर योद्धाओं में सात्यकि का स्थान था। जब उसने द्रोणाचार्य को अपनी ओर झपटते देखा तो वह खुद भी उनकी ओर झपट चला।

चलते-चलते सात्यकि ने अपने सारथी से कहा-- "सारथी! ये हैं आचार्य द्रोण, जो अपनी ब्राह्मणोचित वृत्ति छोड़कर धर्मराज को पीड़ा पहुंचाने वाले क्षत्रियोचित काम करने पर उतारू हुए हैं। इन्हीं के कारण दुर्योधन को घमंड हो गया है। अपनी शूरता का इन्हें इतना गर्व है कि सदा उसी में ये भूले रहते हैं। चलाओ वेग से अपना रथ। जरा इनका दर्प भी चूर करें।

सात्यकि का यह इशारा पाते ही सारथी ने घोड़े छोड़ दिये। चांदी-से सफेद चमकने वाले घोड़े हवा से बातें करते हुए द्रोणाचार्य की ओर सात्यकि का रथ ले दौड़े। पास पहुंचते-पहुंचते सात्यकि और द्रोण, दोनों ने एक-दूसरे पर बाण बरसाने शुरू कर दिये। उन दोनों के धनुष से निकले बाणों ने सूरज को ढंक दिया, जिससे युद्ध के मैदान पर चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा छा गया। दोनों ओर से चमकते हुए माराच-बाण ऐसे सनसनाते चले, जैसे केंचुली उतरे हुए काले नाग। दोनों के रथों की छतें और ध्वजाएं टूट कर गिर पड़ीं। दोनों के शरीर में से खून बह निकला। उस भीषण युद्ध को देखकर दूसरे वीर तो अपना लड़ना भी भूल गये। सबने अपनी-अपनी लड़ाई बंद करदी और अवाक्-से खड़े होकर द्रोण और सात्यकि का युद्ध देखने लगे। इससे एकबारगी वीरों का गरजना, सिंहनाद करना, शंख, तुरही आदि बाजों का बजना, सब एकदम बंद हो गया। सात्यकि और द्रोण एक-दूसरे पर विविध शस्त्रास्त्रों का वार करके जिस प्रकार का

भयानक द्वंद्व-युद्ध कर रहे थे, उसे देखने के लिए देवता, विद्याधर, गंधर्व, यक्ष आदि की भारी भीड़ आकाश-वीथि में लग गई ।

•

द्रोण का धनुष सात्यकि की बाण-वर्षा से कट गया । लेकिन पलक मारते ही द्रोण ने दूसरा धनुष लेकर उसकी डोरी चढ़ा ली । पर सात्यकि ने उसे भी तुरत काट दिया । द्रोण ने फिर एक और धनुष उठा लिया । वह भी कट गया । इस तरह द्रोण के एक-एक करके एक सौ एक धनुष सात्यकि ने काट गिराये । 'सात्यकि तो धनुर्धर रामचंद्र, कार्त्तिकेय, भीष्म और धनंजय आदि कुशल योद्धाओं की टक्कर का वीर है ।' द्रोण मन-ही-मन सात्यकि की सराहना करने लगे ।

सात्यकि ने और भी कुशलता का परिचय दिया । जिस अस्त्र का द्रोण प्रयोग करते, उसी अस्त्र का उसी तरह सात्यकि भी द्रोण पर प्रयोग करता । इस तरह बहुत देर दोनों वीर लड़ते रहे । फिर धनुर्वेद के आचार्य द्रोण ने सात्यकि के वध के उद्देश्य से आग्नेयास्त्र चलाया, पर उसी क्षण सात्यकि ने वरुणास्त्र छोड़ कर द्रोण के अस्त्र का प्रभाव होने ही न दिया । इस प्रकार बहुत देर तक युद्ध चलता रहा । अंत में धीरे-धीरे सात्यकि कुछ कमज़ोर पड़ने लगा। यह देख कौरव-सेना में खुशी की लहर दौड़ गई ।

पर इसी बीच युधिष्ठिर को पता चला कि सात्यकि पर संकट आया हुआ है तो वे अपने आस-पास के वीरों से बोले-- "कुशल योद्धा नरोत्तम और सच्चे वीर सात्यकि द्रोण के बाणों से बहुत ही पीड़ित हो रहे हैं । चलो, हम सब लोग उधर चलकर उस वीर महारथी की सहायता करें ।"

उसके बाद वह धृष्टद्युम्न से बोले-- "द्रुपद-कुमार ! आपको अभी जाकर द्रोणाचार्य पर आक्रमण करना चाहिए, नहीं तो डर है कि कहीं आचार्य के हाथों सात्यकि का वध न हो जाय । अब आप किसीका इंतजार न करें । इसी समय रवाना हो जायं । सात्यकि को समय पर ही सहायता पहुंच जानी चाहिए । मुझे आज आचार्य की ओर से बड़ा खतरा मालूम होता है । कोई बालक जैसे पक्षी को रस्सी से बांध कर उसे उड़ाता हुआ

उससे खेल करे, उसी प्रकार सात्यकि के साथ युद्ध करते हुए द्रोण बड़ा आनंद मना रहे हैं और सात्यकि कमजोर पड़ रहा है। वह अधिक देर आचार्य के सामने टिक नहीं सकेगा। अतः आप जल्दी-से-जल्दी जाकर उसकी सहायता करें। अपने साथ और वीरों को भी लेते जायं।" यह कह युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न के साथ द्रोण पर हमला करने के लिए एक बड़ी सेना भेज दी। समय पर कुमुक पहुंच जाने पर भी बड़े परिश्रम के बाद सात्यकि को द्रोण के फंदे से छुड़ाया जा सका।

इसी समय श्रीकृष्ण के पांचजन्य की ध्वनि सुनाई दी। यह आवाज सुनकर युधिष्ठिर चिंतित हो गये।

"सात्यकि ! सुना तुमने ! अकेले पांचजन्य की आवाज ही सुनाई दे रही है और गांडीव-धनुष की टंकार नहीं सुनाई देती है। अर्जुन को कहीं कुछ हो तो नहीं गया ? मेरा मन सशंकित हो रहा है। जान पड़ता है, जयद्रथ के रक्षकों से घिर कर अर्जुन संकट में पड़ गया है। आगे सिंधुराज की सेना है और पीछे द्रोणाचार्य की, अर्जुन बीच में फंस गया मालूम होता है। अर्जुन शत्रु सैन्य में सुबह का घुसा है और अब तो दिन ढलने को आया है और बार-बार पांचजन्य की ही आवाज सुनाई दे रही है। कहीं अर्जुन को कुछ हो गया हो और वासुदेव ही अकेले लड़ने लगे हों ! सात्यकि तुम्हारे लिए कोई ऐसा काम नहीं जो असाध्य हो। अर्जुन तुम्हारा मित्र है--आचार्य भी है। उसे जरूर विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा होगा। इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। फिर अर्जुन की तुम्हारे प्रति ऊंची धारणा है। कितनी ही बार उसे मैंने तुम्हारी प्रशंसा करते सुना है। जब हम बनवास में थे तब अर्जुन ने मुझसे कहा था कि सात्यकि जैसा सच्चा वीर कहीं ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। उस ओर तो देखो ! भयानक युद्ध के कारण आकाश में कैसी धूल उड़ रही है ! अर्जुन जरूर शत्रुओं से घिरा हुआ है और संकट में है। जयद्रथ कोई साधारण वीर नहीं है। वह बड़ा पराक्रमी है। फिर उसकी खातिर अपने प्राणों की बाजी लगा देने को आज कई महारथी तैयार हैं।

तुम अभी इसी घड़ी अर्जुन की सहायता को चले जाओ।" इतना कहते-कहते युधिष्ठिर बहुत ही अधीर हो उठे।

युधिष्ठिर के इस प्रकार आग्रह करने पर सात्यकि ने बड़ी नम्रता से कहा—"धर्म पर अटल रहने वाले युधिष्ठिर! आपकी आज्ञा मेरे सिर आंखों पर है। और फिर अर्जुन के लिए मैं क्या न करूंगा? उसकी खातिर मै अपने प्राणों को भी न्यौछावर करने के लिए सदा तैयार हूं। आपकी आज्ञा होने पर मै मनुष्य तो क्या, देवताओं तक पर टूट पड़ने में न हिचकूंगा। पर सारी बातों को भली प्रकार समझने वाले वासुदेव और अर्जुन मुझे जो आदेश दे गये हैं, आपसे उसका निवेदन करना अनुचित न होगा। वासुदेव और अर्जुन ने मुझसे कहा था कि 'जब तक हम दोनों जयद्रथ का वध करके न लौटें तब तक तुम युधिष्ठिर की रक्षा करते रहना। खूब सावधान रहना! असावधानी से काम न लेना। तुम्हारे ही भरोसे हम युधिष्ठिर को छोड़े जाते है। एक द्रोण ही है जिनसे हमें सतर्क रहना है। उन्हींसे खतरा होने की आशंका है; क्योंकि द्रोण की प्रतिज्ञा तो तुम जानते ही हो। अतः युधिष्ठिर की रक्षा का भार तुम्हारे ही ऊपर है।' महाराज, वासुदेव और अर्जुन मुझे ये आदेश दे गये हैं और मुझपर इतना भरोसा करके यह भारी जिम्मेदारी डाल गये है। म उनकी बात को कैसे टालूं? आप अर्जुन की जरा भी चिंता न करें। अर्जुन को कोई नहीं जीत सकता। वह द्रोण के समान ही वीर और धनुर्धारी है। विश्वास रखिये कि सिंधुराज और दूसरे महारथी अर्जुन के आगे टिक नहीं सकेंगे। मै कहता हूं कि वे सभी अर्जुन के सोलहवें हिस्से की भी बराबरी नहीं कर सकते। मै जाऊं भी तो यहां आपको किसकी रक्षा में छोड़ जाऊं? मुझे तो यहां पर कोई ऐसा वीर नहीं दीखता जो द्रोण के हमले का मुकाबला कर सके। इसलिये आप आगा-पीछा सोच-समझकर ही मुझे आज्ञा दीजिए।"

यह सुन युधिष्ठिर ने कहा—"बहुत कुछ सोच-विचार कर लेने के बाद निष्पक्ष होकर ही मै तुम्हें जाने को कह रहा हूं। तुम्हारे लिए मेरी

यही आज्ञा है। यहां मेरी रक्षा के लिए महाबली भीमसेन हैं, धृष्टद्युम्न हैं, और भी कितने ही वीर हैं। अतः तुम मेरी चिंता न करो।"

यह कह युधिष्ठिर ने सात्यकि के रथ पर हर तरह के अस्त्र-शस्त्र और युद्ध सामग्री रखवा दी और खूब विश्राम करके ताजे हो रहे घोड़े भी जुतवा दिये और आशीर्वाद देकर सात्यकि को विदा किया।

"भीमसेन! धर्मराज युधिष्ठिर की अच्छी तरह से देखभाल और रक्षा करना।" यह कह सात्यकि रथ पर सवार होकर अर्जुन की ओर रवाना हो गया।



रास्ते में कौरव-सेना ने सात्यकि का डटकर मुकाबला किया। पर सात्यकि उनकी भारी सेना को तितर-बितर करता हुआ आगे बढ़ता गया। इस तरह वह कई शत्रुओं से लड़ता-लड़ता बड़ी देर बाद अर्जुन के पास पहुंच सका।

उधर जैसे ही सात्यकि युधिष्ठिर को छोड़ कर अर्जुन की ओर चला, वैसे ही द्रोणाचार्य ने पांडव-सेना पर हमले करने शुरू कर दिये। पांडव-सेना की पंक्तियां कई जगहों से टूट गईं और उन्हें पीछे हटना पड़ गया। यह देख युधिष्ठिर बड़े चिंतित हो उठे।

: ८७ :

युधिष्ठिर की कामना

"अर्जुन अभी तक लौटा नहीं और न सात्यकि की ही कोई खबर आई। भैया भीम, मेरा मन शंकित हो रहा है। बार-बार पांचजन्य बज रहा है, किंतु गांडीव की टंकार सुनाई नहीं दे रही है! इससे मन में भय-सा छा रहा है। वीर सात्यकि मेरे लिए प्राणों से भी प्यारा था। उसे मैंने अर्जुन की सहायता के लिए भेजा। न जाने अभी तक वह भी क्यों नहीं लौटा?

भैया, मेरी तो चिंता बढ़ रही है। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूं ?" भीमसेन से इस प्रकार कहकर धर्मराज चिंताकुल हो उठे। उन्हें कुछ न सूझा कि क्या करें ! किंकर्त्तव्यविमूढ़ से होकर इधर-उधर टहलने लगे। यह देख भीमसेन बोला-- "भैया, मैंने आपको इतना अधीर कभी नहीं देखा। आप क्यों इस तरह धीरज खो रहे हैं ? आप जो भी कहें, मैं करने को तैयार हूं। मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूं ? आप मन में उदासी न आने दें।"

युधिष्ठिर ने कहा-- "भैया ! मुझे तो ऐसा भय हो रहा है कि हमारे प्यारे अर्जुन को जरूर कुछ हुआ है। अर्जुन सकुशल होता तो गांडीव की टंकार अवश्य सुनाई देती। अर्जुन की अनुपस्थिति मे अब स्वयं माधव हथियार लेकर लड़ रहे दीखते हैं। यही कारण है कि गांडीव की टंकार सुनाई नहीं पड़ रही है। इस सारी परेशानी में मुझे सूझ नहीं पड़ता कि क्या करूं। मन उद्भ्रांत-सा हो रहा है। भीम ! यदि मेरा कहा मानो तो तुम भी अर्जुन के पास चले जाओ और सात्यकि और अर्जुन का हालचाल मालूम करो और इसके लिए जो कुछ करना जरूरी हो वह करके वापस आकर मुझे सूचना दो। मेरा कहा मानकर ही सात्यकि अर्जुन की सहायता को कौरव-सेना से युद्ध करता हुआ गया है। तुम भी उसके पीछे-पीछे जिधर वह गया है उधर ही जाओ। यदि उनको तुम कुशलपूर्वक पाओ तो सिंहनाद करना। मै समझ लूंगा कि सब कुशल है।"

भीमसेन ने युधिष्ठिर की बात का प्रतिवाद नहीं किया। सिर्फ़ इतना ही कहा-- "राजन्, आप जरा भी चिंता न करें। मैं इसी समय जाकर उनका कुशल-समाचार लाता हूं और आपको उनकी खबर देता हूं।" और वह धृष्टद्युम्न से बोला-- "पांचाल कुमार ! आचार्य द्रोण के इरादे से तो आप परिचित ही हैं। किसी-न-किसी तरह धर्मपुत्र युधिष्ठिर को जीवित ही पकड़ने का उनका प्रण है। राजा की रक्षा करना ही हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। जब वे स्वयं मुझे जाने की आज्ञा दे रहे हैं तो उसका भी पालन करना मेरा धर्म हो जाता है। इस कारण युधिष्ठिर को तुम्हारे

ही भरोसे पर छोड़ कर जा रहा हूं। इनकी भलीभांति रक्षा करना।"

धृष्टद्युम्न ने कहा— "तुम किसी प्रकार की चिंता न करो और निश्चिंत होकर जाओ। विश्वास रखो कि मेरा वध किये बिना द्रोण युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सकेंगे।" आचार्य द्रोण के जन्म के बैरी धृष्टद्युम्न के इस प्रकार विश्वास दिलाने पर भीम निश्चिंत होकर तेजी से अर्जुन की तरफ चल दिया।



अर्जुन की सहायता के लिए जाते हुए भीमसेन को कौरव-सेना के वीरों ने आ घेरा और उसका रास्ता रोकने की चेष्टा की। लेकिन जैसे शेर छोटे-मोटे जानवरों को खदेड़ देता है, उसी प्रकार भीमसेन ने शत्रु-सेना को तितर-बितर कर दिया। रास्ते में भीम के हाथों धृतराष्ट्र के ग्यारह बेटे मारे गये। भीम इस तरह जाते-जाते द्रोण के पास पहुंच गया। आचार्य द्रोण उसका रास्ता रोककर बोले— "भीमसेन! मैं तुम्हारा शत्रु हूं। मुझे परास्त किये बिना तुम आगे नहीं बढ़ सकोगे। मेरी अनुमति पाकर ही तुम्हारा भाई अर्जुन व्यूह में दाखिल हुआ है। पर तुम्हें मैं जाने की इजाज़त नहीं दूंगा।"

आचार्य का खयाल था कि अर्जुन की भांति भीमसेन भी उनके प्रति आदर प्रकट करेगा।

किंतु भीमसेन तो उल्टा गुस्सा हो गया। बोला— "ब्राह्मणश्रेष्ठ! अर्जुन सेना में घुस पाया है तो आपसे इजाज़त लेकर नहीं, बल्कि अपने पराक्रम के बूते पर व्यूह तोड़कर वह अंदर दाखिल हुआ है। अर्जुन ने आप पर दया की होगी। परंतु आप मुझसे ऐसी आशा न रखिये। मैं आपका शत्रु हूं। एक समय था, जब आप हमारे आचार्य थे, पिता-समान थे। तब हम आपको पूजते थे। लेकिन अब जबकि आपने स्वयं कहा है कि आप हमारे शत्रु हैं तो फिर वही होगा, जो शत्रु के साथ होना चाहिए।" और यह कहते-कहते भीम गदा घुमाता हुआ द्रोण पर टूट पड़ा और द्रोण का रथ चूर-चूर हो गया। द्रोण को दूसरे रथ पर सवार होना पड़ा।

भीम ने उसे भी चकनाचूर कर दिया। इस तरह गदा घुमाते हुए चारों ओर के सैनिकों को भी तितर-बितर करके भीमसेन व्यूह के अंदर घुस गया।

उस दिन द्रोणाचार्य के एक-एक करके कई रथ चूर किये गये। भीमसेन कौरव-सेना को चीरता-फाड़ता जा रहा था कि इतने में भोजों ने उसका सामना किया। उनको भीम ने तहस-नहस कर दिया और वह बराबर आगे बढ़ता ही गया। जितने भी सैन्य दल मुकाबले पर आये उन्हें मारता-गिराता अंत में भीम उस स्थान पर पहुंच गया जहां अर्जुन जयद्रथ की सेना से लड़ रहा था।

अर्जुन को सुरक्षित देखते ही भीमसेन ने सिंहनाद किया। भीम का सिंहनाद सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुन आनंद के मारे उछल पड़े और उन्होंने भी जोरों से सिंहनाद किया।

इन सिंहनादों को सुनकर युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके मन से शोक के बादल हट गये। उन्होंने अर्जुन को मन-ही-मन आशीर्वाद दिया। वे सोचने लगे—

"अभी सूरज डूबने से पहले अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेगा और जयद्रथ का वध करके लौट आवेगा। हो सकता है, जयद्रथ के वध के बाद दुर्योधन शायद संधि करले। किंतु क्या ऐसा संभव होगा? अपने भाइयों का इस प्रकार मारा जाना देखकर उसको सही रास्ते पर तो आना ही होगा। कितने ही प्रतापी राजा-महाराजाओं और प्रसिद्ध योद्धाओं को मैदान में काम आया देखकर भी क्या दुर्योधन की बुद्धि ठिकाने नहीं आयेगी? जब पितामह भीष्म का भी पतन होगया तो फिर कम-से-कम रहे-सहे लोगों का नाश न होने देने का क्या कोई उपाय नहीं हो सकेगा? क्या ही अच्छा होता यदि कोई रास्ता निकल पाता।" इस प्रकार युधिष्ठिर के मन में विचार उठने लगे।

इधर तो युधिष्ठिर मन-ही-मन शांति स्थापना की कामना कर रहे थे और उधर उस मोरचे पर, जहां भीम, सात्यकि और अर्जुन थे, घोर संग्राम हो रहा था। संसार किस रास्ते चले और उसके लिए घटना-चक्र का रुख

कैसा हो आदि बातें एक ईश्वर को छोड़कर और कौन जान सकता है? ईश्वर का ही किया सब कुछ हो रहा है।

: ८८ :

कर्ण और भीम

युद्ध के मैदान में एक स्थान पर सात्यकि और भूरिश्रवा, दूसरे स्थान पर कर्ण और भीम और तीसरे स्थान पर अर्जुन और जयद्रथ के बीच ऐसा घोर संग्राम छिड़ा हुआ था कि जैसा किसीने उस समय तक न देखा था, न सुना था। द्रोणाचार्य पांडवों के हमलों की बाढ़ रोकते और उनपर जवाबी हमले करते हुए व्यूह के द्वार पर ही डटे रहे। थोड़े ही समय में जिस स्थान पर अर्जुन और जयद्रथ का युद्ध हो रहा था, दुर्योधन भी वहां आ पहुंचा। मगर थोड़ी ही देर में बुरी तरह हार कर मैदान छोड़ भाग खड़ा हुआ।

इस भांति उस रोज कई मोरचों पर जोरों से युद्ध हो रहा था। दोनों पक्ष के लोगों को जहां आगे के शत्रु-सैन्य से लड़ना पड़ता था, वहां पिछली तरफ से भी शत्रु के आक्रमण को संभालना पड़ रहा था।

युद्ध का कुछ निर्णय न होता देख दुर्योधन आचार्य द्रोण के पास आया और अपनी आदत के अनुसार उन्हें जली-कटी सुनाने लगा--

"गुरुदेव! अर्जुन, भीम और सात्यकि हमारी सेना की परवाह न करके आगे बढ़ आए हैं और अब सिंधुराज तक जा पहुंचे हैं। वहीं अर्जुन से भीषण युद्ध हो रहा है। आश्चर्य की बात है कि जिस व्यूह की रक्षा आप कर रहे हैं, वह इतनी सुगमता से कैसे तोड़ा जा सका? हमारे सारे मनसूबे मिट्टी में मिल गये। लोग मुझसे पूछते हैं कि वीर, पराक्रमी और धनुर्विद्या के आचार्य द्रोणाचार्य ने इन नौसिखियों के हाथों ऐसी मुंह की कैसे खाई? मैं उन्हें कैसे समझाऊं? आपने मुझ कहींका नहीं रखा। आपके होते हुए

भी मैं अनाथ-सा हो रहा हूं ।"

द्रोण ने सदा की भांति उसे सांत्वना देते हुए कहा--

"दुर्योधन, तुम जो सदा मेरी निंदा ही किया करते हो, वह न तो धर्म के अनुकूल है, न सच्चाई के ही । जो हुआ सो हुआ । अब उसपर सिर खपाने से फ़ायदा ? पिछले को भूल कर आगे के कामों पर विचार करो ।"

दुर्योधन का चित्त ठिकाने नहीं था । वह बोला--

"जो कुछ करना-धरना है उसपर आप ही भलीभांति सोच-विचार लें और किसी निश्चय पर पहुंचें । इतना मैं और कहे देता हूं कि योजना जो भी बने, उसे तुरंत ही कार्यरूप मे परिणत करना चाहिए ।"

द्रोण ने कहा-- "बेटा दुर्योधन, सोचने की तो कई बातें हैं । यह बात सही है कि तीन महारथी हमें लांघ कर आगे बढ़ गये हे । परंतु उनके आगे बढ़ जाने से हमपर जितना खतरा आ सकता है, पीछे हमारे होने के कारण उनपर भी उतना ही खतरा हो सकता है । उनके आगे और पीछे, दोनों तरफ़ हमारी सेनाएं खड़ी हे । इस दशा में कहना चाहिए कि उनपर ही खतरा अधिक है । इसलिए तुम्हें हिम्मत न हारनी चाहिए । तुम तो जयद्रथ की सहायता को जाओ और वहां जो कुछ करना आवश्यक हो वह करो । बेकार की चिंता करने से तो बेमौत मरना होता है । इससे कोई लाभ तो होता नहीं । मेरा तो यहीं पर रहना ठीक होगा । जब कभी तुम्हें कुमुक और युद्ध-सामग्री की ज़रूरत होगी यहांसे भेज दिया करूंगा । मुझे यहां पांचालों और पांडवों के हमले को रोकने के लिए मोर्चे को संभाले रखना चाहिए ।"

आचार्य के कहने-सुनने पर दुर्योधन कुछ सेना लेकर फिर से लड़ाई के उस मोर्चे पर चला गया जहां अर्जुन और जयद्रथ में ज़ोरों की लड़ाई हो रही थी ।

आजकल की युद्ध-प्रणाली में कभी-कभी दुश्मन की मोर्चेबंदियों को एक तरफ छोड़कर आगे बढ़ना भी ख़ास तरीका माना गया है । इस भांति दुश्मन की सेना को एक ओर छोड़कर, उसकी परवाह न कर, आगे बढ़

निकलने से फायदे भी होते हैं और नुकसान भी। पिछले विश्व-युद्ध के समय, दोनों पक्ष के युद्ध-विद्या के जानकारों ने प्रयोग करके, इस तरीके से काम लिया था। शत्रु की सेना से हर मोर्चे पर लड़ते हुए समय गंवाने के बजाय, जहां आवश्यक न हो, वहां शत्रु-सेना को एक ओर छोड़कर आगे बढ़ जाने के इस तरीके को अंग्रेजी मे 'बाई पासिंग' (Bye-passing) कहते है। उसी तरह का तरीका महाभारत के युद्ध में भी बरता गया था। चौदहवें दिन के युद्ध में अर्जुन ने जो आश्चर्यजनक और मार्के का काम कर दिखाया वह इसी तरीके से काम लेना था। ऐसा करके अर्जुन ने दुर्योधन को बहुत परेशान किया था। इसी बात पर तो दुर्योधन और आचार्य द्रोण की कहा-सुनी भी हो गई थी, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है।

उस दिन भीम और कर्ण में जो युद्ध हुआ वह एक रोमांचकारी घटना के रूप में वर्णित है। महाभारत के द्रोण-पर्व और कर्ण-पर्व में युद्ध के बहुत-से ऐसे प्रसंग पाये जाते है, जिनका वर्णन पढ़कर यह भ्रम-सा होने लगता है कि कहीं आजकल के युद्ध का वर्णन तो हम नहीं पढ़ रहे हैं! उनमें वर्णित युद्ध की कार्रवाइयां आजकल की लड़ाई की कार्रवाइयों से मिलती-जुलती-सी हैं।



पहले भीमसेन ने कर्ण के मुकाबले की परवा न करके अर्जुन के ही पास जाने की कोशिश की। किंतु कर्ण ने उसे आगे नहीं जाने दिया। भीमसेन पर उसने बाणों की सतत बौछार करके उसका रास्ता रोक दिया। कर्ण ने भीमसेन का मजाक उड़ाया और हंसते-हंसते कहा—"भीम, अब संभल जाओ; पर देखो कहीं भाग मत जाना। रण मे पीठ दिखाना ठीक नहीं।" कर्ण की यह चुटकी भीम के लिए असह्य हो उठी और कर्ण पर वह बुरी तरह झपट पड़ा। दोनों मे घोर युद्ध छिड़ गया। कर्ण हंस-हंसकर बाण चला रहा था और भीम के बाणों को रोकता भी जाता था। किंतु भीम बड़ी उग्रता के साथ लड़ रहा था। कर्ण दूर से ही खड़ा-खड़ा निशाना ताककर भीम पर बाण बरसा रहा था; पर भीम कर्ण की बाण-वर्षा की जरा

भी परवा न करके कर्ण के पास पहुंचने की कोशिश कर रहा था। कर्ण न तो विचलित हो रहा था, न उत्तेजित ही, जबकि भीमसेन उत्तेजना और उग्रता की प्रति-मूर्ति-सा दिखाई दे रहा था। कर्ण जो कुछ करता धीरज और व्यवस्था के साथ शांत-भाव से करता। किंतु भीम को तो थोड़ा-सा भी अपमान असह्य हो जाता। वह उबल पड़ता और विस्मयजनक शारीरिक बल का परिचय देता। तात्पर्य यह कि जहां कर्ण ठंडे दिमाग और चतुराई से काम लेता था, वहां भीमसेन अमानुषिक शारीरिक बल और पागलों के-से जोश से काम ले रहा था।



भीमसेन का शरीर घावों से भर गया और उससे खून की धारा बह निकली। ऐसा मालूम हो रहा था मानो वसन्त में अशोक का वृक्ष। फिर भी घावों की ज़रा भी परवा किये बगैर उसने कर्ण के रथ को तहस-नहस कर दिया और घोड़ों को मार गिराया। उसका धनुष भी काट डाला। तब कर्ण को दूसरे रथ की ओर भागना पड़ा। इस हार से कर्ण के मुख की वह कांति लुप्त हो गई जो पहले थी। अपमान के कारण उसके मुख पर हंसी की जगह क्रोध आ गया। वह क्षुब्ध हो उठा, जैसे तूफान आने पर समुद्र। वह भीमसेन पर बड़ी उग्रता के साथ टूट पड़ा। दोनों ही बड़े वीर थे। शेरों का-सा शारीरिक बल, चीलों की-सी फुर्ती, और सांप की-सी फुंकार के साथ एक-दूसरे पर झपटकर वे आघात करने लगे। भीमसेन को उस समय उन सब पिछले घोर अपमानों, यातनाओं और मुसीबतों की याद हो आई, जो उसे, उसके भाइयों और द्रौपदी को पहुंचाई गई थीं। प्राणों का मोह छोड़कर वह लड़ने लगा। दोनों के रथ एक-दूसरे से जा टकराये। कर्ण के सफेद और भीम के काले घोड़े एक-दूसरे से सट जाने से ऐसे शोभा देने लगे जैसे काले मेघों में बिजली।

कर्ण का धनुष फिर कट गया। सारथी आहत होकर रथ से गिर पड़ा। यह देख कर्ण ने भीम पर शक्ति नामक अस्त्र का प्रयोग किया। भीम ने उसे रोक दिया और कर्ण पर कई बाण छोड़े। इतने में कर्ण ने दूसरा धनुष

ले लिया और भीम पर बाणों की वर्षा शुरू कर दी; किंतु भीम ने फिर उसका धनुष काट दिया।

कर्ण की यह हालत देख दुर्योधन ने अपने भाई दुर्जय को बुलाकर कहा—"मालूम होता है आज भीमसेन कर्ण की जान लेकर ही छोड़ेगा। तुम अभी जाकर भीम का मुकाबला करो और कर्ण की रक्षा करो।"

भाई की आज्ञा मानकर दुर्जय भीमसेन का सामना करने लगा। यह देख भीम बड़ा क्रोधित हुआ और बाणों से दुर्जय, उसके सारथी और घोड़ों को एकसाथ मौत के घाट उतार दिया। दुर्जय आहत होकर भूमि पर गिर पड़ा और चोट खाये सांप की तरह तड़पने-लोटने लगा। यह देख कर्ण से न रहा गया! उसकी आंखों से आंसू उमड़ पड़े और सिसकियां बंध गईं। वह दुर्जय के तड़पते हुए शरीर की प्रदक्षिणा करने लगा। लेकिन भीम ने तो अपना युद्ध जारी रक्खा और कर्ण पर लगातार बाणों की वर्षा करके उसे बहुत ही परेशान कर दिया।

रथ के टूट जाने पर कर्ण एक दूसरे रथ पर सवार हुआ और भीम से फिर भिड़ पड़ा। कर्ण के चलाये बाणों ने भीमसेन को भी बड़ी पीड़ा पहुंचाई। भीमसेन मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया और कर्ण पर जोरों से गदा चलाई। उसके प्रहार से कर्ण के रथ के घोड़े और सारथी वहीं ढेर हो गये। ध्वजा टूट गई। वह रथ से उतर पड़ा और धनुष लेकर पैदल ही लड़ने लगा।

दुर्योधन को जब इस बात का पता लगा, तो उसने अपने दूसरे भाई दुर्मुख को आज्ञा दी कि राधेय का रथ भीम ने बेकार कर दिया है सो तुम अभी जाकर उसे अपने रथ पर बिठा लाओ। दुर्मुख दुर्योधन की आज्ञा मानकर कर्ण के पास अपना रथ ले गया। धृतराष्ट्र के एक और बेटे को सामने आता देखकर भीमसेन का पुराना बैर जाग गया। उसने सोच लिया कि आज धृतराष्ट्र का एक और बेटा जमपुर सिधारेगा और उसने दुर्मुख के सात बाण मारे। कर्ण दुर्मुख के रथ पर चढ़ ही रहा था, कि इतने में भीमसेन के बाणों ने दुर्मुख का कवच फाड़ डाला और दुर्मुख

मृत होकर रथ से गिर पड़ा। खून से लथपथ हुई दुर्मुख की लाश देखकर कर्ण की आंखें फिर डबडबा आईं। एक मुहूर्त्त तक उसीको एकटक देखता हुआ वह खड़ा रहा। किंतु भीम तब भी न रुका। उसने कर्ण पर कई पैने बाण छोड़े। कर्ण का कवच टूट गया। उससे उसे बड़ी पीड़ा होने लगी। ऐसी हालत में उसने भीमसेन पर बाणों का चलाना फिर शुरू कर दिया। उससे भीम के शरीर पर कई जगह घाव होगये। उससे उसे पीड़ा तो बहुत हुई पर उसने वह पीड़ा सह ली और कर्ण पर बराबर भयानक बाण-वर्षा जारी रखी। उधर कर्ण को एक तो घावों के कारण सख्त पीड़ा हो रही थी, दूसरे दुर्योधन के भाइयों को अपनी खातिर प्राणों की बलि चढ़ाते देखकर उसका हृदय व्यथा के मारे तड़प रहा था। यह विषम वेदना उससे सही न जा सकी। तब हारकर वह मैदान से हट गया।

उस समय भीमसेन का घावों से भरा शरीर धधकती हुई आग-सा प्रतीत हो रहा था। कर्ण को मैदान से हटते देखकर वह सिंहनाद करके जीत की खुशी मनाने लगा। यह सुनकर अभिमानी कर्ण का स्वाभिमान जाग उठा। वह जाते-जाते रुक गया। उसने लड़ाई से हटने का विचार छोड़ दिया और फिर मैदान में आ डटा।

: ८६ :

कुन्ती को दिया वचन

संजय से जब धृतराष्ट्र ने सुना कि दुर्मुख और दुर्जय मारे गये तो उनसे न रहा गया। वे बोले—

"दुर्योधन ने यह कैसा अनर्थ किया कि दुर्मुख और दुर्जय को युद्ध की आग में झोंक कर मरवा डाला। यही मूर्ख दुर्योधन कहा करता था कि सारे संसार में मैंने एक भी वीर नहीं देखा जो वीरता में कर्ण की बराबरी कर सके। वह कर्ण जब मेरा साथी है तो देवता भी मुझे परास्त नहीं कर

सकते। फिर इन पांडवों की बात ही क्या है ? इस तरह इस मूर्ख दुर्योधन ने आशा में अपना महल खड़ा किया था। पर भीमसेन के आगे कर्ण टिक न सका और युद्ध से भाग खड़ा हुआ। उससे कुछ करते न बना। वह करता भी क्या ? वायुपुत्र तो वीरता और बल में यमराज के समान ही है। ऐसे महाबली से दुष्ट दुर्योधन ने बैर मोल लिया है। अब बचने की कोई आशा ही नहीं रही।

धृतराष्ट्र का यह विलाप सुनकर संजय झल्ला उठा। बोला--"राजन्, दुर्योधन तो नासमझ था ही ! लेकिन पांडवों से बैर मोल लेने में तो आप भी शामिल थे। नासमझ बेटे की बातें मानकर आप ही ने तो इस सारे अनर्थ का बीज बोया ! आप ही तो इसकी जड़ हैं। भीष्म जैसे महात्माओं की बात आपने ठुकरा दी। अब उसीका परिणाम भोग रहे हैं। किया सब आपने और निन्दा अपने बेटे की कर रहे हैं। वह तो अपने प्राण हथेली पर लेकर लड़ ही रहा है। अब पछताने से क्या होता है ?"

यह कह संजय आगे का हाल सुनाने लगा।



भीमसेन के हाथों कर्ण को हारते देखकर दुर्मद, दुःसह, दुर्मद, दुर्द्धर्ष, आदि धृतराष्ट्र के पांच बेटे भीमसेन पर टूट पड़े। उनके आने से कर्ण का भी साहस बंध गया। उसने भीमसेन पर कई तीखे बाण चलाये। पहले तो भीमसेन ने धृतराष्ट्र के बेटों की ओर ध्यान न दिया और कर्ण के ही पीछे लगा रहा। पर उन पांचों ने कर्ण को चारों तरफ से घेरकर अपने बचाव में ले लिया और भीमसेन पर बाणों की मार करते रहे। इसपर भीमसेन को गुस्सा चढ़ आया। उसने धृतराष्ट्र के उन पांचों पुत्रों को यमपुर पहुंचा दिया। पांचों जवान राजकुमार, अपने सारथियों और घोड़ों के साथ युद्ध के मैदान में मृत होकर ऐसे गिर पड़े जैसे आंधी आने पर जंगल में रंग-बिरंगे फूलों वाले सुंदर-सुंदर पेड़ उखड़ कर गिर पड़ते हैं।

दुर्योधन के और पांच भाइयों को इस तरह मारा गया देखकर कर्ण बड़े जोश में आ गया और बड़ी उग्रता के साथ लड़ने लगा। भीमसेन भी कर्ण से हुए अपने पुराने कष्टों को याद करके बहुत उत्तेजित हो उठा और कर्ण पर पैने बाणों की बौछार करना शुरू कर दिया। कर्ण का धनुष कट गया। घोड़े और सारथी मारे गये। कर्ण रथविहीन हो गया। तब वह रथ से कूद पड़ा और भीमसेन पर गदा-प्रहार किया। भीम ने बाण चलाकर गदा को रोक दिया और कर्ण पर बाणों की बौछार जारी रखी। कर्ण को फिर हार खानी पड़ी और वह पीठ दिखाकर मैदान से हट गया।

इसपर दुर्योधन को असह्य शोक हुआ। उसने अपने सात भाइयों, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुध और चित्रवर्म को कर्ण की सहायता करने को भेजा। सातों भीम से जा भिड़े और विलक्षण रण-कुशलता का परिचय दिया। फिर भी भीमसेन के आगे भला वे बालक कबतक टिक सकते थे? एक-एक करके सातों भाई सदा की नींद में सो गये।

यह देख कर्ण की आंखों में आंसू उमड़ आये और उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। एक दूसरे रथ पर सवार होकर काल की भांति भीमसेन पर भयानक आक्रमण करने लगा। भीम और कर्ण दोनों वीर ऐसे दीख पड़े जैसे दो कड़कते व चमकते हुए बादल हों। भीमसेन का पराक्रम देखकर अर्जुन, श्रीकृष्ण और सात्यकि—तीनों पांडव-वीर बहुत प्रसन्न हुए। यहां तक कि भूरिश्रवा, कृप, अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ आदि वीर भी भीमसेन की अद्भुत रण-कुशलता की प्रशंसा करने लगे।

दुर्योधन को यह बिलकुल पसंद न आया। वह अपने पक्ष के लोगों का भीमसेन की तारीफ़ करना सह न सका। कर्ण की हालत पर उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने सात और भाइयों को यह आज्ञा देकर भेजा कि जाकर भीमसेन को घेर लो और उसपर जोरों से वार करो। ऐसा न हो कि भीमसेन के बाण कर्ण के प्राण ले ले। दुर्योधन की आज्ञा मान कर शत्रुंजय, शत्रुहस, चित्र, चित्रायुध, दृढ़, चित्रसेन और विकर्ण—इन

सातों भाइयों ने जाकर भीमसेन को घेर लिया और एकसाथ बाण बरसा कर उसे खूब परेशान किया।

पर भीमसेन ने उन सातों भाइयों को थोड़ी ही देर में मार गिराया।

विकर्ण अपनी न्याय-प्रियता के कारण सबका प्यारा था। इस कारण जब विकर्ण भी मरकर गिर पड़ा, तो भीमसेन बहुत उदास हो गया। व्यथित होकर बोला--

"धर्म एवं न्याय के ज्ञाता विकर्ण! क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का पालन करते हुए तुम भी इस लड़ाई में काम आ गये! तुम मारे गये और वह भी मेरे हाथों। यह युद्ध भी कैसा कठोर है जिसमें तुम्हें और पितामह भीष्म को भी मारना हमारे लिए आवश्यक हो गया।"

इस प्रकार एक-एक करके दुर्योधन के भाइयों को अपनी खातिर प्राणों की आहुति देते देखकर कर्ण के संताप की सीमा न रही। शोकातुर होकर वह रथ पर गिर पड़ा और दोनों आंखें बंद कर लीं। उसे बेहोशी-सी आ गई। पर थोड़ी देर बाद वह फिर संभला और जी कड़ा करके फिर से लड़ाई में जुट गया।

भीम ने फिर बाण चलाकर कर्ण का धनुष काट डाला। जैसे ही कर्ण ने दूसरा धनुष लिया, वैसे ही भीम ने उसे भी काटकर गिरा दिया। इस प्रकार कर्ण के अठारह धनुष कट गये। इसपर कर्ण की सतर्कता और शांति जाती रही। भीम की ही भांति वह भी उत्तेजित हो उठा। दोनों एक-दूसरे पर भयानक वार करने लगे। लड़ते-लड़ते भीमसेन ने बड़े जोरों से सिंहनाद किया। दूरी पर दूसरी ओर द्रोणाचार्य से लड़ते हुए युधिष्ठिर ने जब भीम की यह गर्जना सुनी तो वह भी उत्साहित हो उठे और द्रोण पर जोरों का हमला कर दिया।

उधर कर्ण और भीम के युद्ध में इस बार भीमसेन के रथ के घोड़े मारे गये। सारथी भी कट कर गिर पड़ा। रथ टूट-फूट गया और धनुष भी कट गया। इसपर भीम ने कर्ण के रथ पर शक्ति-अस्त्र चलाया। उसे कर्ण ने बाणों से काट गिराया। भीम ने ढाल-तलवार ले ली और जान

झोंक कर लड़ने लगा। पलक मारते-मारते कर्ण ने उसकी ढाल के भी टुकड़े कर दिये। जब ढाल भी न रही, तो भीम ने तलवार घुमाकर जोर से कर्ण पर फेंक मारी। तलवार के वार से कर्ण का धनुष कट गया तो कर्ण ने दूसरा धनुष ले लिया और बड़ी चतुराई के साथ बाणों का प्रयोग किया, और भीम को खूब परेशान किया। इससे भीम बहुत ही पीड़ित हो गया। उसे असीम क्रोध हो आया। वह उछलकर कर्ण के रथ पर जा कूदा। कर्ण ने रथ के ध्वज-स्तंभ की आड़ लेकर भीमसेन की झपट से अपने को बचा लिया। तो भीम नीचे ज़मीन पर कूद पड़ा और मरे हाथियों के ढेर में घुसकर अपना बचाव कर लिया। हाथियों की ढेर की ओट में-से भीमसेन विलक्षण युद्ध करने लगा। मैदान में जो रथ के पहिये, घोड़े, हाथी आदि पड़े थे, उन्हींको उठा-उठा कर कर्ण पर फेंकता गया जिससे उसे क्षण भर भी आराम न मिल पाया।

उस समय कर्ण चाहता, तो भीम को आसानी से मार सकता था। पर निहत्थे भीमसेन को उसने मारना नहीं चाहा। फिर माता कुंती को दिया वचन उसे याद था कि वह अर्जुन के सिवा और किसीको युद्ध में न मारेगा।

शांत रहते हुए भीम को चिढ़ाते हुए वह बोला-"अरे मूर्ख पेटू! लड़ाई के बारे में तुम क्या जानो! वन के कंद-मूल और फूल खाना तुम्हें खूब आता है। पर क्षत्रियोचित ढंग से युद्ध करना तुम्हारा काम नहीं। इस लिए चलो, भागो यहां से।"

यह सुनकर भीम आग-बबूला हो उठा।

"देखो! कर्ण के हाथों भीमसेन की बुरी गत हो रही है।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा।

सुनते ही अर्जुन ने अपनी अग्निमय दृष्टि कर्ण की तरफ फेरी। क्रोध के कारण उसकी आंखे ऐसी प्रज्वलित हो रही थीं मानो कर्ण को जलाकर ही छोड़ेंगी। अर्जुन ने गाण्डीव तानकर बाण चढ़ाये। अर्जुन के बाण सनसनाते हुए कर्ण पर बरस पड़े और अंत में लाचार होकर कर्ण को युद्ध-क्षेत्र से हट जाना पड़ा।

: ६० :

भूरिश्रवा का वध

"अर्जुन ! देखो, वह तुम्हारा शिष्य और मित्र सात्यकि, शत्रुओं की सेना तितर-बितर करता हुआ आ रहा है ।" रथ चलाते-चलाते श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा ।

"माधव ! युधिष्ठिर को छोड़कर सात्यकि का यहां चला आना, मुझे ठीक नहीं जंचता । द्रोण तो उधर मौके की ताक में ही है । युधिष्ठिर की रक्षा का भार हमने सात्यकि को सौंपा था । उनकी रक्षा करने के बजाय उसे इस तरह यहां नहीं चले आना चाहिए था । अभी तक जयद्रथ का भी वध नहीं हो पाया है । और उधर देखिये, भूरिश्रवा सात्यकि से भिड़ गया है । ऐसे समय धर्मराज ने सात्यकि को यहां भेजकर भारी भूल की ।" अर्जुन ने चिन्तित भाव से कहा ।



श्रीकृष्ण को जन्म देने के लिए श्रीदेवकी का अवतार हुआ था । देवकी के स्वयंवर के अवसर पर सोमदत्त और शिनि इन दो राजाओं में भारी युद्ध हुआ । वसुदेव की तरफ से शिनि ने सोमदत्त से लड़कर उसको परास्त कर दिया और देवकी को अपने रथ पर बिठा कर ले गये । उस दिन से लेकर शिनि और सोमदत्त में खानदानी बैर हो गया था । यहां तक कि दोनों खानदान वाले सदा एक-दूसरे के प्राणों के प्यासे रहते थे ।

सात्यकि शिनि का पोता था और भूरिश्रवा सोमदत्त का पुत्र था । इस कारण, सात्यकि को देखते ही भूरिश्रवा ने उसे युद्ध के लिए ललकारा और बोला--

"शूरता के दर्प में भूले हुए सात्यकि, देखो, अभी तुम्हारी खबर लेता हूं । चिरकाल से तुमसे युद्ध करने की चाह मेरे मन में समाई हुई थी । आज

तुम मेरे सामने पड़े हो। अब मेरी चाह पूरी होगी। राजा दशरथ के पुत्र लक्ष्मण के हाथों इन्द्रजीत का जैसे वध हुआ, वैसे ही आज मेरे हाथों तुम्हारा वध होने वाला है। मृत्यु तुम्हारी बाट जोह रही है। जिन वीरों को तुमने मारा था, उनकी विधवाएं आज प्रसन्न होंगी। चलो तो फिर लड़ ही लें।"

यह सुन सात्यकि हंसा और बोला-- "निरर्थक बातें बनाने से क्या फायदा ? जिसे लड़ने से डर हो उसे इस तरह क्या हौआ दिखाया जा सकता है। तुम व्यर्थ की बातें बनाना छोड़ो। युद्ध करके ही अपनी शूरता का परिचय दो। शरत्काल के मेघों की भांति केवल गर्जना शूरों को विचलित नहीं करती।"

इस कहा-सुनी के बाद युद्ध शुरू होगया और दोनों वीर एक-दूसरे पर शेरों की भांति टूट पड़े।



लड़ते-लड़ते सात्यकि और भूरिश्रवा के घोड़े मारे गये, धनुष कट गये और रथ भी बेकार हो गये। इसके बाद दोनों वीर जमीन पर खड़े ढाल-तलवार लेकर एक-दूसरे पर भयानक वार करने लगे। दोनों ने अद्भुत पराक्रम का परिचय दिया। वे दोनों एक-दूसरे से बढ़कर थे। इसलिए एक मुहूर्त तक दोनों में खड्ग युद्ध होता रहा। बाद मे दोनों की ढालें कट गईं। इसपर दोनों ने ढाल-तलवार फेंक दी और कुश्ती लड़ने लगे।

दोनों वीर एक-दूसरे से छाती भिड़ाते और गिर पड़ते। एक-दूसरे को कसकर पकड़ लेते और जमीन पर लोटने लगते। फिर अचानक उछल कर उठ खड़े होते और दोबारा एक-दूसरे को धक्का देकर मार गिराते। इसी तरह दोनों जन्म के बैरी बहुत देर तक समान युद्ध करते रहे।

उधर अर्जुन सिन्धुराज जयद्रथ के साथ युद्ध कर रहा था और उसका वध करने के मौके की तलाश में था।

"अर्जुन, सात्यकि बहुत थका-सा मालूम होता है। जान पड़ता है भूरिश्रवा सात्यकि को खतम करके छोड़ेगा।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा। पर अर्जुन तो जयद्रथ से ही लड़ने में दत्त-चित्त था।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से दुबारा आग्रह करके कहा, "देखो भूरिश्रवा ने जब सात्यकि को युद्ध के लिए ललकारा तभी वह कौरव-सेना से लड़ते रहने के कारण थका हुआ था। इसलिए यह बराबरी का युद्ध नहीं है। पहले तुम्हें सात्यकि की सहायता के लिए जाना चाहिए। नहीं तो सात्यकि भूरिश्रवा के हाथों मारा जाता दीखता है।"

श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतने में भूरिश्रवा ने सात्यकि को ऊपर उठाया और जमीन पर जोर से दे पटका। कौरव-सेना जोरों से कोलाहल कर उठी--"सात्यकि मारा गया।"

"अर्जुन, देखो! वृष्णि-कुल का सबसे प्रतापी वीर सात्यकि जमीन पर असहाय-सा पड़ा हुआ है। जो तुम्हारे प्राण बचाने व तुम्हारी सहायता करने आया था, उसीकी तुम्हारी आंखों के सामने हत्या हो रही है। तुम्हारे देखते ही देखते, तुम्हारा मित्र अपने प्राण गंवाने वाला है।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को एक बार फिर आग्रह कर के कहा।

अर्जुन ने देखा कि मैदान पर मृत-से पड़े सात्यकि को भूरिश्रवा उसी तरह घसीट रहा है जैसे सिंह हाथी को घसीट रहा हो। यह देख अर्जुन भारी असमंजस में पड़ गया। उसे कुछ सूझ न पड़ा कि क्या किया जाय।

वह श्रीकृष्ण से बोला-- "कृष्ण, भूरिश्रवा मुझसे लड़ नहीं रहा है। दूसरे के साथ लड़नेवाले पर मैं कैसे बाण चलाऊं? मेरा मन नहीं मानता। परन्तु साथ ही जब मेरी खातिर सात्यकि प्राण गंवा रहा हो तब अपनी ही धुन में लड़ते रहना भी मुझसे नहीं होता।"

अर्जुन इस प्रकार श्रीकृष्ण से बातें कर ही रहा था कि इतने में जयद्रथ के चलाये बाणों के समूह आकाश में छा गये। इसपर अर्जुन ने बातें करते ही करते जयद्रथ पर बाणों की बौछार जारी रक्खी। साथ-ही-साथ संकट में पड़े हुए सात्यकि की तरफ भी बार-बार देखता और खिन्न हो उठता था।

"पार्थ! कई वीरों से युद्ध करने के कारण थका हुआ सात्यकि अब निहत्था और निःसहाय होकर भूरिश्रवा के हाथों में बुरी तरह फंसा हुआ है। तुमको इस प्रकार तटस्थ नहीं रहना चाहिए।" श्रीकृष्ण ने कहा।

ज्योंही अर्जुन ने सात्यकि की ओर मुड़कर देखा तो पाया कि सात्यकि जमीन पर पड़ा था और भूरिश्रवा उसके शरीर को एक पांव से दबाकर और दाहिने हाथ में तलवार लेकर उसपर वार करने को उद्यत ही था। यह देख अर्जुन से न रहा गया। उसने उसी क्षण भूरिश्रवा पर तानकर बाण चलाया। बाण लगते ही भूरिश्रवा का दाहिना हाथ कटकर तलवार समेत दूर जमीन में जा गिरा।

हाथ कटे हुए भूरिश्रवा ने पीछे मुड़कर देखा तो क्रुद्ध होकर बोला--

"अरे कुन्ती पुत्र ! मुझे तुमसे इस बात की आशा नहीं थी कि ऐसा अवीरोचित काम करोगे। जब मैं दूसरे से लड़ रहा था और तुम्हारी तरफ देख भी नहीं रहा था तब तुमने पीछे से मुझपर बाण चलाकर हमला क्यों किया? तुम्हारे इस काम से इस बात का सबूत मिलता है कि आदमी पर संगति का असर पड़े बिना नहीं रहता। अर्जुन ! जब भाई युधिष्ठिर तुम से पूछेंगे कि तुमने उसका हाथ काटा तो भूरिश्रवा क्या कर रहा था तब क्या उत्तर दोगे ? अरे, ऐसा अधार्मिक और अन्यायपूर्ण युद्ध करना तुम्हें किसने सिखाया ? पिता इन्द्र ने या आचार्य द्रोण ने या कृप ने ? वह कौन-सा धर्म था जिसके अनुसार तुमने एक ऐसे व्यक्ति पर बाण चलाया जो न तो तुमसे लड़ रहा था, न तुम्हारी तरफ देख ही रहा था ? नीच लोगों के योग्य इस निकृष्ट कार्य को करके तुमने अपने सुयश पर धब्बा लगा लिया है। मैं जानता हूं कि तुम स्वयं अपनी इच्छा से ऐसा काम करने पर उतारू नहीं हो सकते। जरूर कृष्ण ने ही इसके लिए तुम्हें उकसाया होगा। पर तुम तो क्षत्रिय हो ! वीर हो ! यह कृत्य तो तुम्हारे स्वभाव के विरुद्ध था ! दूसरे से लड़ने वाले पर हथियार चलाना क्षत्रियोचित काम नहीं है। इसलिए नीच कृष्ण की सलाह से तुमने ऐसा अधर्म क्यों किया ?"

अपना हाथ कट जाने पर जब भूरिश्रवा ने इस प्रकार श्रीकृष्ण की निंदा की तो अर्जुन बोला--

"वृद्ध भूरिश्रवा ! कहीं जवानी के साथ-साथ बुद्धि भी तो नहीं

खो बैठे हो ? युद्ध-धर्म का जब तुम्हें पूरा ज्ञान है तो फिर मुझे और श्रीकृष्ण को क्यों धिक्कार रहे हो ? सात्यकि मेरा मित्र था। मेरे लिए अपने प्राणों को हथेली पर रखकर यहां लड़ रहा था। तुमने मेरे दाहिने हाथ के समान प्रिय मित्र सात्यकि का वध करने की कोशिश की और वह भी उस समय जबकि वह घायल और अचेत-सा होकर जमीन पर पड़ा हुआ था और कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता था। यह मैं खड़े-खड़े कैसे देख सकता था ? यदि मैं उसकी सहायता न करता, तो मुझे नरक ही प्राप्त होता। तुम कहते हो कि श्रीकृष्ण की संगति के कारण मैं भले से बुरा बन गया। तो संसार में ऐसा कोई है जो इस तरह बुरा बनना नहीं चाहता हो ? मतिभ्रम के कारण ही तुम ऐसी बकवास कर रहे हो। अनेक महारथियों के साथ अकेले लड़कर जब सात्यकि बिलकुल थका हुआ था, तब तुमने लड़कर उसे परास्त कर दिया यह तो ठीक था। पर जब वह परास्त हो कर जमीन पर निःशस्त्र पड़ा हुआ था तब उस अवस्था में तुमने उसे तलवार से मारना चाहा, तो क्या यह धर्म था ? जिसके हथियार टूट चुके थे, कवच नष्ट हो चुका था और जो इतना थका हुआ था कि जिसके लिए खड़ा रहना भी दूभर था, ऐसे मेरे कोमल बालक अभिमन्यु का वध होने पर तुम सभी लोगों ने विजयोत्सव मनाया था। तुम्हीं बताओ कि ऐसा करना किस धर्म के अनुसार था ?"

अर्जुन के इस प्रकार मुंहतोड़ जवाब देने पर भूरिश्रवा चुपके से सात्यकि को छोड़कर हट गया और अपने बाएं हाथ से युद्ध के मैदान पर शरों को फैला कर और आसन जमाकर बैठ गया। उसने परमात्मा का ध्यान करके वहीं प्रायोपवेशन—आमरण अनशन, शुरू कर दिया। यह देखकर सारी कौरव-सेना भूरिश्रवा की प्रशंसा करने लगी और अर्जुन और कृष्ण की बड़ी निंदा करने लगी।

यह सब देखकर अर्जुन बोला— "वीरो ! तुम सब मेरी प्रतिज्ञा जानते हो। मेरे बाणों की पहुंच तक अपने किसी भी मित्र या साथी का शत्रु के हाथों वध न होने देने का मैंने प्रण कर रखा है। इसलिए सात्यकि की

रक्षा करना मेरा धर्म था ! किसीका धर्म जाने बिना उसकी निंदा करना उचित नहीं ।"

उसके बाद अर्जुन भूरिश्रवा से बोला-- "पुरुषश्रेष्ठ ! आश्रितों का भय दूर करके उन्हें शरण देनेवाले वीर ! तुमने अपने ही कुकर्म का यह फल पाया है । इसके लिए मेरी निन्दा करना व्यर्थ है । निन्दा तो हम सबको क्षत्रिय-धर्म की करनी चाहिए, जो इन सभी अनर्थों की जड़ है ।"

अर्जुन की ये बातें सुनकर भूरिश्रवा ने भी शांति से सिर नवाया और जमीन पर टेक दिया ।

इन बातों में कोई दो घड़ी का समय बीत गया था । सात्यकि की भी थकान मिट चुकी थी और वह तरोताजा हो गया था । भूरिश्रवा के हाथों हुए अपमान के कारण क्रोध से वह अन्धा होगया था । उसने आव देखा न ताव, तलवार लेकर भूरिश्रवा की ओर, जो आंखें बंद किये और आसन जमाए ध्यान में लीन बैठा था, झपटा । सात्यकि को झपटता देखकर सारी कौरव सेना में हाहाकार मच गया । अर्जुन और श्रीकृष्ण चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि 'ऐसा न करो, ऐसा न करो !' सब लोगों के मना करते हुए भी सात्यकि ने भूरिश्रवा का सिर धड़ से अलग कर दिया । वृद्ध भूरिश्रवा स्वर्ग सिधार गया ।

सिद्धों और देवताओं ने भूरिश्रवा का यश गाया । सात्यकि के कार्य को सबने निकृष्ट कहकर धिक्कारा । सबके मनमें भूरिश्रवा की मृत्यु के के कारण उदासी छा गई । सात्यकि के निन्द्य कर्म पर सबको असीम घृणा हुई ।

सात्यकि ने कहा-- "भूरिश्रवा मेरा खानदानी शत्रु था और जब मं युद्ध के मैदान में अधमरा-सा पड़ा था, तब उसने मेरी हत्या करने की कोशिश की थी । इसलिए मैंने उसका जो वध किया वह उचित ही था ।"
पर सात्यकि का यह समाधान किसीको ठीक नहीं जंचा । लड़ाई के मैदान में जिस ढंग से भूरिश्रवा का वध हुआ, उसे किसीने भी उचित नहीं माना ।

भूरिश्रवा के वध की कहानी, महाभारत की उन कहानियों में से है जिनमें दुविधात्मक समस्याएं हल होती हैं। जहां ईर्ष्या-द्वेष का बोलबाला हो वहां धर्म और अनुशासन नाममात्र के लिए भी नहीं रहते।

: ६१ :

जयद्रथ का वध

"कर्ण ! आज हमारा भाग्य-निर्णय होने वाला है।" दुर्योधन ने कहा और बोला-- "आज वह अवसर हाथ आया है, जिससे मेरे भाग्य के चमकने की संभावना है। आज यदि अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी न हो पाई तो निश्चय ही वह लज्जा के मारे आत्मघात कर लेगा। अर्जुन के मर जाने पर पांडवों का नाश भी निश्चित है। और फिर तो यह सारा राज्य हमारे ही अधीन हो जायगा। फिर कोई हमारे सामने सिर नहीं उठा सकेगा। मूर्खता और भ्रम के वश होकर अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा करके अपने ही सर्वनाश का आयोजन कर लिया है। यह मेरे भाग्योदय की ही सूचना है! ऐसे अवसर को हाथ से न जाने देना चाहिए। हमें कोई-न-कोई प्रयत्न करके अर्जुन की प्रतिज्ञा झूठी कर देनी चाहिए। आज तुम्हें अपनी रण-कुशलता का पूरा-पूरा परिचय देना होगा। आज तुम्हारी परीक्षा का दिन है। अब सूरज अस्त हुआ ही चाहता है। थोड़ी ही देर रह गई है। सूर्यास्त तक अर्जुन जयद्रथ के पास पहुंच नहीं सकेगा। कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, तुम और मैं हम सभी साथ-साथ और हर तरह से सतर्क रहकर जयद्रथ की रक्षा करते रहें तो अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी होने ही नहीं पावेगी।"

यह सुन कर्ण बोला-- "राजन् ! भीमसेन के साथ युद्ध करते-करते मैं बहुत थक गया हूं। मेरा सारा शरीर घावों से भर गया है। शरीर की स्फूर्ति कम हो गई है। फिर भी तुम्हारे उद्देश्य की पूर्ति में यथासंभव पूरा हाथ बटाऊंगा। मैं तुम्हारी ही खातिर जी रहा हूं।"

युद्ध-स्थली में जिस समय कर्ण और दुर्योधन में ये बातें हो रही थीं, उसी समय दूसरी तरफ अर्जुन कौरव-सेना में प्रलय-सा मचा रहा था। अर्जुन की इच्छा यह थी कि किसी तरह कौरव-सेना को तोड़-फोड़कर अन्दर प्रवेश करके सूर्यास्त होने से पहले जयद्रथ के निकट पहुंचकर उसका काम-तमाम किया जाय।



इतने में एकाएक श्रीकृष्ण ने अपना पांचजन्य शंख जोरों से बजाया। सुनते ही उनका सारथी दारुक एक रथ लेकर आ पहुंचा। सात्यकि लपककर उसपर सवार हुआ। वह कर्ण पर टूट पड़ा और दोनों में बड़ी कुशलता और तत्परता से युद्ध होने लगा।

दारुक ने रथ चलाने में बड़ा कौशल दिखाया और सात्यकि ने धनुष चलाने में। दोनों का रण-कौशल देखने को देवता आकाश में इकट्ठे हो गये। कर्ण के चारों घोड़े और सारथी मारे गये। उसके रथ की ध्वजा कटकर गिर पड़ी। पल भर में रथ भी चूर हो गया। इसपर कर्ण दुर्योधन के रथ पर चढ़कर युद्ध करने लगा।

इस युद्ध का वर्णन धृतराष्ट्र को सुनाते हुए संजय ने कहा—"इस संसार में श्रीकृष्ण, अर्जुन और सात्यकि के समान धनुर्धारी और कोई नहीं है।"



उधर कौरव-सेना को तितर-बितर करता हुआ अर्जुन जयद्रथ के पास पहुंच ही गया। उस समय के अर्जुन के रौद्ररूप का वर्णन नहीं हो सकता था। वह अपने पुत्र अभिमन्यु की हत्या और पिछली सारी मुसीबतों को याद करके क्रोध से आग की भांति प्रज्वलित हो उठा। उस समय वह दोनों हाथों से गाण्डीव धनुष का प्रयोग कर रहा था। कौरव-सेना इससे भयाकुल हो उठी। उस समय वह कौरव-सेना को महाकाल के समान भयानक प्रतीत होने लगा।

जयद्रथ की रक्षा करने वाले सभी महारथियों को हराकर अर्जुन एकदम जयद्रथ के पास पहुंच गया और उसपर टूट पड़ा। पर जयद्रथ

भी कोई ऐसा-वैसा नहीं था। वह विख्यात वीर था। डटकर लड़ने लगा। उसे हराना अर्जुन के लिए भी सुगम न था। बड़ी देर तक युद्ध होता रहा। दोनों पक्षों के वीर सूर्य की ओर बार-बार देखने लगे। धीरे-धीरे पश्चिम में लालिमा छाने लगी और सूर्यास्त का समय भी नजदीक आने लगा; परन्तु जयद्रथ और अर्जुन का युद्ध समाप्त होने के कोई लक्षण नजर नहीं आते थे।

यह देख दुर्योधन के मन में आनन्द की लहरें उठने लगीं। उसने सोचा कि अब जरा-सी ही देर और है। जयद्रथ तो बच ही गया और अर्जुन की प्रतिज्ञा विफल हुई ही सी है।

दुर्योधन यह सोचकर खुश हो ही रहा था कि इतने में अन्धेरा-सा छा गया। सूर्यास्त हो गया! पांडवों की सेना में उदासी छा गई। सब आपस में काना-फूसी करने लगे, "जयद्रथ मारा नहीं गया! सूर्यास्त हो गया। अर्जुन की प्रतिज्ञा झूठी हो गई! अब क्या होगा?"

उधर कौरव-सेना में खुशी की लहर फैल गई और जहां-तहां सैनिक शोर मचाने लगे।

जयद्रथ ने भी पश्चिम की ओर देखते हुए मन में कहा--"चलो, प्राण बचे!"

इसी बीच श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा-- "अर्जुन! जयद्रथ सूर्य की तरफ देखने में लगा है और मन में समझ रहा है कि सूर्य डूब गया। परन्तु अभी तो सूर्य डूबा नहीं है। यह अन्धकार मेरा ही फैलाया हुआ है तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का यही अवसर है।"

श्रीकृष्ण के यह वचन अर्जुन के कान में पड़े ही थे कि अर्जुन के गांडीव से एक तेज बाण छूटा और जयद्रथ के सिर को ऐसे उड़ा ले गया जैसे चील मुर्गी के बच्चे को उड़ा ले जाती है। पर श्रीकृष्ण ने समय पर एक और बात अर्जुन को याद दिला दी थी--

"अर्जुन! जयद्रथ के सिर को जमीन पर न गिरने देना। बाण इस तरह मारना कि उसके सहारे ही वह आकाश-मार्ग से जाकर उसके पिता वृद्धक्षत्र की गोद में जा गिरे। जयद्रथ को मिले वरदान की बात

तुमको याद ही होगी कि जिसके हाथों इसका सिर पृथ्वी पर गिरेगा उसके सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे ।"

अर्जुन ने ऐसा ही किया । जयद्रथ के पिता राजा वृद्धक्षत्र अपने आश्रम में संध्या कर रहे थे । इतने में काले-काले केश और सोने के कुंडलों से युक्त जयद्रथ का सिर ध्यान-मग्न राजा की गोद में जा गिरा । ध्यान समाप्त होने पर जब वृद्धक्षत्र की आंखें खुलीं और वह उठे तो जयद्रथ का वह सिर उनकी गोद से जमीन पर गिर पड़ा और उसी क्षण बूढ़े वृद्धक्षत्र के सिर के भी सौ टुकड़े हो गये । जयद्रथ और उसके वृद्ध पिता दोनों ही एकसाथ वीरोचित स्वर्ग को सिधारे ।



श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम और सात्यकि ने अपने-अपने शंख बजाकर विजय-घोष किया । पांडव-सेना के दूसरे वीरों ने भी शंख बजाये । यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने जान लिया कि अर्जुन के हाथों जयद्रथ का वध हो गया और उन सबके आनंद की सीमा न रही ।

इसके बाद तो युधिष्ठिर दूने उत्साह के साथ, सारी पांडव-सेना को लेकर आचार्य द्रोण पर टूट पड़े । चौदहवें दिन का युद्ध केवल सूर्यास्त तक ही न हुआ, बल्कि रात को भी होता रहा । ज्यों-ज्यों युद्ध का जोश बढ़ता गया, त्यों-त्यों विधि-निषेध की सीमाएं एक-एक करके टूटती गईं । यहां तक कि अन्त में अधर्म का बोलबाला हो गया ।

: ६२ :

आचार्य द्रोण का अन्त

महाभारत-कथा जाननेवाले सभी इस बात से परिचित होंगे कि घटोत्कच भीमसेन का हिडिंबा राक्षसी से उत्पन्न पुत्र था ।

महाभारत के कथा-पात्रों में दो ही बालक ऐसे हैं जो वीरता, धीरज,

साहस, शक्ति, बल, शील, यश आदि सभी गुणों से युक्त और उज्ज्वल चरित्र के थे। और वे थे अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु और भीमसेन का पुत्र घटोत्कच। दोनों ने ही पाण्डवों के पक्ष में अद्‌भुत वीरता के साथ युद्ध करके प्राणों का उत्सर्ग किया था।

महाभारत का आख्यान एक अद्‌भुत रचना है जिसमे मानव-जीवन के दुःख-दर्द का सार आगया है। करुण-रस से पूर्ण यह धार्मिक ग्रन्थ जीवन के दुःखों पर प्रकाश डालकर पाठकों को अजर-अमर सत्यरूप परमात्मा की ओर बढ़ने को प्रेरित करता है।

साधारण कहानियों व उपन्यासों का ढंग कुछ और ही होता है। वे या तो दुःखांत होते हैं या सुखांत। सुखांत कथाओं का नायक रोमांचकारी घटनाओं, आफतों और मुसीबतों को पार करता हुआ, अन्त में अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है और अपनी मनचाही प्रेमिका से ब्याह कर लेता है। पाठक का आकुलित मन इससे प्रसन्न हो उठता है। दुःखांत कथाओं का ढंग ठीक इससे उलटा होता है जिसमें प्रारम्भ में तो घटनाएं शुभ से शुभतर होती जाती हे, परन्तु अन्त में भारी दुर्घटना के साथ यवनिका-पतन हो जाता है।

परन्तु रामायण और महाभारत जैसी धार्मिक व प्राचीन रचनाओं की प्रणाली कुछ ऐसी होती है कि जिससे पाठक का मन द्रवित हो जाता है। कभी वह आनंद की तरंगों में बहता है तो कभी दुःख की आंधी उसे झंझोड़ देती है। मन की भावनाएं पल-पल बदलती जाती हैं और परिणाम में पाठक परमात्मा की शरण लेकर सुख-दुःख से ब्राह्मी-स्थिति को पहुंचने पर उकसाया जाता है।



दोनों तरफ ईर्ष्या-द्वेष एवं प्रतिहिंसा की जो आग भड़क रही थी, वह इतनी प्रबल हो उठी कि केवल दिन के समय लड़ने से ही उसको संतुष्ट नहीं किया जा सका। चौदहवे दिन, सूर्य के डूबने के बाद भी युद्ध जारी रखने के लिए मशाल जलाए गये। रात का समय था। घटोत्कच और उसके

साथियों ने भयानक माया-युद्ध शुरू कर दिया। रात के समय की उस लड़ाई का दृश्य अद्‌भुत था। वह एक ऐसी घटना थी जैसी भारत देश में पहले कभी न हुई थी। हजारों मशालें जल रही थीं और दोनों ओर के वीर अपनी-अपनी सेना को युद्ध के लिए उत्साहित कर रहे थे।

कर्ण और घटोत्कच में उस रात को बड़ा भयानक युद्ध हुआ। घटोत्कच और उसकी पैशाची सेना ने बाणों की वह बौछार की कि जिससे दुर्योधन की सेना के झुण्ड-के-झुण्ड वीर मारे जाने लगे। प्रलय-सा मच गया। यह देखकर दुर्योधन का दिल कांपने लगा।

कौरव-वीरों ने कर्ण से अनुरोध किया कि किसी-न-किसी तरह आज घटोत्कच का काम तमाम करना चाहिए। उन्होंने कहा, "कर्ण! आप इसी घड़ी इस राक्षस का वध कर दो! वरना हमारी सारी सेना तबाह हो जायगी। इसको शीघ्र ही मृत्युलोक पहुंचाओ।"

घटोत्कच ने कर्ण को भी इतनी पीड़ा पहुंचाई थी कि वह भी क्रोध में भरा हुआ था। कौरवों का अनुरोध सुनकर उसकी उत्तेजना और भी प्रबल हो उठी। वह आपे में न रहा और इन्द्रदेव की दी हुई शक्ति का, जिसे उसने अर्जुन का वध करने के ही उद्देश्य से यत्न-पूर्वक सुरक्षित रक्खा था—घटोत्कच पर प्रयोग कर दिया।

इससे अर्जुन का संकट तो टल गया पर भीमसेन का प्रिय एवं वीर पुत्र घटोत्कच मारा गया और उसकी लाश आकाश से जमीन पर धड़ाम से आ गिरी। पांडवों के दुःख की सीमा न रही।

इतने पर भी युद्ध बंद नहीं हुआ। द्रोणाचार्य के धनुष से बाणों की ऐसी तीव्र बौछार हो रही थी जिससे पांडव-सेना के असंख्य वीर गाजर-मूली की तरह कट-कटकर गिरते जाते थे। रहे-सहे पांडव-सैनिक भी भयभीत हो उठे।

यह देख श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले— "अर्जुन! आज युद्ध में द्रोण को परास्त करना किसीकी शक्ति में नहीं है। जबतक इनके हाथ में शस्त्र है तबतक धार्मिक युद्ध लड़कर उनपर विजय नहीं पाई जा सकती। धर्म

के विरुद्ध चलकर ही—कुछ कुचक्र रचकर ही—इनको परास्त करना होगा और आज अगर यह परास्त न हुए तो हमारा सर्वनाश कर देंगे। इसलिए किसी प्रकार अगर द्रोण यह सुन लें कि अश्वत्थामा मारा गया तो शोक में आकर हथियार फेंक देंगे— युद्ध न करेंगे। इसलिए किसीको आचार्य के पास जाकर यह खबर पहुंचानी चाहिए कि अश्वत्थामा मारा गया।

यह सुनकर अर्जुन सन्न रह गया। इस प्रकार असत्य मार्ग का अनुकरण करना उसे ठीक न जंचा। उसने ऐसा करने से साफ इन्कार कर दिया। पाण्डव-पक्ष के दूसरे वीरों ने भी इसे नापसन्द किया। किसीका भी मन नहीं मानता था कि ऐसा अधर्म कार्य करे। लेकिन युधिष्ठिर ने काफी सोच-विचार के बाद कहा कि यह पाप मैं अपने ही ऊपर लेता हूं।

अमृत की प्राप्ति के लिए जब समुद्र-मन्थन हुआ तब देवताओं का संकट दूर करने के लिए भगवान् महादेव ने स्वयं विष-पान किया था। आश्रित मित्र की रक्षा के लिए भगवान् रामचन्द्र ने भी वानर-राज बालि का अन्यायपूर्वक वध करके पाप का भार अपने ऊपर लिया था। ठीक इसी तरह युधिष्ठिर ने भी अपने सुयश पर पाप-कालिमा लगवाने का इरादा कर लिया कि जिससे औरों का संकट दूर हो सके।

इस व्यवस्था के अनुसार भीम ने गदा-प्रहार से अश्वत्थामा नाम के एक भारी लड़ाके हाथी को मार डाला। फिर द्रोणाचार्य की सेना के पास जाकर जोर से चिल्लाने लगा—"मैंने अश्वत्थामा को मार डाला है।" पर सपने में भी नीच काम करने का विचार न करने वाले भीमसेन को भी यह झूठी बात कहते हुए बड़ी लज्जा आई।

उधर युद्ध करते हुए द्रोणाचार्य ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना ही चाहते थे कि इतने में भीमसेन की आवाज उनके कानों में पड़ी। जब उन्होंने सुना कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया तो वह विचलित हो गए। साथ ही उन्हें इस बात की सच्चाई पर शक भी हुआ। उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा— "बेटा युधिष्ठिर ! क्या, यह बात सच है कि मेरा प्रिय पुत्र अश्वत्थामा मारा गया ?"

आचार्य द्रोण को विश्वास था कि युधिष्ठिर तीनों लोकों के आधिपत्य के लिए भी झूठ नहीं बोलेंगे। इसी कारण उन्होंने युधिष्ठिर से ही यह प्रश्न किया था।

यह देखकर श्रीकृष्ण चिन्तित हो उठे। उन्हें भय हुआ कि कहीं युधिष्ठिर अपनी धर्म-परायणता के कारण पांडवों के नाश का कारण न बन जायं।"

युधिष्ठिर असत्य बोलते हुए डरे तो पर विजय प्राप्त करने की लालसा भी उनको विकल कर रही थी। वे बड़ी दुविधा में पड़ गये। फिर भी किसी तरह जी कड़ा करके जोर से बोले-- "हां, अश्वत्थामा मारा गया।" परन्तु यह कहते-कहते फिर उनको धर्म का भय हो आया। इस कारण अन्त में धीमे स्वर में यह भी कह दिया-- "मनुष्य नहीं, हाथी।"



उस दिन की इन घटनाओं का हाल सुनाते हुए संजय ने कहा--"राजन्! इस प्रकार युधिष्ठिर के असत्य भाषण के कारण बड़ा अधर्म हो गया।"

पौराणिक कहते हैं कि जैसे ही युधिष्ठिर के मुंह से यह असत्य बात निकली त्यों ही उनका रथ, जो पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर-ही-ऊपर चलता रहता था, एकदम जमीन से लगकर चलने लगा।

तात्पर्य यह कि संसार झूठ का आदी हो चुका था; इस कारण युधिष्ठिर के सत्य-भाषण का उससे कोई संबंध न था। पर अब, जबकि जीत पाने की इच्छा से उन्होंने भी असत्य-भाषण किया तो उनका रथ भी पापी धरातल से जा टिका।



युधिष्ठिर के मुंह से यह सुनते ही कि अश्वत्थामा मारा गया, द्रोण के मन में विराग छा गया। जीवित रहने की इच्छा ही उनके मन में न रही। जब वे इस मनःस्थिति में थे तभी भीमसेन कठोर वाक्बाणों से उनको और सताने लगा। वह बोला--

"ब्राह्मण लोगों के कर्तव्यभ्रष्ट हो जाने के कारण और क्षत्रियोचित

वृत्ति धारण कर लेने के कारण ही क्षत्रियों पर यह विपदा आ गई। यदि ब्राह्मण लोगों ने अधर्म का मार्ग न अपनाया होता, तो कितने ही क्षत्रिय-राजाओं के प्राण बच गये होते। आप तो इस तथ्य से परिचित हैं ही कि अहिंसा ही सबसे उत्कृष्ट धर्म है और यह भी जानते हैं कि ब्राह्मण ही उस महान् धर्म के आधार-स्तंभ माने जाते हैं। फिर स्वयं आपका जन्म भी ब्राह्मण-कुल में ही हुआ है। तब आपने यह हिंसा-वृत्ति क्यों अपनाई और स्वार्थ-वश होकर पाप करने पर क्यों तुले हुए हैं।"

एक तो यों ही पुत्र के विछोह की खबर सुनकर द्रोण के मन से प्राणों का मोह टूट चुका था और वैराग्य छा रहा था। ऊपर से भीमसेन के मुंह से ये कड़ुवी बातें सुनकर उन्हें और भी सख्त पीड़ा पहुंची। उन्होंने तुरन्त सारे अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और रथ पर ही आसन जमाकर, ध्यानमग्न होकर बैठ गये।

इतने में द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न हाथ में तलवार लेकर द्रोण पर झपटा। यह देखकर चारों ओर हाहाकार मच गया और इसी हाहाकार के बीच धृष्टद्युम्न ने ध्यान-मग्न आचार्य की गर्दन पर खड्ग से जोर का वार किया। आचार्य द्रोण का सिर तत्काल ही धड़ से अलग होकर गिर पड़ा। भारद्वाज-पुत्र द्रोण की आत्मा दिव्य ज्योति से जगमगाती हुई स्वर्ग सिधार गई।

: ६३ :

कर्ण भी मारा गया

द्रोण के मारे जाने पर कौरव-पक्ष के राजाओं ने कर्ण को सेनापति मनोनीत किया। मद्रराज कर्ण के सारथी बने। शल्य के चलाये दैवी रथ पर बैठा हुआ कर्ण बहुत ही शोभित हो रहा था। उसके शरीर की कांति बहुत ही उज्ज्वल हो रही थी। दूसरे दिन कर्ण के सेनापतित्व में फिर से घमासान युद्ध जारी हो गया।

ज्योतिषियों से पूछकर पाण्डवों ने भयानक युद्ध के लिए सबसे उपयुक्त समय का पता कर लिया। नियत समय पर अर्जुन ने कर्ण पर भीषण आक्रमण कर दिया। अर्जुन की रक्षा करता हुआ भीम, अपने रथ पर उसके पीछे-पीछे चला और दोनों एकसाथ कर्ण पर टूट पड़े।

जब दुःशासन ने यह देखा, तो उसने भीम पर बाणों की वर्षा कर दी। उससे भीम क्रुद्ध हो उठा और बोला—"अरे दुःशासन! बस अब तू अपने को गया ही समझ। जो अत्याचार तूने हमपर किये थे उनका बदला अभी सूद-ब्याज समेत चुकाता हूँ। द्रौपदी को जिस दिन तेरे पापी हाथों ने छुआ था, तभी मैंने जो शपथ ली थी, वह अब पूरी हो जायगी।" यह कहते-कहते भीम दुःशासन पर झपटा।

जिस दुरात्मा ने द्रौपदी का अपमान किया था, उसको भीम ने एक ही धक्के में जमीन पर गिरा दिया और उसका एक-एक अंग तोड़-मरोड़ डाला। "धूर्त, नीच कहीं का! तेरे इसी हाथ ने तो द्रौपदी के केश पकड़-कर खींचने का दुःसाहस किया था। पहले उसे ही तेरे शरीर से तोड़ फेंकता हूँ। देखूं तो! अब कौन तेरी सहायता के लिए आगे बढ़ता है! कौन है तेरा साथ देने वाला! किसकी इतनी सामर्थ्य है जो तुझे मेरे हाथों से आज बचा सके! आवे तो वह सामने! जरा देखूं तो उसे।" और दुर्योधन पर इस भांति तीव्र कटाक्ष करते हुए भीमसेन ने पागलों के-से जोश में दुःशासन का हाथ एक झटके में शरीर से अलग करके फेंक दिया और फिर दुःशासन के लहू को ऐसे चूस-चूसकर पीने लगा, जैसे जंगली जानवर पीते हैं। उस समय भीमसेन का विकृत रूप भयानक हिंस्र-जन्तु का सा प्रतीत हो रहा था।

गरम-गरम खून पीने के बाद भीमसेन, महाकाल के-से भयानक रूप में युद्ध के मैदान पर नाचने-कूदने लगा और चिल्लाने लगा—"गया एक पापी इस संसार से! मेरी एक प्रतिज्ञा पूरी हुई। अब दुर्योधन की बारी है। उसका काम तमाम करना बाकी है। वह बलिदान का बकरा किधर है? कोई कह दे उससे कि वह भी तैयार हो जाय।"

भीमसेन का वह भयानक रूप, उसका वह चिल्लाना और वह उन्माद नृत्य देखकर लोगों के दिल दहल उठे। सब कांप गये। यहां तक कि एक बार कर्ण का भी शरीर कांपने लगा।

इसपर शल्य ने कर्ण को दिलासा देते हुए कहा—"कर्ण! तुम तो वीर हो, इस तरह हताश होना तुम्हें शोभा नहीं देता। इस समय तो दुर्योधन को, जो भग्न-हृदय-सा हो गया है, सान्त्वना देनी चाहिए। तुम्हें तो चाहिए था कि उसे धीरज देते। उल्टे तुम्हीं धीरज गँवा बैठे—हिम्मत हार जाओ, यह तो ठीक नहीं। दुःशासन के मारे जाने पर अब सबकी आंखें तुम्हीं को देख रही हैं तुम्हीं सबका आसरा बने हुए हो। युद्ध का सारा दायित्व अब तुम्हींको वहन करना होगा। क्षत्रियोचित धर्म से काम लो। अर्जुन के साथ युद्ध करके या तो विजय का यश प्राप्त करो या वीरोचित स्वर्ग।"

सारथी बने हुए शल्य की ये बातें सुनकर कर्ण गुस्से मे आ गया। उसकी आंखे लाल हो गई और वह असीम क्रोध के साथ अर्जुन पर टूट पड़ा।



"दुर्योधन, इस युद्ध को बन्द कर दो! आपसी बैर भूल जाओ! पांडवों से सन्धि कर लो!" द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने कहा।

पर दुर्योधन झल्लाकर बोला—"पापी भीमसेन ने जंगली जानवर की तरह भैया दुःशासन का खून चूसते हुए जो कुछ कहा, क्या वह तुमने नहीं सुना? तुम तो उसके पास ही खड़े थे! तो फिर सन्धि कर लेने की बेकार बातें क्यों करने लगे हो! हमारे लिए अब सन्धि-चर्चा बेकार है।"

अश्वत्थामा से यह कहकर दुर्योधन ने सेना की व्यूह-रचना को फिर से सुधारकर पांडवों पर हमला करने की आज्ञा दे दी।



अर्जुन और कर्ण के बीच घोर संग्राम छिड़ा हुआ था। कर्ण ने अर्जुन पर एक ऐसा बाण चलाया, जो काले नाग की तरह जहर की आग उगलता गया। अर्जुन की ओर उस भयानक तीर को आता देख कृष्ण ने रथ को पांव के अगूंठे से दबा दिया, जिससे रथ जमीन में पांच अंगुल धंस गया। कृष्ण

की इस युक्ति से अर्जुन मरते-मरते बचा। कर्ण का चलाया हुआ सर्प-मुखास्त्र फुफकारता हुआ आया और अर्जुन का मुकुट उड़ा ले गया। इस-पर अर्जुन के क्रोध का ठिकाना न रहा। जोश के साथ कर्ण पर बाण-वर्षा कर दी। इतने में कर्ण के रथ का बाएं तरफ का पहिया अचानक धरती में धंस गया।

इससे कर्ण घबरा गया और बोला—"अर्जुन! जरा ठहरो! मेरे रथ का पहिया कीचड़ में फंस गया है। ज़रा उसको उठाकर ठीक जमीन पर रख दूं। तबतक के लिए जरा रुक जाओ। पांडव-पुत्र तुम्हें धर्म युद्ध करने का जो यश प्राप्त हुआ है, उसे व्यर्थ ही न गवांओ। मैं ज़मीन पर खड़ा रहूं और तुम रथपर बैठे-बैठे मुझपर बाण चलाओ, यह ठीक नहीं होगा। जरा रुको, मैं अभी पहिया उठाकर ठीक ज़मीन पर रखे लेता हूँ। तबतक के लिए अपनी बाण-वर्षा बंद रखो।"

कर्ण की ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण बोले—"कर्ण! तुम भी धर्म की बातें करने लगे? यह ठीक रहा! अब मुसीबत पड़ने पर धर्म का ख़याल आया तुमको? जब दुःशासन, तुम और दुर्योधन द्रौपदी को भरी सभा में घसीट लाये थे उस वक्त तुम्हें धर्म की याद आई थी? नौसिखिये युधिष्ठिर को जुए के कुचक्र में फँसाते वक्त तुम्हारा धर्म कहां जा छिपा था? जब पाण्डव प्रतिज्ञा पूरी करके बारह साल का वनवास और एक साल का अज्ञात-वास करके लौटे, तब तुम लोगों ने उनका राज्य वापस देने से इन्कार किया था। क्या वह धर्म था? उस समय तुमने अपने धर्म को कहां छिपाये रखा था? जिन दुष्टों ने भीमसेन को जहर देकर मार देने की कोशिश की थी, उनके उस कुचक्र में तुम भी तो साथी बने हुए थे। लाख के भवन में कुन्ती-पुत्रों को ठहराकर उनको सोते हुए जला डालने का जो षड्यन्त्र किया गया था उसमें तुम्हारा भी तो हाथ था! क्या उस समय तुम्हें धर्म की याद आई थी? द्रौपदी का घोर अपमान होते हुए तुमने जो कुछ कहा था क्या वह भूल गये? और यह भी भूल गये कि यह सब देखकर तुम उसी समय कहकहा लगाकर हँसे थे?—'तेरे पति आज तेरे काम न आ

सके। चल अब और किसीको पति कर ले!' क्या य अधार्मिक बातें तुमने द्रौपदी को नहीं सुनाई थीं? एक सती-साध्वी से ऐसी बातें करते हुए तुम्हारा धर्म कहां लुप्त हो गया था? जब दुधमुंहे बच्चे अभिमन्यु को तुम सात लोगों ने एकसाथ घेरकर निर्लज्जता के साथ मार डाला था तब तुम्हारे धार्मिक विचार कहां थे? और आज जब मुसीबत सामने खड़ी दिखाई दे रही है तो तुमको धर्म याद आ रहा है।"

श्रीकृष्ण की इस झिड़की का कर्ण से कोई उत्तर देते न बना। उसन सिर झुका लिया और अटके हुए रथ पर से ही युद्ध जारी रखा। इतने में कर्ण का एक बाण अर्जुन को आ लगा, तो वह थोड़ी देर के लिए विचलित हो उठा। बस, यही जरा-सा समय पाकर कर्ण रथ से उतर पड़ा और पहिया उठाकर समतल पर लाने की कोशिश करने लगा। पर दैव उसका साथ छोड़ चुका था। कर्ण के हजार प्रयत्न करने पर भी पहिया गढ़े से निकलता न था।

तब कर्ण ने परशुराम से सीखे हुए मन्त्रास्त्रों को स्मरण में लाने का प्रयत्न किया; परन्तु परशुराम के शापवश वे भी याद न आये।

इतने में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—"अर्जुन, अब देरी न करो; हिचकिचाओ भी नहीं। इसी समय इस दुष्ट को खत्म कर दो। मारो जल्दी से कसकर एक बाण।"

श्री व्यासजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण की यह बात मानकर अर्जुन ने तान कर एक बाण ऐसा मारा कि कर्ण का सिर कटकर जमीन पर गिर पड़ा।



कवि का मन नहीं मानता कि इस अधार्मिक वध की सारी जिम्मेदारी अर्जुन पर ही छोड़ दी जाय। इसलिए वह कहते हैं कि भगवान् ने आदेश दिया और अर्जुन ने मान लिया। कवि अर्जुन को दोषी नहीं ठहराना चाहते। कर्ण के सर्पास्त्र से अर्जुन की रक्षा करने के लिए किसने रथ को नीचे झुकाया था? भगवान् ने। जब कर्ण जमीन पर खड़ा होकर

रथ का पहिया उठाने में लगा रहा, तब अर्जुन ने उसपर बाण क्यों चलाया? भगवान की प्रेरणा से।

उन दिनों की युद्ध-पद्धति की दृष्टि से ऐसी बातें धर्म-विरुद्ध मानी जाती थीं। धर्म के विरुद्ध चलाने का भार भगवान् के सिवाय और किसके द्वारा वहन किया जा सकता है?

हिंसात्मक युद्ध के द्वारा अधर्म एवं अत्याचार को नष्ट करने की आशा रखना व्यर्थ है। हथियार-बन्द युद्ध से अत्याचार या अन्याय कभी नहीं मिटते। धार्मिक उद्देश्यों के लिए ये जो युद्ध किये जाते हैं, उनमें भी अनिवार्य रूप से अन्याय और अधर्म हो ही जाते हैं। ऐसे युद्धों के परिणामस्वरूप अधर्म की ही वृद्धि होती है।

: ९४ :

दुर्योधन का अन्त

जब दुर्योधन को इस बात की खबर मिली कि युद्ध में कर्ण भी मारा गया, तो उसके शोक की सीमा न रही। उसके लिए यह दुःख असह्य हो उठा। दुर्योधन की इस शोचनीय अवस्था पर कृपाचार्य को तरस आया। उन्होंने दुर्योधन को सान्त्वना देते हुए कहा—

"राजन्! राज्य के लोभ से, यह युद्ध लड़ा जा रहा है। जो-जो काम जिन-जिन लोगों को सौंपा गया, उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक उसको किया और प्राण-पण से युद्ध करते हुए वे स्वर्ग सिधारे हैं। अब तुम्हारा कर्त्तव्य यही है कि पांडवों से किसी प्रकार संधि कर लो। अब युद्ध बंद करना ही श्रेयस्कर होगा।"

यद्यपि दुर्योधन हताश हो चुका था, फिर भी कृपाचार्य की यह सलाह उसे बिलकुल ही पसंद न आई। वह उसे मानने के लिए तैयार न हुआ।

वह बोला—"आचार्य ! यह समय भयभीत होने का नहीं है ! अब तो हमें कायरता से नहीं, बल्कि वीरता से ही काम लेना होगा। यह युद्ध जारी रखना ही मेरा कर्त्तव्य है। आप क्या यह चाहते हैं कि मैं भीरु की भांति अपने प्राण बचा लूं, जबकि मेरी खातिर मेरे बन्धु व मित्रों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया है ? यदि मैं ऐसा करूंगा, तो संसार के लोग मुझ पर थूकेंगे, मेरी निंदा करेंगे। लोक-निंदा सहकर मैं कौनसा सुख भोगने के लिए जीता रहूं ? जब मेरे सारे बंधु-बांधव मारे जा चुके हैं तो फिर संधि करके भी कौनसा सुख भोग सकूंगा ?"

सभी कौरव-वीरों ने दुर्योधन की इन बातों की सराहना की। सबने उसकी बातों का समर्थन किया और कहा कि युद्ध जारी रखना ही ठीक होगा। इसपर सबकी सलाह से मद्रराज शल्य को सेनापति नियुक्त किया गया। शल्य भी बड़ा पराक्रमी, वीर और शक्तिमान था। उसकी शूरता, अन्य कौरव-सेनापतियों की शूरता से कम न थी। इसलिए शल्य के सेनापतित्व में फिर से युद्ध जारी हुआ।

पांडवों की सेना के संचालन का पूरा दायित्व अब युधिष्ठिर ने स्वयं अपने कन्धों पर ले लिया। शल्य पर उन्होंने स्वयं आक्रमण किया। वही युधिष्ठिर, जो शांति की मूर्ति-से प्रतीत होते थे, अब क्रोध की प्रतिमूर्ति-सी बनकर प्रचण्ड वेग से शल्य पर टूट पड़े। उनका वह भीषण-स्वरूप आश्चर्यजनक था। देर तक दोनों में द्वन्द्व-युद्ध होता रहा। आखिर युधिष्ठिर ने शल्य पर शक्ति का प्रयोग किया और मद्रराज शल्य मृत होकर रथ पर से धड़ाम से इस प्रकार गिरे जैसे उत्सव-समाप्ति के बाद इन्द्र-ध्वजा।

जब शल्य भी मारा गया तो कौरव-सेना निःसहाय-सी हो गई और उसके अंदर भय छा गया। परन्तु फिर भी, रहे-सहे धृतराष्ट्र-पुत्रों ने हिम्मत न हारी। उन्होंने चारों तरफ से भीम को घेर लिया और उसपर बाणों की झड़ी लगा दी। लेकिन भीम इससे विचलित होनेवाला कब था ? उसने एक ही हल्ले में उन सबको यमपुर पहुंचाकर छोड़ा। तेरह बरस तक मन में जो प्रतिहिंसा की आग दबाए रक्खी थी, उसको उन धृतराष्ट्र-पुत्रों

के रक्त से शांत करके भीमसेन को ऐसा अनुभव हुआ मानो आज ही उसका जीवन सार्थक एवं सफल हुआ था। वह हर्ष से फूला न समाता था।



दूसरी ओर शकुनि और सहदेव का युद्ध हो रहा था। तलवार की पैनी धार के समान नोकवाला एक बाण शकुनि पर चलाते हुए सहदेव ने गरज कर कहा-- "मूर्ख शकुनि ! अपने किये का फल भुगत ही लो !" और मानो उसकी बात सफल हो गई ! बाण धनुष से निकला नहीं कि शकुनि का सिर कटकर गिरा नहीं।

भगवान् व्यास कहते हैं कि शकुनि का सिर, जो कौरवों के लिए पापों की जड़ के समान था, भूमि पर कटकर गिर पड़ा।



कौरव-सेना के सारे वीर कुरु-क्षेत्र की भूमि पर सदा के लिए सो गये। अकेला दुर्योधन जीवित बचा था। अब उसके पास न तो सेना थी, न रथ ही। उस वीर की स्थिति बड़ी दयनीय थी। ऐसी हालत में दुर्योधन अकेला ही हाथ में गदा लिये एक जलाशय की ओर चुपके से चल दिया। मन में सोचता जाता था--

"दूरदर्शी ज्ञानी विदुर पहले ही से यह सब जानते थे कि युद्ध का यह परिणाम होगा। तभी तो बार-बार मुझे समझाते रहते थे। पर मैंने कब किसीकी सुनी थी !" यह सोचते-सोचते वह जलाशय में उतर गया। ..."पर अवसर बीत जाने पर पछताने से कोई लाभ नहीं होता। किये का फल भुगतना ही पड़ता है।" उसने अपने मन में कहा।



उधर दूसरे दिन जब युद्ध-भूमि में दुर्योधन दिखाई न दिया तो युधिष्ठिर और उनके भाई उसे खोजते हुए उसी जलाशय पर जा पहुंचे जहां दुर्योधन छिपा बैठा था। श्रीकृष्ण भी उनके साथ थे। उन सबको यह पता चल गया था कि दुर्योधन इसी जलाशय में जा छिपा है।

"दुर्योधन ! अपने वंश और कुटुम्ब का नाश कराने के बाद अब पानी

में छिपकर प्राण बचाना चाहते हो ? तुम्हारा दर्प और तुम्हारा आत्माभिमान, क्या हवा में उड़ गया ! तुम क्षत्रियकुल में पैदा हुए हो ! बाहर निकलो और क्षत्रियोचित ढंग से युद्ध करो। भीरु न बनो ! युद्ध से भागकर जीते रहने की चेष्टा न करो ?" युधिष्ठिर ने ललकार कर कहा।

यह सुन दुर्योधन ने व्यथित होकर कहा— "युधिष्ठिर ! यह न समझना कि मैं प्राणों के डर से यहां छिपा बैठा हूं। मैं भयभीत होकर भी यहां नहीं आया। शरीर की थकान मिटाने को ही जरा यहां ठंडे जल में विश्राम कर रहा हूं। युधिष्ठिर, मैं न तो डरा हुआ ही हूं और न मुझे प्राणों का ही मोह है। फिर भी, सच पूछो तो अब युद्ध से मेरा जी हट गया है। मेरे सभी संगी-साथी और बन्धु-बान्धव मारे जा चुके हैं। अब मैं बिलकुल अकेला हूं। राज्य-सुख का मुझे लोभ नहीं रहा। यह सारा राज्य अब तुम्हारा ही है। निश्चिन्त होकर तुम्हीं इसका उपभोग करो।"

"दुर्योधन ! एक दिन वह था जब तुम्हींने कहा था कि सुई की नोक जितनी जमीन भी नहीं दूंगा। शांति की इच्छा से जब हमने तुम्हारे आगे मिन्नतें कीं तब तुमने इनकार कर दिया था। अब कहते हो, मेरा सर्वस्व तुम्हारा ही है। शायद तुम्हें अपने किये पापों का स्मरण नहीं रहा। तुमने जो महापाप किये हैं उन सबको क्या फिर से याद दिलाना जरूरी होगा ? तुमने हमें जो हानियां पहुंचाई थीं और द्रौपदी का जो अपमान किया था, वे सब तो पुकार-पुकार कर तुम्हारे प्राणों की बलि मांग रहे हैं। अब तुम बच नहीं पाओगे।" युधिष्ठिर ने कड़क कर कहा।

दुर्योधन ने जब स्वयं युधिष्ठिर के मुख से ये कठोर बातें सुनीं तो उसने गदा उठा ली और जल में ही उठ खड़ा हुआ और बोला—

"अच्छा, यही सही। तुम एक-एक करके मुझसे भिड़ लो। मैं अकेला हूं और तुम तो पांच हो। पांचों का अकेले के साथ लड़ना न्यायोचित नहीं। फिर तुम पांचों तरोताजा हो। मैं थका हुआ हूं और घायल हूं। कवच भी मेरे पास नहीं है। इसलिए एक-एक करके निबट लो। चलो !

यह सुन युधिष्ठिर बोले— "यदि अकेले पर कइयों का हमला करना

धर्म नहीं, तो बालक अभिमन्यु कैसे मारा गया था ? तुम्हारी ही तो अनुमति पाकर उस एक बालक को सात-सात महारथियों ने मिलकर धर्म के विरुद्ध लड़कर मारा था न ! तब धर्म का ध्यान नहीं रखा ? पर बात यह है कि जब अपने पर संकट पड़ता है तब धर्मशास्त्र का उपदेश सभी लोग देने लग जाते हैं । इस कारण अब बकवास बंद करो और निकल आओ जलाशय से ! पहन लो कवच और हममें से जिस किसीसे भी चाहो, द्वन्द्व युद्ध कर लो । यदि मारे गये तो स्वर्ग पाओगे और यदि जीत गये, तो सारे राज्य के तुम्हीं स्वामी बनोगे।"

यह सुन दुर्योधन जलाशय से बाहर निकल आया और उसने भीम से गदा-युद्ध करने की इच्छा प्रकट की । भीम राजी हो गया और दोनों में गदा-युद्ध शुरू हो गया । दोनों की गदाएं जब एक-दूसरे से टकरातीं तो उनमें से चिनगारियां निकल पड़ती थीं । इस तरह बड़ी देर तक युद्ध जारी रहा ।

इसी बीच दर्शक लोग आपस में चर्चा करने लगे कि दोनों में जीत किसकी होगी । श्रीकृष्ण ने इशारों में ही अर्जुन को बताया कि भीम दुर्योधन की जांघ पर गदा मारेगा तो जीत जायगा । भीमसेन ने श्रीकृष्ण का यह इशारा तुरत भांप लिया और अचानक सिंह की भांति दुर्योधन पर झपटा और उसकी जांघ पर जोर का गदा-प्रहार किया ।

जांघ पर गदा की यह चोट लगनी थी कि दुर्योधन धड़ाम से पृथ्वी पर कटे पेड़ की भांति गिर पड़ा । यह देख भीम और उन्मत्त हो गया । उसका पुराना बैर मूर्तिमंत हो उठा । उसी उन्मत्त अवस्था में उसने आहत पड़े हुए दुर्योधन के माथे पर जोर से एक लात जमाई ।

भीम का यह कार्य श्रीकृष्ण को ठीक न लगा । वह बोले—"भीमसेन ! अब बस करो ! तुमने अपना ऋण चुका दिया । तुम्हारा वचन पूरा हुआ। फिर भी दुर्योधन क्षत्रिय राजा है और हमारे ही कुल का है। इसलिए यह ठीक नहीं कि तुम उसके माथे पर इस प्रकार लात मारो । यह तो शीघ्र ही अपनी मौत मर जायगा। अब हम यहां खड़े ही क्यों रहें !

दुर्योधन और उसके साथी-संगी अब नष्ट हो चुके हैं। चलो, हम अपने स्थान को ही चलें।"

जांघ टूट जाने के कारण अधमरी अवस्था में पड़े दुर्योधन ने जब श्रीकृष्ण के ये वचन सुने तो उसके दिल में क्रोध और द्वेष की आग-सी भड़क उठी। वह चिल्लाकर बोला—"अरे निर्लज्ज कृष्ण! धर्म-युद्ध करने-वाले हमारे पक्ष के सारे यशस्वी महारथियों को तुम्हींने कुचक्र रचकर मरवा डाला है, तिसपर मुझे पापी कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? यदि तुमने कुचक्र न रचा होता, तो कर्ण, भीष्म या द्रोण भला समर में परास्त होने वाले थे?

मरणासन्न अवस्था में भी दुर्योधन को इस प्रकार प्रलाप करते देख श्रीकृष्ण बोले—

"दुर्योधन, तुम बेकार की बातें कर रहे हो। अब यह तुम्हारा अन्त समय है। लोभ में पड़कर और राज्य-सत्ता के घमण्ड से मदान्ध होकर तुमने जो अनगिनत महा पाप किये, उन्हींका यह परिणाम है। अब तो कुछ समझ से काम लो! क्यों किसीको व्यर्थ दोष देते हो? तुम अपने ही किये का फल पा रहे हो। यह क्यों नहीं समझते और उसका पश्चात्ताप करते? अपने अपराध के लिए दूसरों को दोष देना बेकार है।"

यह सुन दुर्योधन बोला—"क्षत्रिय लोग जैसी मृत्यु की अभिलाषा करते हैं, वैसी ही वीरोचित मृत्यु मुझे प्राप्त हुई है। मेरे समान भाग्यवान आज और कौन होगा? मरने पर भी सदा मेरा सुयश बना रहेगा। पर तुम जीते रहो और लोक-निन्दा के पात्र बने रहो। भीमसेन ने जो मेरे सिर पर लात मारी है उसकी मुझे जरा भी चिन्ता नहीं; क्योंकि अभी थोड़ी ही देर में चील-कौए भी मेरे माथे पर अपनी लातें रखने ही वाले हैं।



लालच में पड़कर दुर्योधन अधर्म पर उतारू हुआ था। उसके फल-स्वरूप जो बैर-भाव बढ़ा, उसके कारण दोनों तरफ अधर्म के अनेक काम हुए। और अधर्म का फल अधर्म ही हुआ करता है।

: ६५ :

पांडवों का शर्मिंदा होना

कुरु-क्षेत्र का युद्ध अभी पूरा हुआ भी नहीं था कि श्रीकृष्ण के बड़े भाई हलधर श्रीबलदेव अपनी तीर्थ-यात्रा समाप्त करके वापस आ गये। उसी समय भीम और दुर्योधन में गदा-युद्ध समाप्त ही हुआ था। जब बलराम को पता चला कि भीमसेन ने दुर्योधन की जांघ पर गदा मारी तो उन्हें बड़ा गुस्सा आया।

वह भीम को घृणा से देखते हुए बोले— "धिक्कार है भीम तुमको जो तुमने कमर के नीचे गदा मारकर गदा-युद्ध के नियम का भंग किया। तुम्हें नहीं मालूम कि ऐसा करना महा अनुचित है।"

भीम के व्यवहार से बलदेव को इतना क्रोध आया कि वह उनसे सहा न गया। वह श्रीकृष्ण से बोले— "भैया कृष्ण! तुम तो अन्याय और अनीति को सह लेते हो; पर मुझसे अनीति होते नहीं देखी जाती। मैं अनीति करने वाले को जरूर दंड दूंगा।" यों कहते-कहते बलराम अपना हल हाथ में लेकर भीमसेन पर झपटे।

श्रीकृष्ण ने जब यह देखा कि बलराम बहुत क्रोध में है और गुस्से में न जाने क्या अनर्थ कर डालें तो वे उनका रास्ता रोककर खड़े हो गये और उनको समझाते हुए बोले— "भाई साहब, आप जरा शांत हो कर सोचिये। पांडव हमारे मित्र हैं। निकट के संबंधी हैं। वे दुर्योधन के अत्याचारों से पीड़ित हुए हैं। जब द्रौपदी का भरी सभा में अपमान किया गया था तभी भीम ने अपनी गदा से दुर्योधन की जांघें तोड़ डालने की प्रतिज्ञा की थी। सब लोग भीम की इस प्रतिज्ञा से परिचित हैं और स्वयं दुर्योधन भी भीमसेन की उस प्रतिज्ञा को जानता है। फिर आप जानते ही हैं कि

अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना, क्षत्रियों का तो धर्म है ही ! इसलिए मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप उतावले न होइए। पांडव निर्दोष है। उनसे नाराज न होइए। सिर्फ एक ही घटना को लेकर धर्माधर्म का विवेचन करना ठीक नहीं है। भीम का काम न्याय-युक्त है या नहीं, इस बात का निर्णय करने से पहले दुर्योधन के किये अत्याचारों पर भी ध्यान देना होगा। अब तो कलियुग का प्रारम्भ हो रहा है, इसमें तो अन्याय का बदला अन्याय ही माना जायगा। अतः दुर्योधन के किये कई अन्यायों और छल-प्रपंचों के बदले यदि भीमसेन ने कटि के नीचे गदा मार भी दी, तो वह अधर्म कैसे हो सकता है ? इसी दुर्योधन की प्रेरणा से—उसके उकसाने पर—पीछे से बाण मारकर हमारे अभिमन्यु का धनुष काट दिया गया था। जब अर्जुन का पुत्र रथ-विहीन होकर बिना धनुष के जमीन पर खड़ा था, तभी उसपर बहुत-से महारथियों ने एक साथ हमला करके उसे मार डाला। भीमसेन इसको मार भी डालता तो यह कोई अधर्म या अन्याय नहीं होता। फिर यह भी तो सोचिये कि बार-बार इसने पांडवों पर अत्याचार किये और व्यर्थ में उनसे युद्ध भी छेड़ा। तब फिर यह बात कैसे भूली जा सकती है कि मौका आने पर भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा का पालन न करेगा ? इस कारण भीम के इस कृत्य को एकदम अन्याय नहीं कहा जा सकता !"

श्रीकृष्ण की इन दलीलों का बलराम पर कोई असर हुआ हो ऐसा नहीं लगा। वे अपनी राय पर दृढ़ रहे और भीम के काम को न्याय-युक्त मानने को तैयार न हुए। फिर भी उन्होंने अपने क्रोध को शांत जरूर कर लिया।

वह बोले—"भैया कृष्ण ! तुम चाहे जो कहो, मुझे तो विश्वास है कि दुर्योधन को वीरोचित स्वर्ग प्राप्त होगा और भीमसेन के सुयश पर कलंक की कालिमा लगी रहेगी। गदा-युद्ध के नियम का उल्लंघन करने के कारण भीम को संसार सदा धिक्कारता रहेगा। और जिस स्थान पर ऐसा अन्याय हुआ हो वहां मैं तो पल भर भी नहीं ठहरूंगा।" इतना कहकर

बलराम तुरन्त द्वारका को प्रस्थान कर गये ।



"युधिष्ठिर ! आप भी तो कुछ कहिये । इस बारे में आपकी क्या राय है ? आप क्यों चुप है ?" श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर की ओर घूमते हुए पूछा ।

युधिष्ठिर बोले— "श्रीकृष्ण ! भूमि पर मृत-तुल्य पड़े दुर्योधन के सिर पर भीम का लात मारना मुझे अच्छा न लगा । यह बात ठीक है कि कौरवों ने हमपर बहुत अत्याचार किये और हमें असंख्य कष्ट पहुंचाये । और यह भी मैं जानता हूं कि भीमसेन का मन क्रोध और दुःख के मारे बड़ा विकल हो जाता रहा है । उसी विकलता के कारण प्रतिज्ञा लेकर भीमसेन ने जिस ढंग से दुर्योधन को मारा था वह कार्य न्याय-युक्त है या नहीं इसका मैं ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाता । भीमसेन ने भारी मुसीबतें झेली हैं, इसलिए उसके इस काम के विरुद्ध एकाएक मुझसे कुछ कहते भी नहीं बनता है ।"

जब धर्म को क्षति पहुंचती है तो सज्जनों का मन शांत नहीं हो पाता । पर मन पशोपेश में जरूर पड़ जाता है । भीम के इस कार्य से धर्मराज की बुद्धि कुंठित हो गई । विवेकशील अर्जुन भी चुप रहा । उसने न भीमसेन को सराहा, न उसे दोष ही दिया । लेकिन पास में जो दूसरे क्षत्रिय खड़े थे, वे दुर्योधन की निन्दा करते नहीं थकते थे । यह श्रीकृष्ण को अच्छा न लगा । वे बोले—

"क्षत्रियगण ! आप लोगों को यह शोभा नहीं देता कि घायल होकर अधमरे दुर्योधन की आप यों निंदा करें । यह ठीक है कि नासमझी के कारण ही दुर्योधन की यह अवस्था हुई है । दुष्टों की संगति का ही यह प्रभाव था कि दुर्योधन भी दुष्ट बना, फिर भी यह राजा है— राजकुल का है । इसे वीर-मृत्यु प्राप्त हुई है । इसे हम यहीं छोड़ें और उसे अपने कर्मों के अनुसार फल पाने दें ।"

घायल और अधमरे तड़पते हुए दुर्योधन ने जब श्रीकृष्ण के ये बोल सुने

तो वह मारे क्रोध के आपे-से बाहर होगया। अपने दोनों हाथों को टेककर, बड़ी कठिनाई से वह उठा और क्रोधभरी दृष्टि से श्रीकृष्ण को देखता हुआ बोला— "अरे निर्लज्ज कृष्ण! मुझे असहाय अवस्था में डालकर ऐसी बढ़-चढ़ कर बातें बोलते तुम्हें शर्म नहीं आती? क्या तुम यह बात भूल गये कि तुम्हारा पिता वसुदेव राजा कंस के यहां नौकर था? राजा लोगों के साथ मित्रता करने तक की तो योग्यता तुममें है नहीं और मुझे दुष्ट कहने की हिमाकत करते हो? तुम्हींने तो भीम को इशारे से मेरी जांघ पर गदा मारने की सलाह दी थी। यह न समझना कि मैं तुम्हारी चालों से अपरिचित हूं। जब हम दोनों लड़ रहे थे तो तुमने अर्जुन से बातें करने के बहाने भीम को मेरी जांघों पर गदा मारने का जो इशारा किया था, तुम समझते होगे कि मैं यह नहीं जानता। पर तुम भूलते हो। इसी प्रकार पितामह भीष्म को तुम्हारी ही चाल ने परास्त किया था। शिखण्डी को उनके आगे खड़ा करके अर्जुन से उनपर बाण चलवाना तुम्हारा ही काम था। धर्मराज से झूठ बुलवाकर आचार्य द्रोण का तुम्हींने वध करवाया। युधिष्ठिर की झूठी बात को सच मानकर आचार्य ने धनुष डाल दिया और तभी पापी धृष्टद्युम्न ने ध्यान-मग्न बैठे आचार्य का सिर काट डाला। उसे ऐसा करने से रोकना तो दूर, तुम उलटा उसके इस कार्य से खुश हुए थे। कर्ण ने अर्जुन का वध करने के लिए जिस शक्ति को सुरक्षित रक्खा था, तुम्हारी ही तो प्रवंचना के कारण विवश होकर उसने उसका प्रयोग घटोत्कच पर कर दिया। अपने हाथ कट जाने पर बूढ़े भूरिश्रवा जब शरों की शैय्या पर बैठे प्रायोपवेश कर रहे थे, उस समय सात्यकि ने तुम्हारी प्रेरणा ही से तो उनका वध किया था। कीच में फंसे रथ के पहिये को जब कर्ण उठा रहा था, तब अर्जुन ने नीच आदमी की तरह उसका वध किया था। वह भी तुम्हारे ही आदेश से! अरे दुरात्मा, हम सबके नाश का कारण केवल तुम्हीं हो। तुम्हारी ही माया के कारण सिन्धुराज जयद्रथ सूर्यास्त होगया यह समझकर असावधान रहे और धोखे से मारे गये। धिक्कार है तुम्हें! तुम्हारी इस मक्कारी और धोखेबाजी के लिए

सारा संसार तुम्हारी निन्दा करेगा ।"

दुर्योधन इस प्रकार श्रीकृष्ण पर वाक्-बाणों की बौछार करता-करता, पीड़ा के मारे कराहता हुआ फिर से गिर पड़ा। वह बैठा न रह सका।

श्रीकृष्ण उसकी इस अवस्था पर तरस खाते हुए बोले—"गांधारी-पुत्र ! क्रोध की आग से अपने प्राणों को क्यों व्यर्थ जला रहे हो। तुम अपने ही पापों के फल-स्वरूप नाश को प्राप्त हुए हो। उसका दोष मुझे व्यर्थ ही दे रहे हो। यह तुम्हारी भूल है। तुम्हारे नाश का कारण मैं नहीं हूं। तुम्हारे ही पाप के कारण भीष्म और द्रोण मारे गये। पाण्डव-पुत्रों पर तुमने जो अत्याचार किये थे, उनका कोई और नतीजा निकलने वाला था ही नहीं। उन अत्याचारों की भला कोई सीमा थी ? कुन्तीदेवी समेत उन सबको जला डालने का तुमने जो कुचक्र रचा था, वह तुम्हें याद नहीं रहा ? द्रौपदी का तुमने जो अपमान किया था, उसका तुम्हें पूरा बदला मिला क्या ? तुमने दूसरों को हानि पहुंचाने की जो कोशिशें कीं उसीके कारण ही आपसी वैर-विरोध बढ़ता गया और आज तुम इस अवस्था को प्राप्त हुए। फिर अपने किये का दोष दूसरों के माथे क्यों ? माना कि पांडवों की तरफ से भी अन्याय हुए थे। लेकिन क्या वे अपने-ही-आप हुए ? वे तुम्हारे ही बोए हुए पाप-बीज के तो फल थे ! लालच में पड़कर तुमने जो महापाप किये, उन्हींका यह फल तुम्हें भुगतना पड़ रहा है; यह निश्चय समझो। फिर भी तुम्हारी मृत्यु वीरोचित हुई और तुम वीरोचित स्वर्ग को सिधारोगे। तब शोक और क्लेश क्यों ? तुम समझदार भी तो हो !"

यह सुन दुर्योधन ने कुछ नरमी से कहा—"ठीक कहते हो। कृष्ण ! आज तो मैं मित्रों व बांधवों के साथ स्वर्ग जा रहा हूं। पर याद रक्खो तुम लोगों को अभी दुःख के सागर में डूबे रहना होगा। तुम लोगों ने भी जो-कुछ किया है उसका फल तुम लोगों को भी तो मिलेगा न !"

दुर्योधन के ये अंतिम वचन एक महान् सत्य के रूप में उपस्थित लोगों को लगे। दुर्योधन के दुःखी, लेकिन जरा देर के लिए शांत मुंह पर एक

प्रकार का तेज चमकने लगा। व्यासजी कहते हैं कि उस समय आकाश से दुर्योधन पर पुष्प-वर्षा होने लगी और गन्धर्वों ने दुंदुभि बजाई। दिशाओं में एक अपूर्व ज्योति फैल गई।

यह सब देखकर श्रीकृष्ण और पांचों पांडव मन-ही-मन बड़े लज्जित हुए। उन्हें लगा कि दुर्योधन के कथन में सचाई है।

"दुर्योधन ने सच ही कहा है। हम केवल धर्म-युद्ध करके उसपर विजय नहीं पा सकते थे। बिना कुछ प्रपंच रचे, उसपर विजय पाना हमारे लिए संभव नहीं था।" श्रीकृष्ण ने कहा और सब अपने-अपने रथों पर सवार होकर अपनी छावनी की ओर चल दिये।

: ९६ :

अश्वत्थामा

दुर्योधन पर जो-कुछ बीती उसका हाल सुनकर अश्वत्थामा बहुत क्षुब्ध हो उठा। अपने पिता द्रोणाचार्य को मारने के लिए जो कुचक्र रचा गया था वह उसे भूला नहीं था। भीमसेन ने युद्ध के माने हुए नियमों के विरुद्ध कटि के नीचे दुर्योधन को गदा मारकर जो हराया, यह जानकर वह मारे क्रोध के और भी आपे-से बाहर हो गया। तुरंत वह उस स्थान पर जा पहुंचा जहां दुर्योधन मृत्यु की प्रतीक्षा करता हुआ पड़ा था। दुर्योधन के सामने जाकर अश्वत्थामा ने दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा की कि आज ही रात में वह पांडवों का बीज नष्ट करके रहेगा।

मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए दुर्योधन ने जब यह सुना तो उसका पुराना बैर फिर जागृत हो आया और उसे कुछ प्रसन्नता हुई। उसके आसपास खड़े लोगों से कहकर अश्वत्थामा को कौरव-सेना का विधिवत् सेनापति बनाया और बोला--

"आचार्य पुत्र! यह मेरा शायद अंतिम कार्य है। शायद आप ही

मुझे शांति दिला सकें। मैं बड़ी आशा से आपकी राह देखता रहूंगा।"



सूरज डूब चुका था, रात हो गई थी। घने जंगल में चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा था। एक बड़े बरगद के पेड़ के नीचे अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा रात बिताने की गरज से ठहरे। कृप और कृतवर्मा बहुत थके हुए थे। इसलिए दोनों वहीं पड़े-पड़े सो गये। लेकिन अश्वत्थामा को नींद नहीं आई। क्रोध और द्वेष के मारे सर्प की भांति फुफकारता हुआ वह जागता रहा। रात का समय था। चारों ओर कई तरह के जानवरों की बोलियां सुनाई दे रही थीं। उनको सुनता-सुनता अश्वत्थामा विचार में डूब गया।

उस बरगद की शाखों पर कौओं के झुण्ड-के-झुण्ड बसे हुए थे। रात को वे सब सोये हुए थे कि इतने में एक बड़े भारी गिद्ध ने आकर उन कौओं पर आक्रमण कर दिया। एक-एक करके उन सोते हुए कौओं पर चोंच मारकर गिद्ध उनको चीरने-फाड़ने लगा। रात का वक्त था। गिद्ध को तो खूब दिखाई दे रहा था। लेकिन कौओं को अंधेरे में कुछ सूझता नहीं था। वे चिल्ला-चिल्ला कर मरते गये। अकेले गिद्ध के आगे सैकड़ों कौओं की एक न चली।

यह देख अश्वत्थामा सोचने लगा—"अकेले गिद्ध ने इन सभी कौओं को सोते समय उनकी कमजोरी का लाभ उठाकर जिस तरह मार डाला है, ठीक वैसे ही मैं भी इन अधम पांडवों को और मेरे पिता की हत्या करने वाले धृष्टद्युम्न को, उनके संगी-साथियों समेत, एकसाथ ही क्यों न मार डालूं? अभी रात का समय है और वे सब अपने शिविरों में पड़े सोते होंगे। इस समय उन सबका वध कर डालना बहुत सुगम होगा। यद्यपि ऐसा करना न्याय-युक्त नहीं है; पर उन्होंने भी तो अधर्म का ही सहारा लेकर मेरे पूज्य पिता एवं राजा दुर्योधन को मारा है। इस अधर्म का बदला अधर्म से ही क्यों न लूं? इस गिद्ध ने तो मुझे समय पर उपदेश ही दिया

समझो ! फिर समय को देखते हुए, उसके अनुसार युद्ध के नये-नये ढंग को काम में लाना अन्याय कैसे हो सकता है ? शास्त्र भी तो इस बात की अनुमति देते हैं कि जब शत्रु थका हुआ हो, या उसका सैन्य बल इधर-उधर बंटा हुआ हो, तब उसपर आक्रमण किया जा सकता है । और हमारे पास अब इतनी सेना है कहां, जो हम धर्म-युद्ध में उनका मुकाबला कर सकें । जब हम कमजोर है तो सोते में उनपर छापा मारना अनुचित नहीं हो सकता । और फिर इसके सिवा हमारे पास और उपाय ही क्या है ?"

बहुत सोच-विचार कर अंत में अश्वत्थामा ने गिद्ध-कौए वाली नीति से ही काम करने का निश्चय किया और कृपाचार्य को जगाकर उनको अपना निश्चय सुनाया ।

अश्वत्थामा की बात सुनकर कृपाचार्य बड़े लज्जित हुए । वे बोले—"अश्वत्थामा, ऐसा अन्यायपूर्ण विचार और तुम्हारे मन में ! बेटा, यह तो घोर पाप है । संसार के इतिहास में ऐसा अन्याय अबतक नहीं हुआ । जिस राजा के लिए हमने हथियार उठाये थे, वह तो अधमरा पड़ा है । हमने अबतक अपने कर्त्तव्य का उचित रीति से पालन किया । लोभी, मूर्ख और पापी राजा दुर्योधन की खातिर हमने युद्ध किया और हार गये । जो-कुछ हमें करना था वह हमने किया । अब हमें इस काम से बाज आना चाहिए । अब तो जाकर धृतराष्ट्र, महासती गांधारी, महा बुद्धिमान् विदुर आदि नीतिज्ञ लोगों से सलाह लें और जो भी उनकी सलाह हो, उसीके अनुसार काम करें । इसमें सन्देह नहीं कि वे हमें ठीक ही सलाह देंगे ।"

यह सुनकर अश्वत्थामा का क्रोध और शोक प्रबल हो उठा । वह बोला—"मामाजी ! हरेक व्यक्ति अपनी ही बात को सही समझा करता है । जिसे आप अधर्म समझते है वही मुझे धर्म मालूम होता है । पांडवों ने जिस ढंग से पिताजी और दुर्योधन को मारा है क्या वह धर्म के अनुकूल था ? तो फिर उसका बदला लेने के लिए मैं भी अधर्म का सहारा लूं तो वह अन्याय कैसे हो सकता है ? चाहे कोई कुछ भी समझे, मुझे तो अब यही उचित लगता है । यहां तक कि मैं तो इस निश्चय पर पहुंच चुका हूं कि

ऐसा करके ही मैं अपने पूज्य पिता और दुर्योधन का ऋण चुका सकूंगा। मैं अभी रात में पांडवों के शिविर में घुस जाऊंगा और धृष्टद्युम्न और पांडवों को, जो अपने कवच उतारकर सोये पड़े होंगे, जरूर ही मारने वाला हूं।

अश्वत्थामा की ये बातें सुनकर कृपाचार्य व्यथित हो गये। वे बोले—"अश्वत्थामा! तुम्हारे यश का प्रकाश सारे संसार में फैला हुआ है। अपने यश के इस शुभ-वस्त्र मे रक्त का अमिट धब्बा लगवाना चाहते हो? सोते हुओं को मारना कभी भी धर्म नहीं हो सकता। तुम यह विचार छोड़ दो।"

यह सुन अश्वत्थामा झल्लाकर बोला—"आपने भी क्या यह धर्म-धर्म की रट लगा रक्खी है? पापी पांडवों ने पिताजी का तब वध किया था जब वे अपने सारे अस्त्र-शस्त्र फेंक चुके थे और रथ पर ध्यान-मग्न बैठे हुए थे। धर्म का बन्धन तो पाण्डवों के हाथों कभी का टूट चुका है। अब क्या कुछ धर्म बाकी रह गया है? कीचड़ मे फंसे हुए अपने रथ के पहिये को जब कर्ण उठा रहा था तब अर्जुन ने धर्म के विरुद्ध ही उसपर बाण चलाकर उसे मारा था। भीमसेन ने दुर्योधन को कमर के नीचे गदा मार कर गिराया तब फिर धर्म रहा कहां? पांडवों ने तो अधर्म की बाढ़ ही ला दी है। ऐसे निर्दयी लोगों से बदला लेते समय धर्म और अधर्म की विवेचना करना ही व्यर्थ है। मेरे पिता के हत्यारे धृष्टद्युम्न को सोते में मारने के फलस्वरूप यदि मुझे कृमि-कीट का भी जन्म लेना पड़े तो भी वह मुझे प्रिय होगा।"

दृढ़तापूर्वक अपनी इच्छा जताकर अश्वत्थामा पांडवों के शिविर की ओर जाने को उठा। यह देख कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उठ खड़े हुए और बोले—"अश्वत्थामा! आज तुम दुःसाहस करने पर ही उतारू मालूम होते हो! अकेले तुम्हारा जाना ठीक नहीं। तुम जो करने जा रहे हो वह उचित नहीं है। पर हम तुम्हें इस प्रकार शत्रु के मुंह मे अकेले नहीं जाने देंगे। हम भी तुम्हारे ही साथ चलेंगे।"

यह कहकर कृपाचार्य और कृतवर्मा भी अश्वत्थामा के साथ हो लिये।



आधी रात बीत चुकी थी। पांडवों के शिविरों में सभी सैनिक मीठी नींद में सो रहे थे। धृष्टद्युम्न भी कवच उतार कर अपने शिविर में बेसुध-सा सोया पड़ा था। इतने में अश्वत्थामा और उसके दोनों साथी वहां आ पहुंचे। अश्वत्थामा पहले धृष्टद्युम्न के शिविर में घुसा और सोये पड़े धृष्टद्युम्न पर उन्मत की भांति नाचने-कूदने लगा। अश्वत्थामा के पैरों तले कुचला जाकर धृष्टद्युम्न तत्काल ही मर गया। इसी प्रकार सभी पांचाल वीरों को अश्वत्थामा ने कुचलकर भयानक ढंग से मार डाला और फिर द्रौपदी के पुत्रों की भी एक-एक करके इसी प्रकार हत्या कर दी।

कृपाचार्य और कृतवर्मा ने भी इस हत्याकाण्ड में अश्वत्थामा का हाथ बंटाया। वहां तीनों ने ऐसे-ऐसे अत्याचार किये जैसे कि भारत में अबतक किसीने सुने भी न थे। यह कुकर्म करके तीनों ने वहां आग लगा दी। आग भड़क उठी और शिविरों में फैल गई। इससे सोये पड़े सारे सैनिक जाग उठे और भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। उन सबको अश्वत्थामा ने बड़ी निर्दयता से मार डाला और बोला—"हमारा कर्त्तव्य अब पूरा हुआ। जो कुछ करना था, वह कर चुके। अब दुर्योधन को जाकर यह खुशखबरी सुनानी चाहिए। यदि वह जीवित हुए तो यह समाचार सुनकर बहुत ही प्रसन्न होंगे।" यह कह तीनों उस स्थान की ओर चले जहां दुर्योधन पड़ा मौत की घड़ियां गिन रहा था।

: ९७ :

अब विलाप करने से लाभ?

दुर्योधन के पास पहुंचकर अश्वत्थामा ने कहा—"महाराज दुर्योधन! आप अभी जीवित हैं क्या? देखिये, आपके लिए मैं ऐसा अच्छा समाचार

लाया हूं कि जिसे सुनकर आपका कलेजा जरूर ही ठंडा हो जायगा और आप शांति से मर सकेंगे। जो-कुछ हम लोगों ने किया है, उसे आप ध्यान से सुने। सारे पांचाल खत्म कर दिये गये। पाण्डवों के भी सारे पुत्र मारे गये। पांडवों की सारी सेना का हमने सोते में ही सर्वनाश कर दिया। पांडवों के पक्ष में अब केवल सात ही व्यक्ति जीवित बच गये हैं। हमारे पक्ष में कृपाचार्य, कृतवर्मा और मैं––तीन रह गये हैं।"

यह सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ और बोला–– "गुरु भाई अश्वत्थामा! आपने मेरी खातिर वह काम किया है जो न भीष्म पितामह से हुआ और न जिसे महावीर कर्ण ही कर सके। अब मैं शांति से मर सकूंगा।" इतना कहकर दुर्योधन ने अपने प्राण त्याग दिये।



रात के समय अचानक छापा मारकर अश्वत्थामा और उनके साथियों ने सारी पांडव-सेना को तहस-नहस कर दिया यह जानकर युधिष्ठिर को भारी व्यथा हुई। वह भाइयों से बोले–– "अभी-अभी हमें विजय प्राप्त हुई कि इतने में बुरी तरह इस प्रकार हार खा गये। जो परास्त हुए थे, अब तो उनकी ही जीत हो गई। महापराक्रमी कर्ण के भी आक्रमण से द्रौपदी के जो पुत्र बच गये थे, वे ही अब हमारी असावधानी के कारण कीड़ों की भांति जल मरे। हमारी अवस्था ठीक उस व्यापारी की-सी हो गई जो बड़े महासागर को बड़ी सुगमता से पार कर के अन्त में किसी छोटे-से नाले में डूबकर नष्ट हो जाता है।"

द्रौपदी की दयनीय अवस्था की क्या कहें कि जिसके पांचों बेटे एक साथ अचानक काल-कवलित हो गये! यह शोक उसके लिए असह्य हो उठा। धर्मराज युधिष्ठिर के पास आकर वह कातर स्वर में पुकार उठी–– "क्या इस पापी अश्वत्थामा से बदला लेने वाला हमारे यहां कोई नहीं रहा?"



शोक-विह्वल द्रौपदी की हालत देखकर पांचों पांडव अश्वत्थामा की खोज में निकले। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते आखिर उन्होंने गंगा नदी के तट पर

व्यासाश्रम में छिपे अश्वत्थामा का पता लगा ही लिया। पाण्डवों और श्रीकृष्ण को देखते ही अश्वत्थामा घबरा गया। दिव्यास्त्रों और उनके मंत्रों का तो अश्वत्थामा को ज्ञान था ही ! उसने धीरे से एक तिनका उठा लिया और उसे अभिमन्त्रित करके और "यह पाण्डवों के वंश का आमूल नाश करदे" यह कहकर उस तिनके को हवा में छोड़ दिया। मंत्र-बल से वह तिनका अस्त्र बन गया और सीधे राजकुमारी उत्तरा की कोख में जा पहुंचा। पांडव-वंश का नामो-निशान तक इससे मिट गया होता; लेकिन श्रीकृष्ण के प्रताप व अनुग्रह से उत्तरा के गर्भ की रक्षा हो गई। समय पाकर उत्तरा के गर्भ का यही पिंड महाराज परीक्षित के रूप में उत्पन्न हुआ और पांडवों के वंश का एकमात्र चिह्न रह गया।

❁

अश्वत्थामा और भीमसेन में युद्ध छिड़ गया; लेकिन अन्त में अश्वत्थामा हार गया। वह अपनी पराजय के चिह्न के रूप में अपने माथे का उज्ज्वल रत्न पांडवों को भेंट करके अरण्य में चला गया। भीमसेन ने वह रत्न द्रौपदी के हाथ में रखा और कहा— "कल्याणी ! यह रत्न तुम्हारी ही खातिर लाया हूं। जिस दुष्ट ने तुम्हारे पुत्रों की हत्या की थी, वह परास्त कर दिया गया है। दुर्योधन मारा गया और दुःशासन का लहू भी मैंने पिया। इस प्रकार मैंने अपनी सारी प्रतिज्ञाएं पूरी कर लीं। आज मुझे बड़ी शांति अनुभव हो रही है।"

द्रौपदी भीमसेन का दिया वह रत्न युधिष्ठिर को देकर नम्रता के साथ बोली— "निष्पाप धर्मराज युधिष्ठिर ! इस रत्न को आप अपने मस्तक पर धारण करें।"

❁

हस्तिनापुर का सारा नगर निःसहाय स्त्रियों और अनाथ बच्चों के रोने-कलपने के हृदय-विदारक शब्दों से गूंज उठा। युद्ध समाप्त होने के समाचार पाकर हजारों निःसहाय स्त्रियों को साथ लेकर वृद्ध महाराज धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र की समरभूमि में गये, जहां एक ही वंश के लोगों ने—

भाई-बन्दों ने—एक-दूसरे से भयानक युद्ध करके अपने कुल का सर्वनाश कर डाला था। अन्धे धृतराष्ट्र ने बीती बातों का स्मरण करते हुए बहुत विलाप किया। पर उनके विलाप को वहां सुनता कौन ? वहां तो शृगाल और कुत्ते बेरोक-टोक घूम रहे थे और जो अबतक सबके प्रिय थे उनकी लाशों को बेरोकटोक खींचते-खाते थे। चील, कौए ओर गिद्ध लाशों पर से मांस नोचते-खसोटते थे। उन स्त्रियों और वृद्ध धृतराष्ट्र का विलाप सुनकर वे सब एक जोर का कोलाहल कर उठे मानो कह रहे हों कि अब विलाप करने से लाभ क्या ?

: ९८ :

सांत्वना कौन दे?

संजय ने दुःखी महाराज धृतराष्ट्र से कहा—"महाराज, दूसरे के सांत्वना देने मात्र से दुःखी का दुःख दूर नहीं हो सकता; यह तो अपने मन को दृढ़ करने से ही होगा। अतः आप धीरज धरें और शांत हों। जिन असंख्य राजा-महाराजाओं ने आपके पुत्र की खातिर युद्ध में प्राण दिये हैं, उनके दूसरे मृत बन्धु-बान्धवों का अन्तिम संस्कार भी तो आपको करना है।"

धर्मात्मा विदुर ने भी धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने की चेष्टा की। वह बोले— "महाराज ! युद्ध में जिनकी वीरोचित मृत्यु हुई है उनके बारे में तो शोक करना ही नहीं चाहिए। आत्मा अजर एवं अमर है। आत्माओं में न तो कोई भाई है, न बन्धु। उनमें आपसी नाता-रिश्ता कुछ नहीं होता। आपके जो पुत्र मर गये है उनका अब आपके साथ कोई वास्तविक बन्धुत्व नहीं रहा। जबतक कोई जीवित रहता है तभी तक उसका रिश्ता माना जाता है; परन्तु देहावसान होने के बाद कोई किसीका नहीं रहता। सभी प्राणी किसी अदृश्य स्थान से आकर संसार में प्रकट होते हैं और फिर किसी अदृश्य लोक में जाकर लीन हो जाते हैं। जीवन का यही नियम है,

इसलिए रोना-कलपना व्यर्थ है। रणभूमि में लड़ते हुए जिन्होंने प्राण त्यागे वे तो देवराज इन्द्र के अतिथि बनकर देवलोक में निवास करते हैं। इस-लिए महाराज, बीती बातों पर विलाप करने से न तो आपको धर्म प्राप्त होगा, न अर्थ, न काम ही। मोक्ष की तो बात ही दूर है। अतः आप शोक करना छोड़ दें।"

इस तरह विदुर ने कई प्रकार से धृतराष्ट्र के व्यथित हृदय को शांत करने की चेष्टा की।

विदुर धृतराष्ट्र को सांत्वना दे रहे थे कि इतने में भगवान् व्यास भी वहां आ पहुंचे और धृतराष्ट्र को आश्वासन देने लगे। वे बोले—"बेटा! मैं कोई नई बात तो तुम्हें बताने वाला नहीं हूं जो तुम्हें विदित न हो। तुम तो जानते ही हो कि यह जीवन अनित्य है और पृथ्वी का भार उतारने के लिए यह युद्ध हुआ था। मैंने स्वयं भगवान् विष्णु की दिव्यवाणी से यह बात जानी है। इस कारण इस युद्ध को टाला नहीं जा सकता था। अतः अब धीरज धारण करो और युधिष्ठिर को ही अपना पुत्र समझो तथा उसको स्नेह-दान करते हुए सुखपूर्वक रहो।" इतना कर व्यासदेव अंतर्धान होगये।

कुछ देर बाद धर्मराज युधिष्ठिर रोती-बिलखती हुई स्त्रियों के समूह को पार करते हुए भाइयों व श्रीकृष्ण सहित धृतराष्ट्र के पास आये व नम्रता-पूर्वक हाथ जोड़े खड़े रहे। शोकविह्वल राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को गले तो लगाया; पर वह स्नेह-पूर्ण आलिंगन न था।

इसके बाद धृतराष्ट्र ने भीम को अपने पास बुलाया। धृतराष्ट्र के हाव-भाव से श्रीकृष्ण ने अंदाजा लगाया कि इस समय धृतराष्ट्र पुत्रशोक के कारण क्रोध में है। इससे भीम को उनके पास भेजना ठीक न होगा। अतः उन्होंने भीमसेन को तो एक तरफ हटा लिया और उसके स्थान पर लोहे की बनी एक प्रतिमा अन्धे राजा धृतराष्ट्र के आगे लाकर खड़ी कर दी। श्रीकृष्ण का भय सही साबित हुआ। वृद्ध राजा ने प्रतिमा को भीम समझ-कर ज्योंही छाती से लगाया त्योंही उन्हें याद हो आया कि मेरे कितने ही

प्यारे बेटों को इसी भीम ने मार डाला है। इस विचार के मन में आते ही धृतराष्ट्र क्षुब्ध हो उठे और उस प्रतिमा को जोरों से छाती से लगाकर कस लिया। प्रतिमा चूर-चूर हो गई।

पर प्रतिमा के चूर हो जाने के बाद धृतराष्ट्र को खयाल आया कि मैंने यह क्या कर डाला ? वह दुःखी हो गये और शोक-विह्वल होकर विलाप करने लगे— "हाय ! क्रोध में आकर मूर्खतावश मैंने यह क्या कर लिया। भीम की हत्या कर दी !" और यह कह कर बुरी तरह विलाप करने लगे।

इसपर श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा— "राजन् ! क्षमा करें। मुझे पहले ही से मालूम था कि क्रोध में आकर आप ऐसा काम करेंगे। इसलिए उस अनर्थ को टालने के लिए मैंने पहले से ही उचित प्रबन्ध कर रखा था। आपने जिसको नष्ट किया वह भीमसेन का शरीर नहीं, बल्कि लोहे की मूर्ति थी। आपके क्रोध का ताप उस प्रतिमा पर ही उतर कर शांत हो जाय। भीमसेन अभी जीवित हैं।"

यह सुन धृतराष्ट्र के मन को धीरज बंधा और उन्होंने अपना क्रोध शांत कर लिया। उन्होंने सभी पांडवों को आशीर्वाद देकर विदा किया। धृतराष्ट्र से आज्ञा पाकर पांचों भाई श्रीकृष्ण के साथ देवी गांधारी के पास गये।



पांडवों के जाने से पहले ही व्यासजी गांधारी के पास पहुंच चुके थे और शोकातुर गांधारी को सान्त्वना देते हुए कह रहे थे— "देवी ! पांडवों पर नाराज न होओ। उनके प्रति मन में द्वेष को स्थान न दो। याद है तुम्हें, युद्ध छिड़ने से पहले तुम्हींने कहा था कि जहां धर्म होगा, जीत भी उन्हींकी होगी। और आखिर वही हुआ। जो बातें हो चुकी हैं उनका विचार करके मन में बैर रखना उचित नहीं। तुम्हारी सहनशीलता और धैर्य का यश संसार भर में फैला हुआ है। अब तुम अपने स्वभाव को न बदलना।"

गान्धारी बोलीं-- "भगवन् ! मैं जानती हूं कि पुत्रों के वियोग के दुःख से मेरी बुद्धि अस्थिर हो उठी है, परन्तु फिर भी पांडवों के सौभाग्य पर मैं ईर्ष्या नहीं करती। आखिर वे भी मेरे लिए पुत्रों के ही बराबर हैं। मैं जानती हूं कि दुःशासन और शकुनि ही इस कुल के नाश के मूल कारण थे। और यह भी मुझे विदित है कि अर्जुन और भीम निर्दोष हैं। अपनी सत्ता के मद के कारण मेरे पुत्रों ने यह युद्ध छेड़ा था। अतः उनका मारा जाना उचित ही था और इसके लिए मैं पांडवों को कुछ भी दोष नहीं देना चाहती। परन्तु एक बात सुनकर मुझे खेद व शोक हुआ। श्रीकृष्ण के देखते-देखते, भीमसेन ने दुर्योधन को गदा-युद्ध के लिए ललकारा, दोनों में युद्ध हुआ। यहां तक भी ठीक था। भीमसेन जानता था कि गदा-युद्ध में वह दुर्योधन की बराबरी नहीं कर सकता। लेकिन भीम ने नियम के विरुद्ध दुर्योधन की कमर के नीचे गदा मारकर उसे जो गिरा दिया वह मुझसे नहीं सहा जाता।"

भीम को भी दुर्योधन को अनीति से मारने का दुःख हो रहा था। गांधारी की बातें सुनकर उसे दुःख हुआ और उनसे क्षमा-याचना करता हुआ बोला, "मां ! युद्ध में अपने बचाव के लिए मुझसे ऐसा हुआ। वह धर्म हुआ हो या अधर्म, आप उसके लिए मुझे क्षमा कर दें। धर्म-युद्ध करके दुर्योधन से जीत सकना सम्भव न था, वह अजेय था। यही कारण था कि मुझे अधर्म बरतना पड़ा। पर यह भी तो सोचिये कि दुर्योधन ने सीधे-सादे युधिष्ठिर को जुआ खिलवाकर धोखा दिया और उनका राज्य छीन लिया। उसने हम सबको तरह-तरह के कष्ट पहुंचाये और हमारे विरुद्ध कुचक्र रचे। बहुत समझाने-बुझाने पर भी उसने हमारा राज्य न लौटाने का हठ किया। द्रौपदी का भरी सभा में जो घोर अपमान हुआ वह आपको अच्छी तरह मालूम ही है। उस समय मुझे इतना गुस्सा आया था कि उसी सभा में मैंने दुर्योधन का वध कर दिया होता। तब शायद आप भी उसे अन्याय नहीं समझतीं। पर मैं ऐसा नहीं कर सका; क्योंकि उस समय हम धर्मराज युधिष्ठिर के कारण प्रतिज्ञा में बंधे हुए थे। अतएव कुछ कर नहीं सकते

थे। मन मार कर खड़े-खड़े देखते रहे । मैंने युद्ध-क्षेत्र में उसी अपमान का बदला लिया है । हां, कुछ अनीति जरूर बरतनी पड़ी । उसके लिए मां, आप हमपर क्रोध न करें । पर अपने मन को शांत करें और हमें क्षमा ही कर दें ।"

यह सुन गांधारी करुण स्वर में बोलीं— "बेटा ! यदि तुमने मेरे सौ बेटों में से किसी एक को भी जीवित छोड़ा होता, तो हम दोनों उसीके आसरे सन्तोष कर लेते । लेकिन तुमने तो मेरे सौ-के-सौ बेटों को मार डाला ।" कहते-कहते बूढ़ी गांधारी का गला भर आया । पर थोड़ी ही देर में वह संभल गई । उसे क्रोध बहुत आ रहा था । उसने युधिष्ठिर को बुलाया । युधिष्ठिर डरते-डरते गांधारी के आगे आये और हाथ जोड़कर खड़े हो गये । यद्यपि गांधारी ने आंखों पर कपड़े की पट्टी बांध रक्खी थी, फिर भी युधिष्ठिर की उनकी ओर देखने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी । वे सिर झुका कर खड़े हो गये और बड़ी नम्रता के साथ बोले— "देवी, जिस अत्याचारी ने आपके पुत्रों की हत्या कराई, वही युधिष्ठिर आपको प्रणाम कर रहा है; और वह यदि आपके शाप के योग्य हो तो उसे शाप दीजिये । सचमुच मैं बड़ा कृतघ्न हूं । अब मुझे न तो राज्य का लोभ है, न प्राणों की ममता रही है ।" यह कहते-कहते युधिष्ठिर गांधारी के पांवों में गिर पड़े ।

युधिष्ठिर की नम्र बातों से गांधारी द्रवित हो उठी । वह कुछ न बोली । उसने युधिष्ठिर की ओर देखा भी नहीं । उसे भय था कि युधिष्ठिर पर मेरी क्रुद्ध दृष्टि पड़ जाय तो वह कहीं भस्म न हो जाय । इसलिए उसने अपना मुख दूसरी तरफ फेर लिया । फिर भी युधिष्ठिर के पांव की उंगलियों पर उसकी जरा-सी निगाह पड़ ही गई । निगाह पड़ते ही उनकी उंगलियां काली-काली और विकृत हो गईं ।

गांधारी का यह शोकोद्वेग देखकर अर्जुन भी डर गया और श्रीकृष्ण के पीछे ही खड़ा रहा । कुछ बोला नहीं ।

महाबुद्धिमती और साध्वी गांधारी ने अपने दग्ध हृदय को धीरे-धीरे शांत कर लिया और पांडवों को आशीर्वाद देकर विदा किया ।

युधिष्ठिर आदि सब वहांसे चले गये, पर द्रौपदी वहीं गांधारी के पास ही रही। अपने पांचों सुकुमार बालकों के मारे जाने के कारण द्रौपदी शोक-विह्वल होकर रो रही थी। उसकी उस अवस्था पर गांधारी को बड़ी दया आई। वह बोली-- "बेटी, दुखी न होओ। मैं और तुम एक ही जैसी हैं। हमें सान्त्वना देने वाला कौन है? इस सबकी दोषी तो मैं हूं। मेरे ही दोष के कारण आज इस कुल का सर्वनाश हुआ है। पर अब अपने को भी दोष देने से क्या लाभ?"

: ६६ :

युधिष्ठिर का पश्चात्ताप

कुरुक्षेत्र के युद्ध में मारे गये बन्धु-बांधवों की आत्म-शांति के लिए तिलांजलि देने के बाद पांचों पांडव गंगा-किनारे एक महीने तक ठहरे।

इन्हीं दिनों एक रोज नारद मुनि वहां पधारे। उन्होंने युधिष्ठिर से प्रश्न किया-- "धर्मपुत्र! भगवान् कृष्ण के अनुग्रह, धनंजय के बाहुबल और अपनी धर्मपरायणता के बल से तुम्हें विजय का यश प्राप्त हुआ और सारा राज्य अब तुम्हारा ही हो गया। क्यों अब तो तुम सन्तुष्ट हो न?"

युधिष्ठिर ने रुंधे हुए स्वर से कहा-- "भगवन्, यह बात सच है कि सारा राज्य मेरे अधीन हो गया है। फिर भी इस विजय को मैं भारी पराजय ही समझता हूं। जिसमें मेरे बन्धु-बांधव मारे गये, जिसकी प्राप्ति के लिए हमें अपने प्यारे पुत्रों की बलि चढ़ानी पड़ी उसे विजय कैसे कहा जाय? मुनिवर, जो अपने व्रत पर आजीवन अटल रहे और जिनकी युद्ध-कुशलता पर सारा संसार मुग्ध था, अपने उस बड़े भाई कर्ण को शत्रु समझकर हमने मार डाला। राज्य के लोभ में पड़कर ही तो हमने यह घोर पाप कर डाला। जिस वीर ने अपनी माता से की हुई प्रतिज्ञा का पालन करते हुए हम लोगों को प्राणों की भीख दी थी, अपने उसी भाई को हमने अन्याय

से मारा। आप ही बताइये कि मुझसे बढ़कर नीच और दुरात्मा और कौन हो सकता है ? महर्षि, आप सन्तुष्ट होने की बात पूछते हैं ? मेरा हृदय तो आज जिस व्यथा से भरा हुआ है उसका कहना ही कठिन है। कर्ण के पैर माता कुन्ती के पैरों से बिल्कुल मिलते थे। राजसभा में जब उन्होंने हमारा अपमान किया था, तब मुझे क्रोध तो बहुत आ रहा था; किन्तु ज्योंही उनके पैरों पर मेरी दृष्टि पड़ती थी, न जाने कैसे मेरा क्रोध शांत हो जाता था। जब यह पता चला कि कर्ण हमारा बड़ा भाई था तब उस बात का रहस्य समझ में आया।"

इतना कहकर युधिष्ठिर ने दीर्घ निःश्वास लिया। वे यह बात याद कर करके बड़े व्यथित हो जाते थे। इसपर नारद मुनि ने कर्ण के शाप पाने का सारा हाल युधिष्ठिर को सुनाया और उनकी व्यथा दूर करने की चेष्टा की।

युवावस्था में कर्ण को जब यह बात मालूम हुई कि अर्जुन अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञान में उससे बहुत बढ़ा-चढ़ा है तो उसने द्रोणाचार्य से प्रार्थना की कि वह उसे ब्रह्मास्त्र चलाना सिखाने की कृपा करे। आचार्य द्रोण ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार करते हुए कहा कि ब्रह्मास्त्र की विद्या या तो किसी शीलवान ब्राह्मण को ही सिखाई जा सकती है या किसी ऐसे क्षत्रिय को, जिसने कठिन तपस्या करके अपने आपको पवित्र बना लिया हो। इसके अलावा और किसीको ब्रह्मास्त्र की विद्या नहीं सिखलाई जा सकती। यह सुन कर्ण महेन्द्र पर्वत पर गया जहां परशुराम आश्रम बनाकर रहा करते थे। कर्ण ने यह भी सुन रक्खा था कि परशुराम केवल ब्राह्मणों को ही शिष्य बनाते हैं। इस कारण कर्ण ने परशुराम से झूठमूठ कह दिया कि मैं ब्राह्मण हूं। परशुराम ने उसे शिष्य बना लिया। परशुराम के साथ रहकर कर्ण धनुर्वेद और अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त करने लगा।

एक दिन कर्ण अकेला बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था कि इतने में दैवयोग से आश्रम के नजदीक चरने वाली एक गाय को उसका बाण लग गया और गाय वहीं मर गई। जिस ब्राह्मण की वह गाय थी उसने

क्रोध में आकर कर्ण को शाप दिया कि युद्ध में तुम्हारे रथ का पहिया कीच में धंस जायगा और तुम भी उसी तरह मारे जाओगे जैसे मेरी गाय मारी गई।"



परशुराम कर्ण को बहुत प्यार करते थे। उसे उन्होंने धनुर्विद्या की सारी बातें सिखलाईं और ब्रह्मास्त्र चलाने और वापस लेने का रहस्य भी बतला दिया।

इसी बीच एक दिन परशुराम कर्ण की गोद में सिर रखकर सो रहे थे। इतने में एक भौंरा कर्ण की जांघ के नीचे घुस गया और काटने लगा। परन्तु कर्ण टस-से-मस न हुआ। उसे भय हुआ कि कहीं हिलने-डुलने से परशुराम की नींद न टूट जाय। इतने में भौंरे के काटने के कारण कर्ण की जांघ से रक्त की धारा बहने लगी। गरम-गरम लहू के स्पर्श से परशुराम की नींद खुल गई। उन्होंने आंखें खोलीं तो देखते क्या हैं कि इतना खून बह निकलने पर भी कर्ण अविचलित भाव से पीड़ा सहता हुआ बैठा है। परशुराम को समझते देर न लगी कि कर्ण ब्राह्मण नहीं, बल्कि क्षत्रिय है। उन्हें असीम क्रोध हुआ और उसी आवेश में क्षत्रियों के शत्रु परशुराम ने कर्ण को शाप दे दिया कि जो विद्या तुमने मुझसे सीखी वह ऐन वक्त पर तुम्हारे काम नहीं आयेगी।



कर्ण दानवीर भी था। एक बार इन्द्र ने ब्राह्मण के वेश में आकर कर्ण से उसके जन्मजात कवच-कुंडलों की याचना की। कवच के न रहने पर उसकी शक्ति पहले की-सी न रहेगी, वह कमजोर हो जायगा, यह जानते हुए भी कर्ण ने तुरन्त कवच-कुंडल देवराज को दे दिये।

कर्ण के बारे में ये सब बातें सुनाने के बाद नारदजी ने कहा—"युधिष्ठिर! कई कारणों के परिणामस्वरूप कर्ण का वध हुआ। माता कुन्ती से उसने प्रतिज्ञा की थी, परशुराम और गायवाले ब्राह्मण के शाप से वह कमजोर हो चुका था, भीष्म पितामह ने उसे महारथियों में गिनने से इन्कार करके उसका अपमान किया और शल्य ने उसकी अवहेलना की।

इन सब बातों से और श्रीकृष्ण के कौशल से कर्ण मारा गया। अतः तुम यह न समझो कि तुम्हारे ही कारण कर्ण का वध हुआ। तुम्हारा इतना व्यथित होना ठीक नहीं।"

पर नारदजी की इन बातों से युधिष्ठिर को सांत्वना न हुई। यह देख कुन्ती बोली—"बेटा, तुम उदास न होओ। मैंने कर्ण को बहुत समझाया था कि दुर्योधन का साथ छोड़ दे। स्वयं उसके पिता भगवान् सूर्य ने भी उसको यह सलाह दी थी। किंतु कर्ण ने किसीकी न सुनी। इस कारण अपनी मृत्यु का तो वह स्वयं ही कारण बना। तुम अपने मन पर जरा भी बोझ न रखो।"

कुन्ती की बात सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—"मां! तुमने कर्ण के जन्म के रहस्य को हमसे छिपा रक्खा। इस कारण हमें उनका असली परिचय न मिल सका। इसी कारण मुझे इतनी व्यथा हो रही है। यह सब तुम्हारे कारण ही हुआ। मैं शाप देता हूं कि आज से स्त्रियां किसी भी रहस्य को गुप्त न रख सकेंगी।"

यह कथा पौराणिकों की कल्पना मालूम होती है। प्रायः लोग समझते हैं कि स्त्रियां किसी भी रहस्य को हजम नहीं कर सकतीं। इसी लोकमत के आधार पर इस कहानी की सुन्दर ढंग से कल्पना की गई है। किसी रहस्य को गुप्त रखने से दुनियादारी की दृष्टि से चाहे फायदा हो या नुकसान, पर धार्मिकता की दृष्टि से यह कोई इतना उत्तम गुण नहीं समझा जाता। अतः स्त्रियों को इस बात की कमी महसूस करने की कोई आवश्यकता नहीं। किसी बात को गुप्त रखने की शक्ति न होना धर्म के पथ पर कभी रोड़ा नहीं बन सकता। सम्भव है स्वाभाविक प्रेम के कारण ही स्त्रियां किसी बात को गुप्त रखने में असमर्थ होती हों।

लोकमत ऐसा होने पर भी, कितनी ही स्त्रियां ऐसी हैं जो रहस्यों को भलीभांति गुप्त रख लिया करती है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि सभी पुरुषों में बात पचाने की सामर्थ्य होती है। भिन्न-भिन्न अभ्यासों व वृत्तियों के कारण प्रायः लोगों में जो भिन्नताएं दिखाई देती हैं उन्हें स्त्रियो-

चित्त या पुरुषोचित कहकर विभक्त कर देना संसार का स्वभाव है।

: १०० :

शोक और शान्ति

युधिष्ठिर के मन में यह बात समा गई थी कि हमने अपने बन्धु-बांधवों को मारकर राज्य पाया है। इससे उनको भारी व्यथा रहने लगी। वे यही सोचते रहते। अन्त में उन्होंने संन्यास लेकर वन में जाने का निश्चय किया ताकि इस पाप का प्रायश्चित्त हो सके। इस विचार से उन्होंने सब भाइयों को बुलाकर कहा—"भाइयो! मुझे न राज करने की चाह है, न भोग की। अब तुम्हीं सब इस राज्य को संभालो। मैं तो वन में जाकर तपस्या करना चाहता हूं।"

यह सुनकर सब भाइयों पर मानो वज्र गिर गया। वे बहुत चिंतित हो उठे और बारी-बारी से सब युधिष्ठिर को समझाने लगे।

अर्जुन ने गृहस्थ-धर्म की श्रेष्ठता पर प्रकाश डाला। उसने कहा कि गृहस्थ रहते हुए किस प्रकार बहुत ही अच्छे पुण्य कर्म किये जा सकते हैं।

भीमसेन ने कटु वचनों से काम लिया। वह बोला— "महाराज, आप भी उन्हीं मन्द-मति लोगों की तरह बातें करने लगे हैं जो शस्त्रों की रट लगाते हैं और धर्म का रहस्य जाने बगैर धर्म की दुहाई देते हैं। संन्यास क्षत्रियों का धर्म नहीं है; बल्कि अपने कर्तव्यों का भलीभांति पालन करते हुए जीवन बिताना ही क्षत्रिय का धर्म है।"

नकुल ने प्रमाणपूर्वक यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि कर्म-मार्ग न केवल सुगम है बल्कि उचित भी, जबकि संन्यास-मार्ग कंटीला और दुष्कर है। इस तरह देर तक युधिष्ठिर से वाद-विवाद होता रहा।

सहदेव ने भी नकुल के पक्ष का समर्थन किया और अन्त में अनुरोध

किया कि हमारे पिता, माता, आचार्य, बन्धु सब कुछ आप ही हैं। हमारी ढिठाई क्षमा करें।

द्रौपदी भी इस वाद-विवाद में पीछे न रही। वह बोली—"महाराज! दुर्योधन और उसके पक्ष के लोगों को मारना बिलकुल ही न्याय-संगत था। उसपर पछताने की आवश्यकता ही नहीं। कुकर्म करने वालों को दंड देना राजा के कर्तव्यों में से ही है और उसका पालन करना उनके लिए अनिवार्य होता है। जिन्होंने पाप-कर्म किये थे उन्हींको तो आपने दंड दिया है। तब फिर उसपर पश्चात्ताप करने की आवश्यकता ही क्या है? अब तो आपका यही कर्तव्य है कि राजोचित धर्म का पालन करते हुए राज्य-शासन करें और सोच न करें।"

इसी चर्चा के बीच भगवान् व्यास भी वहां आ पहुंचे और उन्होंने इतिहासों और शास्त्रों से कई प्रमाण देकर युधिष्ठिर की शंका दूर करने की चेष्टा की। उन्हें राज्य-शासन का भार वहन करने को राजी कर लिया। इसके बाद हस्तिनापुर में युधिष्ठिर का बड़ी धूमधाम के साथ राज्याभिषेक हुआ।

शासन-सूत्र ग्रहण करने से पहले युधिष्ठिर महात्मा भीष्म के पास गये जो कुरुक्षेत्र में शर-शैया पर पड़े तपस्या करते हुए मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर को धर्म का मर्म समझाया।

युधिष्ठिर को भीष्म पितामह ने जो धर्मोपदेश दिया वह महाभारत के शांतिपर्व में है। इस महाग्रंथ का यह एक सुविख्यात भाग है और अपने में संपूर्ण शास्त्र है।

युधिष्ठिर को उपदेश देने के बाद भीष्म पितामह ने शरीर त्यागा। परंपरागत प्रथा के अनुसार युधिष्ठिर ने गंगा में पितामह का जलतर्पण किया। तर्पण के बाद जैसे ही वे जल से निकले और किनारे पर आये कि उनके मन में अतीत की घटनाओं का स्मरण हो आया। वे फिर शोक-विह्वल हो उठे और धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़े जैसे शिकारी के बाण लगने पर हाथी गिरता है।

भीमसेन ने उनको तुरन्त उठाकर छाती से लगा लिया और सांत्वना व शांति की बातें कहकर बहुत आश्वासन दिया ।

धृतराष्ट्र भी युधिष्ठिर के पास आकर सांत्वना देते हुए बोले—"बेटा, तुम्हें इस तरह शोक-विह्वल नहीं होना चाहिए । चलो उठो । अपने बन्धुओं और मित्रों के साथ राज्य का शासन करना ही तुम्हारा कर्तव्य है । शोक तो मुझे और गांधारी को करना चाहिए । तुमने तो क्षत्रियोचित धर्म का पालन करते हुए विजय प्राप्त की है । अब तुम्हें विजेता के योग्य कर्तव्यों का भी पालन करना होगा । अपनी नासमझी से मैंने भैया विदुर की सलाह न मानी, उसीका यह घोर परिणाम हुआ है । दुर्योधन ने जो मूर्खताएं कीं उनको सही समझकर मैंने धोखा खाया । इस कारण मेरे सौ-के-सौ पुत्र उसी भांति काल-कवलित हो गये जैसे सपने में मिला धन नींद खुलने पर लोप हो जाता है । अब तुम्हीं मेरे पुत्र हो । इस कारण तुम्हें दुःखी न होना चाहिए ।

: १०१ :

ईर्ष्या

पितामह भीष्म को जलांजलि देने के बाद जब युधिष्ठिर शोकमग्न हो गये तो व्यासजी ने उन्हें शांत करने के लिए एक कथा सुनाई ।

कोई चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, कितना ही विवेकशील क्यों न हो, ईर्ष्या उसका पतन कर ही देती है । ईर्ष्या से लोग अपमानित हो जाते हैं । बृहस्पति देवताओं के आचार्य थे । सभी वेदों तथा शास्त्रों के ज्ञाता थे और बड़े विद्वान् थे । पर उनको भी ईर्ष्यावश अपमानित होना पड़ा था ।

बृहस्पति के एक भाई थे जिनका नाम था संवर्त । वे बड़े विद्वान् और सज्जन थे । इस कारण बृहस्पति को उनसे ईर्ष्या होने लगी । सज्जनों

से लोग उनकी सज्जनता के कारण ही जलते है ; यह बात कुछ विलक्षण मालूम होने पर भी सच है ।

अपनी ईर्ष्या के कारण बृहस्पति ने संवर्त को कई तरह की तकलीफें दीं । यहां तक कि तंग आकर संवर्त घर से निकल भागे और पागलों का सा बाना धारण करके गांव-गांव घूमने-भटकने लगे ।

उन्हीं दिनों इक्ष्वाकु-वंश के मरुत नाम के राजा ने महादेवजी को अपनी कठोर तपस्या से प्रसन्न करके उनके वरदान से हिमालय की किसी चोटी पर से सोने की राशि प्राप्त कर ली और उसको लेकर एक महायज्ञ करने का आयोजन किया। उसने देव-गुरु बृहस्पति से यज्ञ कराने की प्रार्थना की ।

पर बृहस्पति को भय हुआ कि इतना भारी यज्ञ करके राजा मरुत कहीं देवराज से अधिक यश न प्राप्त कर लें। इस कारण उन्होंने मरुत को यज्ञ कराने से इन्कार कर दिया ।

राजा मरुत इससे निराश तो हुए पर उनको बृहस्पति के भाई संवर्त का पता लग गया और उन्होंने उनसे यज्ञ की पुरोहिताई करने की प्रार्थना की। पहले तो संवर्त ने बृहस्पति के भय के कारण इन्कार किया पर राजा के बहुत आग्रह करने पर राजी हो गये।

बृहस्पति को जब यह मालूम हुआ कि संवर्त राजा मरुत का यज्ञ कराने वाले है, तो उनकी ईर्ष्या और भी बढ़ गई। ईर्ष्या की आग उनके मन में इस प्रकार प्रबल हो उठी कि वे उससे दिन-पर-दिन दुबले होने लगे । उनके देह की कान्ति फीकी पड़ गई और उनकी बड़ी दयनीय दशा हो गई ।

आचार्य की यह दशा देखकर देवराज बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने बृहस्पति को बुलाया और उनका आदर-सत्कार करके कुशल पूछा और बोले-- "आचार्य ! आप दुबले क्यों हो रहे है ? नींद तो आती है न ? सेवक लोग आपकी सेवा-टहल तो ठीक से कर रहे हैं न ? देवता लोग आपका यथोचित आदर तो कर रहे है न? कहीं किसीने कोई अपराध तो नहीं हुआ ?"

बृहस्पति ने उत्तर दिया—"देवराज! कोमल शैय्या पर आराम से सोया करता हूं। सेवक लोग प्रेमपूर्वक सेवा-टहल कर रहे हैं। देवताओं के व्यवहार से भी कोई अन्तर नहीं आया है।" पर वे इतना ही कह सके। आगे उनसे कुछ नहीं बोला गया। दुःख के कारण उनका गला रुंध गया।

देवगुरु का यह हाल देखकर देवराज का जी भर आया। स्नेहपूर्वक पूछा— "गुरुदेव, क्या बात है जो आप इतने व्यथित हो रहे हैं? आपका रंग फीका पड़ गया है और आप दुबले भी बहुत हो गये हैं। आखिर बात क्या है?"

देवराज के बहुत आग्रह करने पर बृहस्पति ने कहा—"मेरा भाई संवर्त राजा मरुत के महायज्ञ की पुरोहिताई करने वाला है। यह मुझसे सहन नहीं हो रहा है। यही कारण है कि मैं दुःखी और दुबला हो रहा हूं।"

यह सुनकर देवराज अचंभे में आ गये। वे बोले—"ब्राह्मण-श्रेष्ठ! आपको तो सारी इच्छित वस्तुएं प्राप्त हैं। आप हम देवताओं के पुरोहित और मन्त्री हैं। आप इतने बड़े बुद्धिमान हैं कि आपकी सलाह का सभी देवता मान करते हैं। तो फिर बिचारा संवर्त आपका बिगाड़ ही क्या सकता है? आप व्यर्थ ही उससे क्यों दुःखी हो रहे हैं?"

पर-उपदेश-कुशल इन्द्र ने अपने अतीत को मानो बिसार ही दिया और स्वयं आचार्य बृहस्पति को ईर्ष्या न करने का उपदेश देने लगा। बृहस्पति ने उनको उनकी भूली हुई बातों का स्मरण कराकर कहा— "देवराज! अपने किसी शत्रु की बढ़ती देखकर तुम कभी चैन से सोये हो? मेरी भी वही बात है। तुम्हारा अब यही कर्तव्य है कि किसी तरह संवर्त की बढ़ती रोको और मेरी रक्षा करो।"

यह सुन देवराज ने अग्नि-देव को बुलाकर कह दिया कि राजा मरुत के यहां जाकर किसी तरह उसका महायज्ञ रोकने का प्रयत्न करें।

आज्ञा पाकर अग्नि-देव मृत्युलोक को रवाना हुए और जब

स्वयं अग्निदेव ही क्रोध में आजायं तो फिर पूछना ही क्या। रास्ते के लहलहाते पेड़-पौधों को जलाते-उजाड़ते हुए और अपनी भयानक गर्जना से पृथ्वी को कंपाते हुए अग्निदेव प्रबल वेग से चले और राजा मरुत के आगे देवरूप में ही जा खड़े हुए।

अग्नि-देव को अपने यहां आया देखकर राजा मरुत के आनन्द की सीमा नहीं रही। वह दैवी अतिथि का सत्कार करने दौड़ा।

"कोई है? जल्दी से लाओ आसन, अर्घ्य, पाद्य और गाय! शीघ्रता करो!" राजा ने परिचरों को आज्ञा देकर कहा।

सत्कार व पूजा हो चुकने के बाद अग्निदेव ने अपने आने का कारण बताया और बोले—"राजन्, संवर्त को अपने यहांसे हटा दो। यदि तुम चाहो तो मैं स्वयं बृहस्पति को ही पुरोहिताई करने को राजी कर दूंगा।"

संवर्त भी वहीं उपस्थित थे। अग्निदेव की बात सुनकर वह क्रोध में आ गये। नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने के कारण संवर्त की शक्ति और तेज वृद्धि पर थे।

वह अग्नि से बोले—"देखो अग्निदेव, आप ऐसी बातें न करें। मैं आपको सावधान किये देता हूं। मुझे अगर क्रोध आ गया तो आपको मैं अपनी दृष्टि से ही जलाकर भस्म कर दूंगा।"

ब्रह्मचर्य में तो वह शक्ति होती है जिससे आग भी भस्म हो जाती है।

संवर्त की बातें सुनते ही अग्निदेव भय से पीपल के पत्ते की तरह कांपते हुए वापस इन्द्र-भवन को लौट आये और देवराज को सारा हाल सुनाया।

लेकिन देवराज को उनकी बातों पर विश्वास न हुआ। वह बोले "यह कैसी अजीब बात बता रहे हैं अग्निदेव! अरे तुम तो स्वयं दूसरों को जलाने वाले हो! तुम्हें कोई कैसे भस्म कर सकता है?"

अग्नि ने ताना देते हुए कहा—"ऐसा न कहिये देवराज! दूर क्यों

जाते हैं; ब्रह्म-तेज एवं ब्रह्मचर्य की शक्ति से तो आप स्वयं भी अपरिचित नहीं हैं!"

देवराज को ब्राह्मणों का अपमान करने के कारण जो कष्ट उठाने पड़े थे अग्निदेव का उनकी ओर ही इशारा था। इंद्र समझ गये और अग्नि से निराश होकर उन्होंने एक गन्धर्व को बुलाकर आज्ञा दी कि मरुत के पास जाकर मेरा यह सन्देश सुनाओ कि यदि वह संवर्त का साथ न छोड़ेगा तो मैं उसका शत्रु बन जाऊंगा और फिर उसका सर्वनाश निश्चित ही है।

आज्ञा पाकर गन्धर्व मरुत राजा के पास गया और इन्द्र का सन्देसा कह सुनाया।

पर, मरुत राजा इन्द्र की बात मानने को तैयार नहीं हुआ। वह बोला—"अपने मित्र से छल करना घोर पाप है। मैं इस समय संवर्त का साथ नहीं छोड़ सकता।"

गंधर्व ने कहा—"राजन जब इन्द्र तुमपर वज्र-प्रहार करेंगे तब तुम कैसे बचोगे?" गन्धर्व की बात पूरी भी न हो पाई थी कि आकाश में इन्द्र के वज्र की कड़क सुनाई देने लगी।

उसे सुनकर राजा मरुत का हृदय दहल गया। उसने समझा कि इन्द्र ने हमला कर दिया है। वह संवर्त के पास गया और उन्हींकी शरण ली।

संवर्त ने राजा को अभय देकर कहा—"डरो मत!" और अपनी तपस्या की शक्ति का इन्द्र पर प्रयोग कर दिया। बस, वही इन्द्र जो आक्रमणकारी बनकर आये थे मूर्त्तिमान शान्ति की तरह नम्रतापूर्वक आकर राजा मरुत के यज्ञ में सम्मिलित हुए और सानन्द हवि ग्रहण कर चले गये। बृहस्पति ने ईर्ष्या-वश जो प्रयत्न किये थे वे सब इस तरह बेकार हो गये और ब्रह्मचर्य के तेज की जीत हुई।

ईर्ष्या एक ऐसा पाप है जो बड़े-से-बड़ों को भी लग जाता है। विद्या की अधीश्वरी सरस्वती तक को लजाने वाले बृहस्पति जब

ईर्ष्या के वशीभूत हुए तो साधारण लोगों का तो पूछना ही क्या है।

: १०२ :

उत्तंक मुनि

पांडवों से बिदा होकर श्रीकृष्ण द्वारका लौट रहे थे। रास्ते में उत्तंक नाम के एक ब्राह्मणों में उत्तम मुनि से उनकी भेंट हुई। उनको देखते ही श्रीकृष्ण ने अपना रथ खड़ा किया और उतरकर उनको प्रणाम किया।

मुनि उत्तंक ने उचित वन्दना करके श्रीकृष्ण से पूछा---

"माधव! हस्तिनापुर में सब कुशल से तो है? पांडवों और कौरवों में स्नेह-भाव बना रहता है न?"

तपस्वी उत्तंक संसार की घटनाओं से बिलकुल बेखबर थे। उन्हें इतना भी पता न था कि इन्हीं दिनों दोनों में घोर संग्राम हुआ और कौरवों का नाश हो गया।

श्रीकृष्ण को ब्राह्मण मुनि का यह प्रश्न पहेली-सा लगा। क्षण भर के लिए उन्हें कुछ जवाब न सूझा। थोड़ी देर बाद उन्होंने युद्ध का सारा हाल बताया और कहा--- "द्विजवर कौरवों और पांडवों में घोर युद्ध हुआ। मैंने अपनी तरफ से शांति-स्थापन की कोई चेष्टा उठा न रखी। परन्तु कौरव कुछ मानते ही न थे। सब-के-सब युद्ध में मारे गये। भावी को कौन टाल सकता है?"

यह हाल सुनकर उत्तंक को क्रोध हो आया। उनकी आंखें लाल हो उठीं और होंठ फड़कने लगे। वे बोले--- "वासुदेव! तुम्हारे देखते-देखते यह घोर अन्याय हुआ? तुमने कौरवों की रक्षा क्यों नहीं की? तुम चाहते तो उनको बचा सकते थे। तुम्हारे छल-कपट के कारण ही उनका नाश हुआ होगा। तुम्हीं उनके नाश का कारण बने होगे। मैं तुम्हें अभी

शाप देता हूं।"

उत्तंक मुनि की बात सुनकर श्रीकृष्ण हंसते हुए बोले—"महर्षि शांत होइये। आप तो बड़े तपस्वी हैं। क्रोध के कारण तपस्या का फल क्यों गंवाते हैं? पहले मेरी बात पूरी तरह सुन लीजिये तब फिर चाहे जो शाप दीजिये।"

इसके बाद श्रीकृष्ण ने मुनि उत्तंक को ज्ञानचक्षु प्रदान करके अपना विश्वरूप दिखलाया और कहा—"संसार की रक्षा एवं धर्म के संस्थापन के लिए ही मैं तरह-तरह के जन्म लेता रहा हूं। जिस समय जिस योनि में जन्म लेता हूं उस-उस अवतार के धर्म का पालन करता हूं। देवताओं में अवतरित होते समय देवताओं का-सा व्यवहार करता हूं, यक्ष बना तो यक्ष का-सा और राक्षस बना तो राक्षसों का-सा व्यवहार करता हूं। इसी प्रकार मनुष्य या पशु का जन्म लेने पर मनुष्य या पशु का-सा ही आचरण करता हूं। जिस समय जिस ढंग से धर्मस्थापन का उद्देश्य पूरा हो सके, उस समय उसी रीति से मैं काम लिया करता हूं और अपना उद्देश्य सिद्ध कर लेता हूं। कौरव लोग विवेक खो चुके थे। राज्य-सत्ता के मद में आकर उन्होंने मेरी कोई बात न सुनी। मैंने उनसे बिनती की, डराया-धमकाया भी और अपना विश्वरूप भी उन्हें दिखलाया। किन्तु मेरे सारे प्रयत्न विफल हुए। अधर्म का भूत उनपर सवार था। इस कारण वे अपना हठ नहीं छोड़ते थे। युद्ध की आग में वे स्वयं ही कूदे और नष्ट हुए। अतएव, द्विज-श्रेष्ठ, इस बारे में मुझपर क्रोध करने का कोई कारण नहीं है।"

उत्तंक मुनि ने जब यह देखा-सुना तो एकदम शांत हो गये। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर कहा—"मुनिवर मैं अब आपको कुछ वरदान देना चाहता हूं। आप जो चाहें मांग लें।"

उत्तंक ने कहा—"हे अच्युत! तुम्हारा साक्षात्कार ही मेरे लिए वरदानस्वरूप है। तुम्हारे विश्वरूप के दर्शन करने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ इससे मेरा जीवन सार्थक हुआ। बस, मुझे और किसी वरदान

की चाह नहीं।"

परन्तु भगवान् ने बहुत आग्रह किया कि कोई वरदान तो मांगिये ही। उत्तंक मुनि मरुभूमि के आस-पास घूमने-फिरने वाले निस्पृह तपस्वी थे। अतः उन्होंने कहा—"प्रभो! यदि मुझे आप कुछ देना ही चाहते हों तो इतनी कृपा करो कि जब भी और जहां कहीं भी मुझे प्यास बुझाने के लिए जल की आवश्यकता हो वहीं पानी मिल जाया करे।

"बस! और कुछ नहीं चाहिए?" यह कहकर श्रीकृष्ण हंस पड़े और मुनि को वरदान देकर द्वारका की ओर रवाना हो गये।



बहुत दिन बाद, एक बार जब उत्तंक वन में फिर रहे थे तो उन्हें बड़ी प्यास लगी। बहुत ढूंढ़ने पर भी कहीं पानी न मिला। तब उत्तंक ने श्रीकृष्ण का ध्यान किया और तुरन्त उनके सामने एक चंडाल खड़ा दिखाई दिया। वह अर्धनग्न था और उसने फटे-पुराने चीथड़े पहन रखे थे। वे भी इतने मैले थे कि देखते ही घृणा उत्पन्न होती थी। चार-पांच शिकारी कुत्ते उसे घेरे हुए थे। हाथ में वह धनुष लिये था और उसके कन्धे पर पानी से भरी मशक लटक रही थी।

उत्तंक को देखकर चांडाल हंसता हुआ बोला—"मालूम होता है आप प्यास के मारे परेशान हैं। आपको देखकर मुझे बड़ी दया आती है। यह लीजिये पानी।" कहकर चांडाल ने मशक के मुंह पर की बांस की टोंटी आगे बढ़ा दी।

उस चांडाल की गंदी सूरत, उसकी चमड़े की मशक और उसके पास खड़े शिकारी कुत्तों को देखकर उत्तंक ने नाक-भौं सिकोड़ ली और उसका पानी लेने से इन्कार कर दिया।

उत्तंक को बड़ा क्रोध हुआ कि श्रीकृष्ण ने मुझे झूठा वरदान कैसे दिया? उधर चांडाल सामने खड़ा बार-बार मशक बढ़ाकर कह रहा था कि पानी पी लें। ज्यों-ज्यों वह आग्रह करता था त्यों-त्यों मुनि उत्तंक का क्रोध भी बढ़ता जाता था। एकाएक चांडाल कुत्तों समेत आंखों से ओझल हो

गया ।

चांडाल के यों अचानक अन्तर्धान हो जाने पर उत्तंक को बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने सोचा कौन था यह ? निश्चय ही चांडाल नहीं । यह तो मेरी परीक्षा हुई थी । अरे रे, मुझसे भारी भूल हो गई । मेरे ज्ञान ने भी समय पर साथ न दिया । यदि चांडाल ही था तो बिगड़ क्या गया था ? मैंने उसके हाथ का पानी पीने से इन्कार करके बड़ी मूर्खता की । यह सोचकर उत्तंक मुनि पश्चात्ताप करने लगे ।

थोड़ी ही देर में शंख और सुदर्शन चक्र लिये भगवान् श्रीकृष्ण उत्तंक के सामने प्रकट हुए ।

उत्तंक ने व्यथित होकर कहा—"पुरुषोत्तम ! मेरी इस तरह परीक्षा लेना तुम्हारे लिए ठीक था ? मैं ब्राह्मण हूं । प्यास लगने पर भी किसी चांडाल के हाथों मशक वाला गंदा पानी कैसे पी सकता था ? तुमको मेरे लिए ऐसा पानी भेजना क्या उचित था ?"

श्रीकृष्ण हंसकर बोले—"मुनिवर ! आपने पानी की इच्छा की तो मैंने देवराज से कहा कि उत्तंक मुनि को अमृत ले जाकर पिलाओ । देवराज ने कहा कि मनुष्य को अमृत नहीं पिलाया जा सकता । कोई और वस्तु भले ही आप भिजवाइए । अन्त में मेरे आग्रह करने पर देवराज ने मान तो लिया; पर कहा—"मैं चांडाल के रूप में जाऊंगा और पानी के रूप में अमृत पिलाऊंगा । यदि उत्तंक ने न पिया तो नहीं पिलाऊंगा ।" मैं देवराज की बात पर राजी हो गया कि आप तो बड़े ज्ञानी और महात्मा हैं । आपके लिए तो चांडाल और ब्राह्मण समान होंगे और चांडाल के हाथ का पानी पीने में नहीं सकुचायेंगे । अब आपके इस इन्कार करने से मेरी तो पराजय ही हो गई । इतना कहकर श्रीकृष्ण अंतर्धान हो गए और उत्तंक बहुत ही लज्जित हुए ।

: १०३ :

सेर भर आटा

कुरूक्षेत्र का युद्ध समाप्त हो चुका था और युधिष्ठिर हस्तिनापुर की गद्दी पर आसीन हो चुके थे। महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध का महायज्ञ किया था जिसमें सारे भारत के राजा इकट्ठे हुए थे। यज्ञ बड़ी धूमधाम से हुआ। देश के कोने-कोने में इस बात की घोषणा कर दी गई थी कि जितने भी ब्राह्मण और दीन-दरिद्र लोग जो-कुछ दान लेना चाहें वे राजाधिराज युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में पहुंचें। इस कारण यज्ञशाला में जहां महा-राजाओं की जगमगाती भीड़ थी वहां हरेक जाति और वर्ण के गरीब लोग भी दल-के-दल आकर दान ले जा रहे थे। इस प्रकार शास्त्रोक्त रीति से और सुचारु रूप से यज्ञ संपन्न हुआ।

यज्ञ के अंतिम दिन अचानक एक बड़ा-सा नेवला यज्ञशाला के बीच में कहींसे आ खड़ा हुआ और बड़ी निर्भीकता के साथ उपस्थित लोगों को देखता हुआ ठहाका मारकर हंसने लगा। एक अदने-से नेवले को इस प्रकार मनुष्यों की तरह हंसते देखकर यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों के मन में भय-सा छा गया। वे शंकित हो उठे कि कहीं कोई भूत या पिशाच तो हमारे यज्ञ में विघ्न डालने नहीं आ गया! यज्ञ-मंडप में उपस्थित दूसरे लोग भी चौंक कर नेवले को ध्यान से देखने लगे।

नेवले का रूप अनूठा था। उसका आधा शरीर सुनहरा था और आधा साधारण नेवलों का-सा। इस अद्‌भुत नेवले ने दूर-दूर से आये हुए राजा-महाराजाओं और विद्वान ब्राह्मणों की ओर देखकर निःसंकोच कहना शुरू किया—

"महामान्य सज्जनवन्द! शायद आप लोग सोच रहे होंगे और मन में

खुश हो रहे होंगे कि आपने कोई बड़ा भारी यज्ञ संपन्न किया है; परन्तु याद रखिये कि यह आपका केवल भ्रम है। इससे पहले एक बार एक महान् यज्ञ हो चुका है। कुरुक्षेत्र में रहने वाले एक गरीब ब्राह्मण ने केवल एक सेर आटा अतिथि को दान में दिया था। लेकिन आप लोगों द्वारा इस अश्वमेध यज्ञ में असंख्य लोगों को दिये गए इस अपार दान की उस गरीब ब्राह्मण द्वारा दिये गए एक सेर आटे के दान की बराबरी नहीं हो सकती। अतः हे उपस्थित सज्जनगण, मैं आपको चेतावनी देने आया हूं कि आप इस यज्ञ का अपने मन में भी घमंड न कीजियेगा।"

नेवले को इस प्रकार बातें करते देखकर यज्ञ-मंडप में उपस्थित लोग आश्चर्य में आ गये। याजक ब्राह्मणों ने उस नेवले से पूछा—"हे नकुल तुम कौन हो, और हम लोगों की इस यज्ञशाला में तुम कहां-से आ गये? इस यज्ञ की तुम इस प्रकार बुराई किस आधार पर कर रहे हो? यह महान् अश्वमेध यज्ञ शास्त्र-विहित सभी सामग्रियों एवं विधियों से किया गया है। इसमें तुम किस प्रकार दोष निकाल रहे हो? जो लोग इस यज्ञ में आये हैं उन सबकी उचित पूजा हुई हैं, उनका यथोचित सत्कार किया गया है। जो जितना चाहता था उसे उतना और उसी तरह का दान दिया गया। इस दान से सभी सन्तुष्ट हुए हैं। मन्त्र-पाठ में भी त्रुटि नहीं हुई और अग्नि में आहुतियां भी उचित रीति से दी गईं हैं। चारों वर्णों के लोग इससे पूर्णरूप से सन्तुष्ट हुए हैं। इतना सब कुछ होने पर भी क्या कारण है कि तुम इसे दोषयुक्त बता रहे हो? हमें समझाकर कहो।"

यह सुन फिर नेवला एक बार कहकहा लगाकर हंसा और बोलने लगा—"हे विप्रगण। मैंने जो कुछ कहा बिलकुल ठीक कहा है। न तो मेरा आप लोगों से कोई द्वेष है न राजाधिराज युधिष्ठिर से ही मैं कोई ईर्ष्या करता हूं। फिर भी मैं जोर देकर कहता हूं कि आप लोगों ने धूमधाम से इतना धन खर्च करके जो यह यज्ञ किया वह कुरुक्षेत्रवाले उस ब्राह्मण के दिये दान की समता कदापि नहीं कर सकता। दानवीर तो वही द्विजवर थे।

अपने दान-पुण्य के फलस्वरूप उनको अपनी पत्नी, पुत्र और बहू के साथ विमान में बैठकर सदेह स्वर्ग सिधारते हुए मैंने अपनी आंखों से देखा था। आप सब लोगों को मैं उसका सारा हाल सुनाता हूं।



इस महाभारत-युद्ध से पहले, कुरुक्षेत्र में एक ब्राह्मण रहा करते थे। खेत में बिखरे हुए अनाज के दानों को चुन-चुन कर इकट्ठा करके वह अपनी आ. जीविका चलाते थे। ब्राह्मण, उसकी पत्नी, पुत्र और पुत्र-वधू—चारों इसी उंच्छ-वृत्ति से दिन गुजारते थे। उन्होंने अपना यह नियम बना रखा था कि जो कुछ अनाज इकट्ठा हो उसको बराबर बांटकर तीसरे पहर के शुरू होने से थोडी देर पहले खा लिया करें। किसी दिन नियत समय तक कोई भी अनाज नहीं मिलता था। जिस दिन ऐसा होता उस दिन सब उपवास कर लिया करते और अगले दिन नियत समय पर खा लेते थे।

उसी समय एक बार पानी न बरसने के कारण भारी अकाल पड़ा। सब कहीं लोग भूख-प्यास से तड़पने लगे। जब खेतों में कुछ उगता ही न था तो फसल भी नहीं कटती थी और जब फसल नहीं कटती तो अनाज के दाने बिखरते कहांसे ? इस कारण ब्राह्मण और उनके कुटुंब को लगातार कई दिनों तक भूखों रहना पड़ा।

एक दिन चारों जने भूखे-प्यासे धूप में तपते हुए दूर-दूर तक घूमे-फिरे तब कहीं जाकर सेर भर ज्वार के दाने इकट्ठे कर पाये। उस सेर भर ज्वार का आटा पीसा गया और यथा-विधि पूजा-पाठ आदि समाप्त होने पर उस आटे को बराबर चार हिस्सों में बांटकर चारों व्यक्ति आनन्द से खाने बैठे।

ठीक इसी समय कोई भूखा ब्राह्मण आ पहुंचा। अतिथि को आया देख ब्राह्मण ने उठकर उसका विधिवत् सत्कार किया। वे लोग इतने निर्मल हृदय के थे कि स्वयं भूखे रहते हुए भी अतिथि का सत्कार करते हुए उन्होंने ऐसा अनुभव किया मानो उनका जीवन सार्थक हो गया। वे हर्ष से फूले न समाये। उन्होंने अतिथि से पूछा—"विप्रवर मैं गरीब हूं। यह

आटा नियमपूर्वक परिश्रम से कमाया हुआ है। कृपया आप इसका भोजन करें। आपका कल्याण हो।"

इतना कहकर ब्राह्मण ने अपने हिस्से का आटा अतिथि के सामने रख दिया और अतिथि ने उसे खा लिया। फिर भी उसकी भूख न मिटी। उसने कुछ कहा तो नहीं, लेकिन भूखी नजर से ब्राह्मण की ओर देखा।

ब्राह्मण ने देखा, अतिथि को सन्तोष नहीं हुआ। इससे वह चिन्तित हो गए। उन्हें चिन्तित देखकर उनकी पत्नी ने कहा—"नाथ! मेरे हिस्से का भी आटा अतिथि को खिला दीजिए। यदि उससे उन्हें सन्तोष हो गया तो मैं भी सन्तुष्ट हो जाऊंगी।"

पत्नी ने इतना कहकर अपने हिस्से का आटा पति के आगे रख दिया।

लेकिन ब्राह्मण ने पत्नी की बात न मानी। बोले—"सती! तुम्हारा कहना ठीक नहीं। पति का कर्त्तव्य है कि अपनी स्त्री का भरण-पोषण करे। जब जानवर और कीड़े-मकोड़े तक अपनी मादा का भरण-पोषण सावधानी के साथ करते हैं तो फिर मैं मनुष्य होकर अपनी सेवा करने वाली पत्नी का भरण-पोषण न करूं तो मेरा क्या भला होगा? प्रिये! तुम भूखी हो और तुम्हारी हड्डियां निकली हुई हैं। शरीर पर स्नायु का चिह्न तक नहीं। ऐसी दशा में तुम्हें भूखी रखकर मैं अतिथि का सत्कार करने लग जाऊं तो मुझे उसका कौन-सा फल प्राप्त होगा?"

यह सुनकर पत्नी ने कहा—"नाथ! मैं आपकी सहधर्मिणी हूं। धर्म, अर्थ आदि सभी बातों में आपका मेरा समान अधिकार है। जैसे आपने स्वयं भूखे रहते हुए भी अतिथि को अपने हिस्से का आटा खिलाया था वैसे ही कृपा करके मेरा भी हिस्सा खिला दीजिये। मेरी यह प्रार्थना अस्वीकार न कीजिये।"

पत्नी के यों आग्रह करने पर ब्राह्मण ने उसके हिस्से का भी आटा अतिथि को खिला दिया। उसे खा चुकने पर भी अतिथि की भूख न

मिटी। इसपर ब्राह्मण और भी उदास हो गया।

यह हाल देखकर ब्राह्मण के पुत्र ने कहा— "पिताजी! यह मेरे हिस्से का भी आटा लीजिए और अतिथि को खिला दीजिए।"

यह सुन पिता व्यथित होकर बोले—"बेटा! जो उमर में बूढ़े हैं वे भूख सह सकते हैं। जवानों की भूख बड़ी तेज हुआ करती है। मेरा मन नहीं मानता कि तुम्हारा भी हिस्सा लेकर अतिथि को खिला दूं।"

पर पुत्र ने न माना और अनुरोध करके कहा—"पिताजी! पिता के बूढ़े हो जाने पर उनकी रक्षा करना पुत्र ही का कर्त्तव्य हो जाता है। यह भी बात नहीं कि पिता और पुत्र अलग-अलग अस्तित्व रखते हैं। आखिर पिता ही तो पुत्र बनता है। इसलिए मेरे हिस्से का आटा भी आप ही का है। आप मेरा हिस्सा स्वीकार करलें और अधभूखे अतिथि को संतुष्ट करें।"

पिता ने हर्ष के साथ कहा—"पुत्र! धन्य है तुम्हें। शील, इन्द्रिय-दमन आदि हर बात में तुमपर मुझे गर्व हो सकता है, तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे भी हिस्से का आटा मैं स्वीकार करता हूं।" यह कहकर ब्राह्मण ने उसे लेकर अतिथि को खिला दिया।

पर उसे खाने के बाद भी अतिथि का पेट नहीं भरा। उसके मुख पर सन्तोष की झलक दिखाई न दी। यह देख ब्राह्मण बड़े लज्जित हो गये और किंकर्त्तव्यविमूढ़-से बैठे रहे।

उनका यह हाल देखकर उनकी पुत्र-वधू ने कहा—"पिताजी, मैं भी अपना हिस्सा अतिथिदेव के लिए देती हूं। लीजिए इसे भी अतिथि को खिला दीजिए। आपके आशीर्वाद से मेरा स्थायी कल्याण होगा।"

बहू की बात सुनकर ब्राह्मण बोले—"बेटी! अभी तुम लड़की हो। तकलीफ़ सहते-सहते तुम्हारा रंग फीका पड़ गया है और तुम दुबली हो गई हो। तुम्हें भूखी रखकर अतिथि को तुम्हारा कौर खिला दूं तो मैं धर्म का नाश करने वाला साबित हो जाऊंगा। तुम्हारा भूखों तड़पना मैं कैसे देख सकता हूं।"

पर बहू ने आग्रह करके कहा--"पिताजी आप मेरे प्रभु के प्रभु हैं, गुरू के गुरू हैं और ईश्वर के ईश्वर हैं। मेरा आटा आपको स्वीकार करना ही होगा। मेरा यह शरीर आपकी सेवा ही के लिए है। आप मेरा आटा लेकर मुझे सद्गति प्राप्त करने योग्य बनाइये।"

यह सुनकर ब्राह्मण के हर्ष की सीमा न रही। मुक्त कंठ से बहू को आशीर्वाद देते हुए बोले--"सुशीला बेटी! पति की इच्छा पर चलने वाली सती! तुम्हें सारे सौभाग्य प्राप्त हों।"

बहू के हिस्से का भी आटा अतिथि के आगे रख दिया गया। उसे खाकर अतिथि तृप्त हो गये और बहुत प्रसन्न हुए। वह बोले--

"आपने अपनी शक्ति के अनुकूल पवित्र हृदय से जो दान दिया उसे पाकर मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ। आपका दिया दान अद्भुत है, निराला है। वह देखिये, देवता भी फूल बरसा रहे हैं। देवर्षिगण, देवता, गन्धर्व आदि आपके दर्शन करने के लिए अपने अनुचरों के साथ विमानों में बैठे आकाश में इकट्ठे हो रहे हैं। आप अपनी पत्नी, पुत्र और बहू समेत अभी स्वर्ग सिधारेंगे। आपने जो दान दिया उससे आपको ही नहीं बल्कि आपके पूर्वजों को भी स्वर्गवास का भाग्य प्राप्त होगा। प्रायः देखा जाता है कि भूख से विवेक का नाश हो जाता है और धार्मिकता का विचार जाता रहता है। बड़े-बड़े ज्ञानी भी भूख के मारे अस्थिर हो उठते हैं, धीरज गवां देते हैं। आपने तो भूखों रहते हुए भी पुत्र-प्रेम से धर्म को ही अधिक समझा। सैकड़ों राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ भी आपके इस दान की बराबरी नहीं कर सकेंगे। आपका दान उनसे कहीं बढ़कर है। वह देखिए, आपके लिए दैवी विमान तैयार खड़ा है। चलिए स्वर्ग सिधारिए।" इतना कहकर अतिथि देव अन्तर्धान हो गये।



अनाज चुनने की वृत्ति रखने वाले ब्राह्मण के स्वर्ग सिधारने का यह हाल सुनाकर नेवले ने कहा--"विप्रगण, उन ब्राह्मण के दान में दिये गये ज्वार के आटे की सुवास सूंघते-सूंघते मेरा सिर सुनहरा बन गया।

इसके बाद जहां आटा परोसा गया था, उस स्थान में भी मैं खूब लोटा। आटे के जो कण उस स्थान में बिखरे हुए थे, उनके लग जाने के कारण मेरे शरीर का आधा हिस्सा सुनहरा बनकर जगमगा उठा। इसपर मुझे अभिलाषा हुई कि शरीर का बाकी हिस्सा भी स्वर्णिम बन जाय तो क्या ही अच्छा हो! इसी अभिलाषा से मैं तपोवनों और यज्ञशालाओं आदि की खाक छानता रहा। इतने में सुना कि यशस्वी धर्मराज यज्ञ करने वाले हैं। सुनते ही खुशी-खुशी यहां दौड़ा आया। मुझे आशा थी कि यहां बाकी शरीर भी सुनहरा बन जायगा। परन्तु मेरी आशा पूरी न हुई। इसीलिए कहता हूं कि आप का महान यज्ञ उस ब्राह्मण के सेर भर आटे की बराबरी नहीं कर सकता।"

: १०४ :

पांडवों का धृतराष्ट्र के प्रति बरताव

किसी भी वस्तु का लोभ लोगों को तभीतक रहता है जबतक कि वह प्राप्त नहीं हो जाती। ज्योंही इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाती है त्योंही उसका आकर्षण जाता रहता है। यही नहीं बल्कि नई व्यथाएं और विपदाएं भी आ घेरती हैं। यह बात ठीक है कि युद्ध करना और शत्रुओं को दंड देना क्षत्रियों का धर्म होता है, परन्तु फिर भी अपने ही भाइयों व रिश्तेदारों को मारने पर जो राज्य या पद प्राप्त हो, उससे कौनसे सुख की आशा की जा सकती है? अर्जुन ने युद्ध शुरू होने से पहले श्रीकृष्ण से यही कहकर अपनी व्यथा प्रकट की थी। यद्यपि श्रीकृष्ण ने इस शंका का समाधान करते हुए कर्मयोग एवं कर्त्तव्य-पालन का उपदेश दिया था, तो भी अर्जुन ने जो शंका उठाई थी, वह भी कुछ अंश में ठीक थी——एकदम निरर्थक नहीं थी।

कौरवों पर विजय पा लेने के बाद सारे राज्य पर पांडवों का एकछत्र अधिकार हो गया और उन्होंने कर्त्तव्य समझकर राजकाज का भार भी

संभाल लिया। परंतु फिर भी जिस संतोष और सुख की उन्हें आशा थी वह प्राप्त नहीं हुआ।

राजा जनमेजय ने पूछा कि विजय पाकर और राज्यसत्ता प्राप्त करने पर पांडवों ने महाराज धृतराष्ट्र के साथ कैसा व्यवहार किया? इस प्रश्न के उत्तर में वैशंपायन मुनि कथा जारी रखते हुए कहने लगे--

शोकातुर हो रहे धृतराष्ट्र को पांडव उचित गौरव अवश्य दिया करते थे। वे राजकाज में भी उनकी सलाह लिया करते थे। उन्हींकी अनुमति से राजाधिराज युधिष्ठिर के नेतृत्व में पांडव राज करते थे। गांधारी, जो अपने सौ पुत्रों को एकसाथ गंवा बैठी थी, ऐसा अनुभव करती थी मानो स्वप्न में मिला धन नींद टूटते ही खो गया हो। देवी कुन्ती दुखियारी गांधारी की बड़ी ही श्रद्धा और स्नेह के साथ सेवा करती थी। द्रौपदी भी उन दोनों वृद्धाओं की समान रूप से सेवा-शुश्रूषा किया करती थी।

युधिष्ठिर ने वृद्ध धृतराष्ट्र के आराम का भी हर तरह से आयोजन किया था। धृतराष्ट्र के भवन में कोमल, शय्या, सुखद आसन आदि का प्रबन्ध था और कीमती गहने-कपड़े आदि भी पर्याप्त रूप में रहते थे। धृतराष्ट्र के भोजन के लिए विविध पकवान बनते थे। कृपाचार्य भी वृद्ध राजा के साथी बनकर उन्हींके भवन में रहा करते थे। भगवान् व्यास भी अक्सर आ जाया करते थे और सुंदर सूक्तियों-भरी आख्यायिकाएं सुनाया करते थे, जो राजा के व्यथित हृदय पर शीतल लेप का-सा प्रभाव करती थीं। राजकाज के बारे में युधिष्ठिर धृतराष्ट्र से बराबर सलाह लिया करते थे और शासन-सम्बन्धी सारा काम इस ढंग से करते थे जिससे प्रतीत होता था कि धृतराष्ट्र ही की आज्ञा से सब काम होता है। महाराज युधिष्ठिर कोई ऐसी बात छेड़ते ही नहीं थे जिससे वृद्ध धृतराष्ट्र के मन को चोट पहुंचने की आशंका हो। देश-विदेश से आने वाले राजा लोग महाराज धृतराष्ट्र का वही सम्मान करते जैसे पहले किया करते थे। रनिवास की स्त्रियां गांधारी की सेवा-शुश्रूषा में जरा भी त्रुटि न होने देती थीं।

युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को आज्ञा दे रखी थी कि पुत्रों के बिछोह

से दुःखी राजा धृतराष्ट्र को किसी भी तरह की व्यथा न पहुंचने पाये। सिवाय भीमसेन के और सब पांडव युधिष्ठिर के ही आदेशानुसार व्यवहार करते थे। पांडव वृद्ध धृतराष्ट्र का खूब आदर करते हुए उन्हें हर प्रकार का सुख एवं सुविधा पहुंचाने के प्रयत्न में लगे रहते जिसमें धृतराष्ट्र को अपने पुत्रों का अभाव महसूस न हो। धृतराष्ट्र भी पांडवों से स्नेहपूर्ण व्यवहार किया करते थे। न तो पांडव उन्हें अप्रिय समझते थे न धृतराष्ट्र ही पांडवों को अप्रिय समझते थे।

परन्तु भीमसेन कभी-कभी ऐसी बातें या काम कर दिया करता था जिससे धृतराष्ट्र के दिल को चोट पहुंचती। युधिष्ठिर के राजाधिराज बनने के थोड़े ही दिन बाद भीमसेन धृतराष्ट्र की किसी आज्ञा को कार्यरूप में परिणत न होने देता था। कभी धृतराष्ट्र को सुनाते हुए कह भी देता कि दुर्योधन और उनके साथी अपनी ही नासमझी के कारण मारे गये, आदि।

बात यह थी कि दुर्योधन-दुःशासन आदि के किये अत्याचारों और अपमानों का दुखद स्मरण भीमसेन के मन में अमिट रूप से अंकित हो चुका था। इस कारण न तो वह अपना पुराना बैर भूल सकता था न क्रोध को ही दबा सकता था। कभी-कभी वह गांधारी तक के आगे उलटी-सीधी बातें कर दिया करता था।

भीमसेन की इन तीखी बातों से धृतराष्ट्र के हृदय को बड़ी चोट पहुंचती थी। गांधारी को भी इस कारण बहुत दुःख होता। परन्तु फिर भी वह विवेकशीला थी और धर्म का मर्म जानती थी; इसलिए भीमसेन की कड़वी बातें चुपचाप सह लिया करती और धर्म की प्रतिमूर्ति कुंती से स्फूर्ति पाकर धीरज धर लिया करती।

: १०५ :

धृतराष्ट्र

यद्यपि महाराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को हर प्रकार से आराम पहुंचाने का उचित प्रबन्ध कर रक्खा था, तो भी धृतराष्ट्र का जी सुख-भोग में नहीं लगता था। एक तो वे बहुत वृद्ध होगये थे, फिर भीमसेन की अप्रिय बातों से कभी-कभी उनका हृदय खिन्न हो जाता था। धीरे-धीरे उनके मन में इतना विराग आगया कि आराम से रहना तो दूर रहा वे छिपे तौर से आंशिक उपवास तक रखने लगे और उन्होंने पलंग पर सोना भी छोड़ दिया। दूसरे और कितने ही कठिन व्रतों के कारण उनका शरीर बहुत कृश हो गया था। इन बातों में गांधारी भी उन्हींका अनुसरण किया करती थी।

एक दिन धृतराष्ट्र धर्मराज के भवन में गये और बुलाकर उनसे बोले--

"बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। पन्द्रह वर्ष से तुम मुझे अपने यहां आराम से रख हुए हो और ध्यान से मेरी देखभाल करते रहे हो। तुम्हारे आश्रय में रहते हुए मैंने दान-पुण्य भी बहुत किये। पुत्र-विहीना गांधारी भी किसी तरह धीरज धर लेती है और दिल लगाकर मेरी सेवा किया करती है। द्रौपदी का अपमान करने वाले और तुम्हारी पैतृक संपत्ति हर लेने वाले मेरे अन्यायी पुत्रों का तो उनके अपने कर्मों के कारण नाश हुआ। पर युद्ध में मारे जाकर वे वीरोचित स्वर्ग को प्राप्त हुए। इस कारण मुझे उनकी कोई चिन्ता नहीं है। अब तो मेरी और गांधारी की यही प्रबल इच्छा है कि हम भी अपनी स्वर्ग-प्राप्ति की तैयारी करें और धार्मिक-कर्तव्यों पर अधिक ध्यान दें। तुम तो शास्त्रों के ज्ञाता हो और यह भी जानते हो कि हमारे वंश की परंपरागत प्रथा के अनुसार हम वृद्धों को वल्कल धारण

करके बन में जाना चाहिए। इसके अनुसार ही मैं अब तुम्हारी भलाई की कामना करता हुआ वन में जाकर रहना चाहता हूं। तुम्हें इस बात की मुझे अनुमति देनी ही होगी। तुम राजा हो, इसलिए मेरी तपस्या के फल का छठा हिस्सा भी तुम्हें प्राप्त होगा।"

धृतराष्ट्र की ये बातें सुनकर युधिष्ठिर बहुत खिन्न हुए और भरे हुए हृदय से बोले--"महाराज हम लोगों को तनिक भी पता न था कि आप इस भांति व्रत-उपवास रख रहे हैं, भूमि पर सोते हैं और तरह-तरह की यातनाओं से शरीर को कष्ट पहुंचाकर कृश कर रहे हैं। मेरी लापरवाही के कारण ही आपको यह अपार दुःख सहना पड़ रहा है। सचमुच मैं बड़ा ही दुरात्मा हूं। मैं इस राज्य को लेकर क्या करूंगा? सुख-भोग से मेरा भी जी उचट गया है। महाराज, सम्पत्ति के लोभ में पड़कर मैंने भारी अपराध किया। आप उसे क्षमा करें। अब मैंने तय किया है कि आज से आपका ही पुत्र युयुत्सु राजगद्दी पर बैठे या जिसे आप चाहें राजा बना दें। अथवा शासन की बागडोर स्वयं अपने हाथ में ले लें और प्रजा का पालन करें। मैं वन चला जाऊंगा। राजा मैं नहीं बल्कि आप ही हैं। ऐसी हालत में आपको अनुमति मैं कैसे दे सकता हूं? मुझे काफी अपयश प्राप्त हो चुका है; अब और भी दोष का भागी न बनाइए। दुर्योधन से मेरा अब कोई बैर-विरोध नहीं रहा। जो दुर्घटना हुई वह विधि की लीला और सबकी नासमझी के कारण ही हुई मालूम होती है। किसी एक को उसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। महाराज! जैसे दुर्योधन आदि आपके पुत्र थे वैसे ही हम भी आपके ही पुत्र हैं। कुन्ती और गांधारी दोनों को ही मैं अपनी माता मानता आया हूं। यदि आप वन में जायंगे तो मैं भी आपके साथ ही चलूंगा। आपके वन में चले जाने पर, आपके बिना, मैं इस राज्य को लेकर कौनसा सुख भोग सकूंगा? मैं आपके हाथ जोड़ता हूं और सिर नवाकर प्रार्थना करता हूं कि आप अपने मन का क्लेष दूर कीजिए। मैं खुशी-खुशी आपकी सेवा-टहल करता रहूंगा और उसीसे अपने भी व्यथित हृदय को शांत करूंगा।"

यह सुन धृतराष्ट्र बोले--"कुन्ती-पुत्र, मेरे मन में वन में जाकर तपस्या करने की इच्छा बड़ी प्रबल हो रही है। तुम्हारे साथ मैं इतने बरसों सुखपूर्वक रहा और तुम और तुम्हारे सभी भाई ध्यानपूर्वक मेरी सेवा-शुश्रूषा करते रहे। वन में जाने का तो मेरा ही समय है। तुम्हारा नहीं। इस कारण वन में जाने की अनुमति तुम्हें देने का सवाल ही नहीं उठता। यह अनुमति तो तुमको मुझे देनी ही होगी।"

यह सुन युधिष्ठिर अंजलिबद्ध होकर कांपते हुए खड़े रहे। वे कुछ बोल न सके। उनसे ये बातें कहने के बाद धृतराष्ट्र आचार्य कृप एवं विदुर से बोले--"भैया विदुर और आचार्य! आप लोग महाराज युधिष्ठिर को समझा-बुझाकर मुझे वन में जाने की अनुमति दिलाइए। मैं पूरी तरह उनको समझा नहीं पा रहा हूं। मेरा कंठ सूख रहा है। काफी देरतक बोलता रहा--शायद इसीसे..." यह कहते-कहते वृद्ध राजा मूर्छित होगये और गांधारी के ऊपर गिर पड़े। गांधारी ने उनको संभाल लिया।

धृतराष्ट्र की यह हालत देखकर युधिष्ठिर का गला भर आया और आंखों से आंसू बहने लगे। उनका यह दुःख उनके लिए असह्य हो उठा। वह व्यथित होकर बोले--"हाथी के समान जिसकी ताकत थी और जिन्होंने लोहे की मूर्ति को अपनी बांहों से कसकर चूर कर दिया था वही वीर धृतराष्ट्र इस तरह खिन्न हृदय होकर हड्डी के पंजर समान दुबले हो गये और मूर्छित होकर दीन-दुर्बल मनुष्य की भांति गांधारी के सहारे पड़े हैं। हाय रे विधाता! धिक्कार है मुझे, जिसके कारण इन पूज्य वीर की यह दशा हुई। धिक्कार है मुझे, मेरी विद्या को और मेरी बुद्धि को कि जिसे धर्म का ज्ञान अभीतक प्राप्त न हो सका।"

इस तरह विलाप करते हुए युधिष्ठिर ने ठंडा पानी लेकर धृतराष्ट्र के मुख पर छिड़का और उनके शरीर पर अपने कोमल हाथ धीरे-धीरे फेरने लगे। धृतराष्ट्र जब होश में आये तो युधिष्ठिर को प्यार से गले लगा लिया और गद्गद् स्वर में बोले--"बेटा! तुम्हारे स्पर्श से ही मुझे

असीम आनन्द प्राप्त हो रहा है। मैं ऐसा सुख पा रहा हूं मानो मैंने अमृत पी लिया हो।"

यह सब चर्चा हो ही रही थी कि इतने में भगवान् व्यास वहां पधारे। सारा हाल मालूम होने पर वे युधिष्ठिर से बोले—"बेटा, कुरुकुल-श्रेष्ठ धृतराष्ट्र की जैसी इच्छा हो वैसा ही तुम करो। यह वृद्ध हो गया है, पुत्रों से बिछुड़ा हुआ है। इस परिस्थिति में और बहुत दिन यह कष्ट इससे सहा नहीं जायगा। गांधारी बड़ी विवेकशीला है और अपना दुःख धीरज के साथ सह लिया करती है। तुम मेरी बात मानो और धृतराष्ट्र को वन जाने की अनुमति दे दो। वहांपर यह मधुभरे फूलों की सुवास का आनंद लेता हुआ निश्चित होकर दिन बितायगा। प्राचीन काल के राजर्षियों के मार्ग का इसे भी अनुकरण करने दो। राजाओं का यही धर्म होता है कि या तो लड़ते-लड़ते वीर-गति पावें या वन में जाकर तपस्या करते रहकर स्वाभाविक मृत्यु की प्रतीक्षा करें। धृतराष्ट्र ने यज्ञ किये और सुख भी भोग लिया। जब तुम लोग बनवास और अज्ञातवास करते रहे तब इसने अपने पुत्र के विशाल राज्य का शासन-सुख तेरह वर्ष तक भोगा। अब इधर पन्द्रह बरस से तुम भी इसके साथ पुत्र का-सा बरताव करते हुए इसे आराम पहुंचाते रहे हो और किसी वस्तु की कमी महसूस न होने दी। अब इसकी आयु तपस्या करने की है इसीलिए यह वन जाना चाहता है। क्रोध के कारण या तुम लोगों से असन्तुष्ट होकर नहीं। अतः इसको जाने की अवश्य अनमति दो। इसीमें तुम्हारा और इसका कल्याण है।"

: १०६ :

तीनों वृद्धों का अवसान

युधिष्ठिर से वन में जाने की अनुमति पाकर धृतराष्ट्र गांधारी के साथ अपने भवन में लौट आये और अनशन व्रत समाप्त किया। गान्धारी

और कुन्ती दोनों ने साथ-साथ बैठकर भोजन किया। धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को अपने पास बिठा लिया और प्रेम के साथ आशीर्वाद दिया। उसके बाद वृद्ध राजा धृतराष्ट्र उठे और गान्धारी के कन्धे पर हाथ रख कर लाठी टेकते हुए वन के लिए रवाना हुए। माता कुन्ती भी उनके साथ हो ली।

अपने व्रत के कारण पतिव्रता गान्धारी ने अपनी आंखों पर पट्टी बांधी हुई थी। इसलिए वह कुन्ती देवी के कन्धे पर हाथ रक्खे रास्ता टटोलती हुई जाने लगी और इस तरह तीनों वृद्ध राज-कुटुंबी राजधानी की सीमा पार कर वन की ओर चले।

देवी कुन्ती ने गान्धारी की सेवा-टहल करने के लिए उनके साथ वन जाने का निश्चय कर लिया था। जाते समय वह युधिष्ठिर से बोली, "बेटा! सहदेव से कभी नाराज न होना। वीरोचित रीति से लड़कर स्वर्ग सिधारे हुए भाई कर्ण का सदा स्नेह के साथ स्मरण करते रहना। यह मेरा ही कसूर था कि मैंने तुम लोगों से उसका वास्तविक परिचय छिपा रखा। द्रौपदी की प्रेम के साथ रक्षा करते रहना। इस बात का खयाल रखना कि भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को किसी तरह का दुःख न पहुंचने पावे। सारे कुटुंब की देखभाल करने का भार अब तुम्हारे ही कन्धों पर है।"

धर्मराज समझ रहे थे कि गान्धारी को थोड़ी दूर तक बिदा करने के लिए माता कुन्ती साथ जा रही हैं। इसलिए कुन्ती की ये बातें सुनकर वह तो सन्न रह गए। उनसे कुछ कहते न बना और काफ़ी देर तक अवाक् से खड़े रहे। संभलकर बोले— "मां! तुम वन में क्यों जा रही हो? अभी तुम्हारा जाना तो ठीक नहीं है। तुम्हींने तो आशीर्वाद देकर हमें युद्ध के लिए भेजा था। अब तुम्हीं हमें छोड़कर वन को जाने लगीं। यह ठीक नहीं।" इतना कहते-कहते युधिष्ठिर का गला भर आया। किन्तु उनके बहुत आग्रह करने पर भी कुन्ती अपने निश्चय पर अटल रही। वह बोली—

"बेटा अधीर न होओ। मैं उस लोक में जाना चाहती हूं जहां मेरे पति निवास करते होंगे। मैं बहिन गान्धारी की सेवा-टहल करती हुई तपस्या करूंगी और समय आने पर शरीर त्याग करके तुम्हारे पिता के पास पहुंच जाऊंगी। बेटा, अब तुम लोग नगर को वापस जाओ। न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते रहो और तुम्हारी बुद्धि सदा धर्म पर ही अटल रहे।"

पुत्रों को इस प्रकार आशीर्वाद देकर देवी कुन्ती धृतराष्ट्र और गान्धारी के साथ वन को चलीं।

युधिष्ठिर अवाक् होकर खड़े देखते रहे।



धृतराष्ट्र गान्धारी और कुन्ती ने तीन वर्ष तक वन में तपस्वियों का-सा जीवन व्यतीत किया। एक दिन धृतराष्ट्र स्नान-पूजा करके आश्रम लौटे ही थे कि इतने में जंगल में एकाएक आग भड़क उठी; हवा तेज चल रही थी, इसलिए शीघ्र ही आग सारे जंगल में फैल गई। हिरन, जंगली सुअर आदि जानवरों के झुंड-के-झुंड भयभीत होकर जलाशय की तरफ भागने लगे।

इस अवसर पर संजय भी उनके साथ था। धृतराष्ट्र ने उसको कहीं भी भागकर अपने प्राण बचाने का आग्रह किया और फिर सती गान्धारी और देवी कुन्ती के साथ वह पूरब की ओर मुख करके योग-समाधि में बैठ गये और उसी स्थिति में उन तीनों ने उस दावानल में अपने शरीर की आहुति दे दी।

धृतराष्ट्र का प्राणसखा संजय जो उनकी आंखों और प्राणों के समान उनका सहारा था उनके देहावसान के बाद संन्यास ग्रहण करके हिमालय में तप करने चला गया।

: १०७ :

श्रीकृष्ण का लीला-संवरण

महाभारत की युद्ध-समाप्ति के बाद, भगवान श्रीकृष्ण छत्तीस बरस तक द्वारका में राज्य करते रहे। उनके सुशासन में श्रीकृष्ण के समान-वंशी भोज, वृष्णि, अन्धक आदि यादव राजकुमार असीम सुख-भोग में जीवन व्यतीत करने लगे। भोग-विलास के कारण उनका संयम और शील जाता रहा।

इन्हीं दिनों एक बार कुछ तपस्वी लोग द्वारका में पधारे। उच्छृंखल यादवगण उन महात्माओं की खिल्ली उड़ाने के लिए साम्ब नामक राजकुमार को स्त्री की पोशाक पहनाकर ऋषियों के सामने ले गए और उसे ऋषियों के सामने उपस्थित करके पूछा—"आप लोग शास्त्रों के ज्ञाता हैं; कृपया बतलाइये कि इस स्त्री के पुत्र होगा या पुत्री?"

यादवों के इस झूठ व नटखटीपन पर ऋषियों को क्रोध हुआ। वे बोले "इसके एक मूसल पैदा होगा और वही तुम्हारे कुल के नाश का कारण बनेगा।"

यों शाप देकर तपस्वी-गण चले गये। तपस्वियों के इस तरह शाप देने पर यादव बहुत पछताये कि मजाक करके हम अपना सर्वनाश मोल ले बैठे। उनके मन में भय छा गया।

अगले दिन ऋषियों के कहे अनुसार स्त्री-वेषधारी साम्ब के एक मूसल पैदा हुआ। इसपर यादवों की घबराहट और बढ़ गई। वे बड़े व्यथित हो उठे और डरने लगे कि कहीं ऋषियों का शाप पूर्णरूप से सच न साबित हो जाय। उनको तो मूसल में कालदेव ही नजर आया। आखिर सबने आपस में सलाह-मशविरा करके मूसल को जलाकर भस्म कर दिया

और उस भस्म को समुद्र के किनारे पर बिखेर दिया। जब उस राख पर पानी बरसा तो वहांपर घास उग आई। यादवों ने सोचा कि अब हमारे भय का कारण दूर हो गया और इसी भ्रम में पड़कर उन्होंने ऋषियों के शाप को बिसार दिया।

इसके कई दिनों बाद, एक बार यादव लोग समुद्रतट की सैर करते हुए मदिरा पीते, नाचते, गाते आनन्द मनाने लगे। समुद्रतट पर उनकी भारी भीड़ जमा हो गई थी। धीरे-धीरे शराब का नशा उनपर असर करने लगा।

महाभारत-युद्ध में यादव कुल का वीर कृतवर्मा कौरवों के पक्ष में लड़ा था और सात्यकि पांडवों के पक्ष में। शराब का नशा चढ़ने पर उनमें इसी विषय को लेकर बहस होने लगी।

सात्यकि कृतवर्मा की हंसी उड़ाता हुआ बोला—"क्षत्रिय होकर किसीने सोते हुओं को कभी मारा है? अरे कृतवर्मा! तुमने तो ऐसा करके सारे यादव कुल को अपमानित कर दिया। निर्लज्ज कहींके! धिक्कार है तुम्हें।"

सात्यकि की बात का नशे में चूर हो रहे कुछ और लोगों ने अनुमोदन किया। इसपर कृतवर्मा क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गया।

"सात्यकि! तुम मुझे उपदेश देने वाले होते कौन हो? युद्ध-क्षेत्र में अपना हाथ कट जाने पर जब महात्मा भूरिश्रवा शर-शय्या पर बैठे प्रायोपवेशन कर रहे थे तब तुमने उनकी हत्या की थी। ऐसे कसाई की यह धृष्टता कि मुझे उपदेश करे!" कृतवर्मा ने कड़ककर कहा। नशे में चूर दूसरे लोगों ने कृतवर्मा की बातों का समर्थन किया और सात्यकि की निन्दा करने लगे। बस, फिर क्या था? उपस्थित यादवों के दो दल बन गये और दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। काफी मार-काट हुई।

"यह्‌लो! जिस पापी ने सोते हुओं की हत्या की थी वह अभी अपने पाप का फल भुगतेगा," कहते-कहते सात्यकि हाथ में तलवार लिये कृतवर्मा पर टूट पड़ा और एक ही बार में उसका सिर धड़ से अलग

कर दिया।

यह देख कई यादवों ने सात्यकि को घेर लिया और शराब के प्यालों और मटकों को उसपर फेंक-फेंक कर मारने लगे। श्रीकृष्ण के बेटे प्रद्युम्न ने सात्यकि की तरफ से उन लोगों का मुकाबला किया तो उसको भी बहुत-से लोगों ने घेर लिया। थोड़ी ही देर में सात्यकि और प्रद्युम्न दोनों मारे गये।

यह देख श्रीकृष्ण भी क्रोध में आ गये और समुद्र-किनारे जो लंबी घास उगी हुई थी उसीका एक गुच्छा उखाड़कर विपक्षियों पर टूट पड़े। बस सभी यादवों ने एक-एक घास का गुच्छा उखाड़ लिया और उसीसे एक-दूसरे पर वार करने लगे।

ऋषियों के शाप के प्रभाव से मूसल की राख से उगे घास के पौधे यादवों के उखाड़ते ही मूसल बन गये और वे यादव उन्हीं मूसलों से एक-दूसरे पर आघात करते हुए वहीं कट मरे।

शराब के नशे के कारण हुए इस फसाद में यादववंश के सभी लोग समूल नष्ट हो गये।

यह वंश-नाश देखकर बलराम को असीम शोक हुआ; और उन्होंने वहीं योग-समाधि में बैठकर शरीर त्याग दिया। उनके मुख से सफेद सांप के रूप में एक अलौकिक ज्योति निकली और समुद्र में बिलीन हो गई और बलराम का अवतार-कृत्य समाप्त हो गया।

सब बन्धु-बान्धओं का सर्वनाश हुआ देखकर श्रीकृष्ण भी ध्यान-मग्न हो गये और समुद्र के किनारे वाले वन में अकेले विचरण करते रहे। जो कुछ हुआ, उसपर विचार करके उन्होंने जान लिया कि उनके भी संसार छोड़कर जाने का समय आ गया। यह जानकर वे वहीं जमीन पर एक पेड़ के नीचे लेट गये।

इतने में कोई शिकारी शिकार की तलाश में घूमता-फिरता उधर से आ निकला। सोये हुए श्रीकृष्ण को शिकारी ने दूर से हिरन समझा और धनुष तानकर एक तीर मारा।

तीर श्रीकृष्ण के तलुए को छेदता हुआ शरीर में घुस गया और श्रीकृष्ण के लीला-संवरण करने का निमित्त बन गया। इस प्रकार अलौकिक कीर्त्ति-संपन्न श्रीकृष्ण का देहावसान हो गया।

: १०८ :

धर्मपुत्र युधिष्ठिर

यादवों के सर्वनाश और श्रीकृष्ण के निर्वाण के शोकजनक समाचार हस्तिनापुर में पहुंचने पर पांडवों के मन में सांसारिक जीवन के प्रति विराग छा गया और जीवित रहने की चाह उनमें न रह गई। अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को राजगद्दी पर बिठाकर पांचों पांडवों ने द्रौपदी को साथ लेकर तीर्थ-यात्रा करने का निश्चय किया। वे हस्तिनापुर से रवाना होकर अनेक पवित्र स्थानों के दर्शन करते हुए अन्त में हिमालय की तलहटी में जा पहुंचे। उनके साथ-साथ एक कुत्ता भी चल रहा था। उन्होंने पहाड़ पर चढ़ना शुरू किया और चढ़ते-चढ़ते रास्ते में द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन पांचों ने एक-एक करके गिरकर शरीर त्याग दिये। पर सत्य-ब्रह्म का ज्ञान रखने वाले युधिष्ठिर तनिक भी विचलित न हुए। वे ऊपर चढ़ते ही गये। अब उनके पीछे-पीछे वह कुत्ता उनका साथी बनकर चल रहा था।

असल में युधिष्ठिर का धर्म ही कुत्ते के रूप में उनके पीछे-पीछे चल रहा था। बहुत दूर जानेपर देवराज इन्द्र दैवी रथ लेकर युधिष्ठिर के सामने प्रकट हुए और बोले—

"युधिष्ठिर! द्रौपदी और तुम्हारे भाई स्वर्ग पहुंच चुके हैं। अकेले तुम्हीं रह गये; तुम अपने शरीर के साथ ही इस रथ पर सवार होकर स्वर्ग चलो। तुम्हें ले जाने के लिए ही मैं आया हूं।"

युधिष्ठिर रथ पर सवार होने लगे तो कुत्ता भी उनके साथ रथ पर

चढ़ने लगा। पर इन्द्र ने उसे चढ़ने न दिया। बोले कि कुत्ते के लिए स्वर्ग में स्थान नहीं है। यह सुन युधिष्ठिर ने कहा कि यदि इस कुत्ते के लिए स्वर्ग में जगह नहीं तो फिर मुझे भी वहां जाने की इच्छा नहीं।

इन्द्र के बहुत समझाने पर भी युधिष्ठिर कुत्ते को छोड़कर अकेले स्वर्ग जाने को राजी नहीं हुए।

अपने पुत्र की परीक्षा लेने के ही उद्देश्य से धर्मदेव कुत्ते के रूप में आये हुए थे। पुत्र के मन की दृढ़ता देखकर धर्म-देव बड़े प्रसन्न हुए और उनको आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये।



युधिष्ठिर स्वर्ग में पहुंचे तो पहले-पहल दुर्योधन से ही उनकी भेंट हुई। धर्मपुत्र ने देखा, दुर्योधन सूर्य के तेज के साथ जगमगाते हुए सुन्दर आसन पर विराजमान है और देवता लोग उसे घेरे हुए खड़े हैं।

यह देखकर युधिष्ठिर को बड़ा क्रोध आया। उपस्थित देवताओं से बोले—"जहां लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधन बस रहा हो, वहां मैं रहना नहीं चाहता। इसने हमपर अनेक अत्याचार किये और हमें दारुण दुःख पहुंचाया। इसीके कुकर्मों के फलस्वरूप हमें अपने बन्धु-बान्धवों और मित्रों को मारना पड़ा। इसीकी आज्ञा से हमारी सतीसाध्वी पत्नी द्रौपदी भरी सभा में अपमानित हुई। मैं इसे देखना तक नहीं चाहता। मेरे और भाई कहां हैं? जहां वे होंगे, वहीं मैं भी जाना चाहता हूं।"

यह कहकर युधिष्ठिर वहांसे लौट पड़े।

यह देख सर्वज्ञ देवर्षि नारद युधिष्ठिर से बोले—"राजश्रेष्ठ, तुम्हारा यों कहना ठीक नहीं। स्वर्ग में वैर-विरोध होता ही नहीं। वीर दुर्योधन के बारे में ऐसी बातें न करो। दुर्योधन ने क्षत्रियोचित धर्म का पालन करके यह पद प्राप्त किया है। जो बातें हो चुकी हैं उनका सदा स्मरण करते रहना और उन्हें मन में जमने देना ठीक नहीं। आपसी वैर-विरोध के लिए यहां स्थान नहीं है। अब तो आपको दुर्योधन के साथ ही यहां प्रेम-पूर्वक रहना होगा। यहां सदेह पहुंचने के कारण ही आपके मन में ऐसे

संकुचित विचार उठ रहे हैं। अब इन कुविचारों को मन से निकाल दो।"

यह सुन युधिष्ठिर बोले—"द्विजवर, जिसे धर्म का ज्ञान ही नहीं है, जो पापी है, जिसने सत्पुरुषों को हानि पहुंचाई और जो असंख्य लोगों के नाश का कारण हुआ उसके लिए वीरों के योग्य स्वर्ग में स्थान मिला। परन्तु मेरे शीलवान, शूर भाइयों एंव द्रौपदी को कौन-सी गति प्राप्त हुई है ? वे तो यहां दिखाई ही नहीं देते। कर्ण भी नहीं दिखाई देते और न मेरे लिए प्राण त्यागने वाले अन्य राजा लोग ही देख पड़ते हैं। मैं उन्हें देखना चाहता हूं। विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, शिखंडी, द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु आदि वीर जिन्होंने मेरी खातिर युद्ध की बलिवेदी में अपने प्राणों की आहुति दी थी, यहां क्यों नहीं दिखाई देते ? मैं भी वहीं रहना चाहता हूं जहां वे लोग होंगे। माता कुन्ती ने कर्ण को भी जलांजलि देने का जो आदेश दिया था उसका स्मरण करते ही मुझे दुःसह दुःख हो आता है। जिन वीर कर्ण का वास्तविक परिचय जाने बिना अनजान में मैंने वध करवा दिया, मैं उनके दर्शन करना चाहता हूं। प्राणों से प्यारे भाई भीम, देवराज के समान तेजवाले अर्जुन, प्रिय नकुल व सहदेव, धर्मपरायणा द्रौपदी आदि सबको मैं देखना चाहता हूं। जहां द्रौपदी और मेरे भाई न होंगे वहां मैं नहीं रहना चाहता। जहां वे होंगे, वहीं मेरे लिए स्वर्ग है। इस स्थान को मैं स्वर्ग ही नहीं मानता।"

युधिष्ठिर की ऐसी बातें सुनकर उपस्थित देवताओं ने कहा—"महाराज ! जहां आपकी पत्नी और भाई रहते हैं आप यदि वहां जाना चाहते हैं तो आनन्दपूर्वक जा सकते हैं।"

देवताओं के आदेशानुसार एक देवदूत युधिष्ठिर को दूसरी तरफ ले जाने लगा। आगे-आगे देवदूत चला और उसके पीछे-पीछे युधिष्ठिर चले। रास्ते में अंधेरा छाया हुआ था। जो थोड़ा-बहुत दिखाई देता था वह भी भयानक प्रतीत होता था।

रास्ता मांस और रक्त के कीचड़ से भरा था। चारों तरफ हड्डियां लाशें और बाल पड़े हुए थे। जिधर देखो उधर कीड़े बिलबिला रहे थे

और बड़ी ही बदबू आ रही थी। जहां-तहां कुछ आदमी पड़े कराह रहे थे। किसीका हाथ कटा था, तो किसीका पैर। यह बीभत्स दृश्य देखकर युधिष्ठिर उद्भ्रांत से हो उठे। उन्हें कुछ समझ में ही नहीं आया कि बात क्या है। तरह-तरह के विचार उनके मन में उठने लगे।

उन्होंने देवदूत से पूछा—"इस तरह इस रास्ते और कितनी दूर चलना होगा? मेरे भाई कहां हैं?"

"आगे जाने की इच्छा न हो तो लौट चलिए।" देवदूत ने जवाब दिया।

वहांकी दुर्गन्ध युधिष्ठिर के लिए असह्य हो रही थी। वे वापस लौटने की सोचने लगे और वे लौटने ही को थे कि चारों ओर से करुण स्वर में कइयों का क्रन्दन एकसाथ सुनाई देने लगा।

"हे धर्मपुत्र! लौटिये नहीं। हमपर दया करके कम-से-कम एक मुहूर्त्त के लिए ठहरिए। आपके यहां आते ही सुवास-भरी पवित्र हवा बहने लगी है और हमें उससे बहुत सुख मिला है। कुन्ती पुत्र! आपके दर्शन-मात्र से ही हमें सुख पहुंच रहा है। जैसे ही आपका यहां आना हुआ तभीसे हमारी दुःसह यातना एकदम कम हो गई है। आप कृपा करके एक मुहूर्त तक यहीं रहिए, जिससे हमारी यह पीड़ा कुछ कम हो सके।"

व्यथा से भरे इन दीन स्वरों को सुनते ही युधिष्ठिर का गला भर आया। पर जब करुण स्वर में रोने की आवाज सुनाई दी तब तो युधिष्ठिर से न रहा गया। "अरेरे! इन बिचारों को बड़ी पीड़ा पहुंच रही है।" रुद्ध कंठ से केवल यही कहते वे वहीं खड़े रहे। उनको ऐसा मालूम होने लगा मानो जो आवाजें सुनाई दे रहीं हैं, वे उनसे परिचित हैं। उन्होंने शोकातुर स्वर में पूछा—"कौन हो तुम लोग? यहां कैसे आये?"

कोई स्वर बोल उठा—"मैं कर्ण हूं" और किसीने कहा—"मैं हूं भीमसेन।" तीसरे ने कहा—"मैं अर्जुन हूं।" ऐसे ही करुण स्वर में और एक पुकार सुनाई दी—"मैं द्रौपदी हूं।" इसपर चारों ओर से कई स्वर पुकार उठे—"मैं नकुल हूं।", "मैं सहदेव हूं।", "हम द्रौपदी के पुत्र हैं।"

शोक-विह्वल युधिष्ठिर के लिए यह वेदना असह्य हो उठी। वह क्षोभ और ग्लानि के मारे आपे से बाहर हो उठे--

"मेरे इन आत्मीय जनों ने कौनसा पाप किया जो ये नरक में पड़े यह दारुण यातना सह रहे हैं; और धृतराष्ट्र के पुत्रों ने एसा कौनसा पुण्य कमाया जो देवेन्द्र की-सी शान के साथ स्वर्ग में सुख भोग रहे हैं? कहीं मैं सो तो नहीं रहा हूं? मूर्छित-अवस्था में तो नहीं हूं? या यह कोई स्वप्न है?" यह सोचते-सोचते युधिष्ठिर ईश्वरी न्याय,धर्म, एवं देवताओं की मन-ही-मन निन्दा करने लगे।

अपने साथ आये देवदूत से वे बोले--"जिनके तुम दूत हो, उनके पास लौट जाओ और उनसे कहो कि मैं यहांसे वापस नहीं जाऊंगा। यहीं रहूंगा। मेरे कारण ही तो मेरे प्रिय भाई और द्रौपदी यहां इस नरक में पड़े दारुण यातना सह रहे हैं। इसलिए मैं भी अपने आत्मीयों के साथ यहीं रहना चाहता हूं।"

एक मुहूर्त्तक युधिष्ठिर उसी प्रकार वहां नरक में खड़े रहे। इसके बाद देवेन्द्र और धर्मदेवता उसी स्थान में आये जहां युधिष्ठिर खड़े थे। उनके आगमन के साथ प्रकाश भी फैल गया। न वह अन्धेरा रहा, न वे भयानक दृश्य ही रहे। पापियों की विषम वेदना का वह हृदयविद्रारक दृश्य भी गायब हो गया। पवित्र सुवास से भरी ठंडी हवा चलने लगी।

धर्मदेव ने अपने पुत्र से कहा--"मतिमानों में श्रेष्ठ! हमने तीसरी बार तुम्हारी परीक्षा ली थी। अपने भाईयों के हित नरक में पड़े रहने के लिए भी तुम तैयार थे। इससे हमें बहुत प्रसन्नता हुई। भूमिपाल राजाओं के लिए नरक की यातना अवश्य देखनी चाहिए। यही कारण था कि तुम्हें भी एक मुहूर्त्त के लिए यह दारुण दुख भोगना पड़ा। यशस्वी वीर अर्जुन, प्रिय भाई भीम, सत्यव्रती कर्ण, आदि तुम्हारे सारे बन्धुजनों में से कोई भी नरक नहीं पहुंचा। यह तो तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए रची गई माया थी। वास्तव में यही देवलोक है। वह देखो! तीनों लोकों में विचरण करने वाले देवर्षि नारद विराजमान हैं! तुम

दुःखी न होओ।"

युधिष्ठिर को यह सब देखकर बड़ा सुख हुआ और उन्होंने मानव शरीर त्यागकर दैवी शरीर प्राप्त किया।

शरीर के साथ-साथ, द्वेष, वैर-विरोध मानवी दुर्बलताओं से भी निवृत्त होकर धर्मराज युधिष्ठिर पूर्णरूप से पवित्र बन गए।

बड़े भाई कर्ण एवं छोटे भाइयों को, धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ-साथ क्रोधरहित दैवी स्थिति में देवताओं एवं ऋषि-मुनियों से पूजित होकर सुखपूर्वक रहते देखकर युधिष्ठिर को भी शान्ति प्राप्त हुई।

हरिः ॐ तत् सत्
